आध्यात्मिक ज्योति

प्रवचनकार

आचार्य श्री श्री १००८ श्री नानालालजी म सा

प्रकाशक

श्री श्वेताम्बर साधुमार्गी जैन हितकारिणी सस्था

दसानियो का चौक, बीकानेर (राजस्थान)

प्रकाशक—

सुन्दरलाल तातेड़
मंत्री, श्री श्वेताम्बर साधुमार्गी जैन हितकारिणी संस्था
दसानियों का चौक, बीकानेर (राजस्थान) ३३४००५

सम्पादक—श्री देवकुमार जैन

प्रथमावृत्ति–११०० (सं २०४६, चैत्र शुक्ला १३, महावीर जयंती)

मूल्य—रु० १२ ०० (बारह रुपये)

मुद्रक—
गौतम आर्ट प्रिन्टस
नेहरू गेट के बाहर,
ब्यावर (राज०)

प्रकाशकीय

परमश्रद्धेय चारित्रचूडामणि बालब्रह्मचारी समतादर्शन-व्याख्याता आचार्य श्री नानालाल जी म० सा० के सवत् २०३० के चातुर्मास का सुअवसर बीकानेर श्रीसघ को प्राप्त हुआ।

सत-मुनिराजो के दैनिक कार्यक्रम का एक प्रमुख अग प्रात कालीन प्रवचन है। श्रद्धालु मुमुक्षु जन इस समय प्रवचन श्रवण के लिए उपस्थित होकर आध्यात्मिक सिद्धातो की सागोपाग व्याख्या सुनने का लाभ प्राप्त करते हैं।

श्रद्धेय आचार्य श्री जी के प्रवचनो का लाभ श्रोताओ ने प्राप्त किया था। उपस्थित सज्जनो की तरह दूर नगरो और ग्रामो मे रहने वाले मुमुक्षु जन भी लाभ उठा सकें के विचार से बीकानेर श्रीसघ की प्रवचन प्रसार समिति ने प्रवचन लिपिबद्ध कर पुस्तक के रूप मे प्रकाशित करने की योजना बनाई।

योजनानुसार "आध्यात्मिक आलोक" और "आध्यात्मिक वभव" के नाम से दो प्रवचनसग्रहो को प्रकाशित किया।

आध्यात्मिक आलोक का प्रकाशन श्री सुदरलालजी तातेड की ओर से उनके पूज्य पिताजी श्री सेठ सतीदास जा तातेड की पुण्यस्मृति में और आध्यात्मिक वैभव का प्रकाशन श्री कन्हैयालालजी तातेड की ओर से उनके पूज्य पिताजी श्री सेठ आसकरण जी तातेड की पुण्यस्मृति मे किया गया था।

इन प्रवचन सकलनो की मुख्य विशेषताएँ यह हैं कि प्रवचन-कार आचार्य श्री के विचारो को उनकी भाषा मे इस रूप में सम्पादित व आयोजित किया गया कि पाठक को यह अनुभव होता है कि हम आचार्य श्रीजी की वाणी का ही श्रवण कर रहे

है। यही कारण है कि पाठको की इन प्रवचन सकलनो की माग की पूर्ति के लिए 'आध्यात्मिक ज्योति' के नाम से दोनो प्रवचन-सकलनो के प्रवचनो को प्रकाशित कर रहे हैं।

परम श्रद्धेय आचार्य श्रीजी म० सा० के प्रवचन सदैव शास्त्र समत और साधुभाषा मे ही होते हैं। फिर भी इनके सपादन, प्रकाशन व मुद्रण आदि मे कोई त्रुटि रह गई हो तो उसके लिए हम क्षमायाचना करते हैं।

दसानियो का चौक
बीकानेर (राज०)
पिन ३३४००५

सुन्दरलाल तातेड
मन्त्री

अनुक्रमणिका

卐

सुख-प्राप्ति का साधन

श्री श्रेयांस जिन अंतरजामी, आतमरामी नामी रे।
अध्यातम मत पूरण पामी, सहज मुक्ति गति गामी रे ॥

श्रेयासनाथ परमात्मा के चरणो मे श्रेयोमार्ग की ससिद्धि की भावना और जिज्ञासा के साथ प्रार्थना की पक्तियो के उच्चारण का प्रसग आया है। सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, सर्वशक्ति सम्पन्न परमात्मा की जब आत्मा के समक्ष भावो की दृष्टि से अभिव्यक्ति होती है, तब वे मानो अन्तर्यामी बन जाते हैं और वर्षो से सोई हुई आतरिक चेतना सक्रिय होकर उठने की स्थिति मे आती है।

इस आत्मस्वरूप को समझाने के लिए वीतराग वाणी के माध्यम से विविध रूप मे प्रयास किए जा रहे हैं, ताकि इस प्रयास को हम जीवन मे मूर्तरूप देकर अभीष्ट सिद्धि प्राप्त कर सकें।

आज का यह विराट विश्व अनेक प्रकार की उलझनो मे उलझा हुआ है और अनेक आतरिक स्थितियो मे अपनी अ`त-श्चेतना का हनन कर रहा है। इन विकट परिस्थितियो मे यदि कोई प्रकाशस्तम्भ हैं, यदि कोई अवलबन हैं और यदि इस जीवन को आगे बढाने के लिए कोई आदर्श हैं तो वे सिद्ध परमात्मा ही हैं। उन परमात्मा के स्वरूप को हम दूर से न देखें परन्तु अपनी अतरग स्थिति मे देखें। आश्चर्य इस बात का है कि उस सन्निकट स्वरूप को भी आत्मा देख नही पा रही है और आत्मा से कोसो दूर रहे तत्त्व को वह अपने समीप मान रही है। यह बडी विचित्र दशा है।

बधुओ ! जिस घर मे पवित्र निधि भरी हुई है और जिसके लिए बाहर जाने की आवश्यकता ही नही है, उस पर तो व्यक्ति दृष्टि नहीं डाल रहा है और जहा निधि नही है तथा निधि का सिर्फ भ्रम हो रहा है, उसके पीछे वह मृग की तरह भटकता है। जैसे कस्तूरी मृग को अपनी नाभि मे से कस्तूरी की सुगध आती है, तब उसका मन छटपटाने लगता है कि यह सुगध बडी अच्छी है, यह कहा से आ रही है ? उस वक्त वह सोचता है कि इस जगल मे अवश्य ही कोई खान होगी, जहां से यह सुगध आ रही है। मैं अपनी शक्ति लगाकर उस खान को खोज लू और तब झाडियो में इधर उधर छलाग लगाता हुआ वह मृग जगल मे भटकता है। परन्तु झाडियो अथवा पहाडियो के बीच मे वह सुगध नही मिल पाती। वह नीचे से ऊपर और ऊपर से नीचे अथक परिश्रम करके आखिर मे थक जाता है और म्लानता का अनुभव करने लगता है। परन्तु फिर भी उसको सुगध की खान नही मिल पाती। उस मृग को इस बात का भान नही है कि कस्तूरी की वह सुगध पहाडो की झाडियो या चट्टानो मे नही है, अपितु अपने मे ही है। इस ज्ञान के अभाव मे अपने मे ही रहने वाली कस्तूरी को वह प्राप्त नही कर पाता और उसकी तलाश मे ही उसका जीवन समाप्त हो जाता है। क्या यही अवस्था आज के मानव की भी नही हो रही है ?

मानव की आत्मा आतरिक सुख की सुगध प्राप्त करने के लिए यदा कदा बाहर के भौतिक पदार्थों के आकर्षण से प्रभावित होती है और सोचती है कि ऐसे सुख की महक इनसे मिल जाएगी। अत उसको ढूढने के लिए वह आकाश-पाताल एक कर रहा है। उसने वन प्रदेश ढूढे, समुद्र की गहराई मे पहुचा, परन्तु उसे वह नही मिली। फिर मानव ने सोचा कि आकाश मे उडू।

ऐसा सोचकर ही वह नही रहा और वह उड चला । तथाकथित चन्द्रलोक और मगल आदि के ऊपर पहुचने के भरसक प्रयत्न कर रहा है । लेकिन आप यह सुनिश्चित रूप से मान कर चलिए कि भौतिक दृष्टि से यह वैज्ञानिक उपलब्धि हो सकती है, परन्तु आत्मा की वह पवित्र महक, वह सुगध उसे कभी नही मिल सकती है ।

आज का चिंतक, आज का विचारक और आज का युवक वैज्ञानिक उपलब्धियो को देखकर चकित हो रहा है और सोच रहा है कि विज्ञान कहा से कहा पहुच गया । आज विज्ञान ने दुनिया को नाप लिया है और सोचता है कि इस ससार मे वही सब कुछ है । आत्मा और परमात्मा की वार्ता तो धमस्थानो तक ही सीमित है । लोग सोचते हैं कि हमको तो विज्ञान की ओर बढने में ही सुख मिलेगा, धमस्थानो की ओर जाने से नही ।

इस प्रकार की भ्रात धारणा एव गलत विश्वास आधुनिकता के लक्षणो के साथ-साथ आज के वायुमण्डल मे व्याप्त से है । यही कारण है कि आज के मानव को जिस महत्त्वपूर्ण स्थान पर योग-दान करना चाहिए, वहा तो वह नही कर रहा है और जहा शक्ति के उपयोग की आवश्यकता ही नही, वहा वह शक्ति से भी अधिक काय कर रहा है । वह सोच रहा है कि मुझ को अमुक स्थान पर कुछ न कुछ मिलेगा । परन्तु उसे इस प्रकार कुछ भी सुख-शाति प्राप्त होने वाली नही है ।

आज जितना विज्ञान का विकास हुआ है, क्या मानव को उतनी आत्मशाति भी मिली ? या केवल अशाति ही प्राप्त हुई ? आप अपने अन्त करण को टटोलिए । आप कस्तूरी-मृग की तरह भ्रमित न होइए । मृग तो पशु कहलाता है । उसमे मानवीय बुद्धि

का अभाव है। आत्म शक्ति के समान होने पर भी विकास के योग्य जो बौद्धिक माध्यम होना चाहिए, वह उसके पास नहीं है। वह मानव के पास ही है। फिर भी आज का मानव इसका दुरुपयोग कर रहा है। वह इसके सदुपयोग की तरफ लक्ष्य नहीं दे रहा है।

जैसे कहीं पर आग लगी है और आग को बुझाने के लिए कोई व्यक्ति हल्ला मचा रहा है कि यहा आग लग रही है। वह उसका बुझाने के लिए पानी की खोज भी करता है। किन्तु वह नाचता कूदता आग के पास जाता है और उसे शात करने के लिए पानी का प्रयोग तो नहीं करता, लेकिन उसमे ऐसा इधन डालता है, जिससे आग शात होने के बजाय और भी भडक उठती है। ऐसा करके वह व्यक्ति अपनी बुद्धि का, शक्ति का सदुपयोग कर रहा है या दुरुपयोग कर रहा है? इस तरह का काय करने वाले के लिए आप क्या कहेंगे? परन्तु वही मनुष्य यदि एकात के क्षणों मे बठ कर अपना, स्वय का चिन्तन करे, निरीक्षण करे और सोचे कि मैं क्या कर रहा हू, मैं इंधन डाल कर आग को प्रज्वलित कर रहा हू या उसे बुझाने का उपाय कर रहा हू? उस स्थिति मे मानव को अपनी दशा अत्यत दयनीय ही प्रतीत होगी। भले ही मृग की तो पशु कह कर उपेक्षा कर सकते हैं, परन्तु आज के मानव को देखिये कि वह कैसी विषम परिस्थिति में चल रहा है। वह अपनी मानवता को भुला कर दान वता का ताडव नृत्य कर रहा है। ऐसे मानव के लिए आध्या त्मिक चिन्तन ही सहायक हो सकता है। इधर उधर भटकने से शांति प्राप्त नहीं हो सकती।

मैं प्रत्येक भाई बहिन को सावधानीपूर्वक याद दिलाता हू कि आप इस तथ्य को समझें और आत्मा तथा परमात्मा की सुगध

की इन बातो को निरथक या केवल वृद्धो के लिए ही न मानें। जिनकी अवस्था जर्जरित हो गई है, जो वृद्ध हो गए हैं और कार्य करने मे समथ नही हैं, वे इस काय को करेंगे, ऐसी कल्पना भी आप न कीजिए। वे वृद्ध कुछ नही कर पाएगे। यदि आप वस्तुत आत्मिक-सुख और शाति चाहते हैं तो आत्म चेतना को देदीप्यमान बनाना होगा।

आज का मानव इस भौतिक उडान मे न लगता हुआ और इन उडानो को ही उडान न समझता हुआ, जीवन मे वास्तविक सुख की सुगध को ढूढेगा तो इस विषम परिस्थिति मे भी वह सच्चे सुख की खोज कर सकेगा।

आत्मिक स्वरूप को पहिचानने के लिए धमस्थान को पावन भूमि मे प्रवेश कीजिए। धमस्थान की पावन भूमि ये दीवारें, ये कपाट आदि नही हैं। वह पावन भूमि तो हृदय है, जिस पर कर्मों के आवरण रूप किवाड लगे हुए है। यदि उन्हे खोलकर आप धमस्थान मे प्रवेश करेंगे, आत्मा के अन्दर उस प्रकाश पुज को देखने का प्रयास करेंगे तो आप अनुभव करेंगे कि इस लोक मे उस प्रकाश की नितात आवश्यकता है। आप सोचेंगे—अरे, हमने सारी जिन्दगी यो ही खो दी और यही हमारे दुख का कारण रहा। यदि हम पहिले से ही यानि बाल्यावस्था से ही भीतर की ओर मुड जाते तो इस तथ्य को समझने मे सफल हो सकते थे कि इस जीवन का यदि कोई सारतत्त्व है तो वह आत्मा के शुद्ध स्वरूप की उपलब्धि ही है। इस उपलब्धि के लिए प्रारम्भ से ही हम इस वर्णमाला की ओर बढते तो युवावस्था की ओर बढते बढते बाह्य विषयो और इन्द्रियो के लुभावने दृश्यो मे न पड कर युवावस्था में इस दिव्य स्वरूप को प्राप्त कर लेते। परन्तु ऐसा नही हो

पाया तो अब यह परिस्थिति तभी बन सकेगी, जब कि आप धर्मद्वार (हृदय) को अन्दर से खोलेंगे।

आप वास्तविक धर्म को समझिए। धर्म का संक्षिप्त स्वरूप तो यही है—जो सर्वजनहिताय है, जो सब जीवों के कल्याण के लिए है, जो सबको शांति की सांस लेने देता है, सबको आश्रय देता है और सबके मन को पवित्र बना कर अंतर्ज्योति जगाता है।

तरुण वर्ग को यदि सही धर्म का स्वरूप समझ में आ जाए तो वर्तमान में बढ़ रही स्वच्छंदता, उच्छृंखलता स्वयमेव शांत हो जाए। फिलहाल तो वे अपने वर्तमान जीवन में साथ रहने वाले मन की शक्ति, तन का बल, वाणी की कला और बुद्धि की निधि को सिर्फ इन नाशवान् पदार्थों को बटोरने में ही लगा रहे हैं, चंद चांदी के टुकड़ों को संग्रह करने में ही लगा रहे हैं। परन्तु ये कुछ दिन भले ही ऐसा कर लें, आखिर ये कितने दिन साथ रहने वाले हैं? यदि आपने इन योगों को इस तरफ लगा दिया, इस जीवन की तीन धाराओं (ज्ञान, दर्शन और चारित्र) को अपने पास में रखा और युवावस्था का योग दे दिया तो अवश्य ही आपका यह वर्तमान जीवन भी स्वर्गीय आनन्द से आप्लावित हो जायेगा।

यह उधार धर्म नहीं है। यह धर्म सिर्फ वृद्धों के लिए ही नहीं है। यह तत्त्व तो हर एक प्राणी के लिए है। आज बहुतेरे लोग समझते हैं कि हम जो धर्म-करनी करते हैं, यह इस जीवन में नहीं, आगे के जीवन में काम में आएगी। परन्तु मैं कहूंगा कि यदि आपने अन्दर के कपाट को खोल कर धर्म में प्रवेश पा लिया तो आप समझ लीजिए कि आपका कल ही नहीं, आज भी सुन्दर बनेगा। कल के लिए तो आपका सब कुछ सुरक्षित है ही, परन्तु उसके पहिले आपका यह लोक भी सुखकर बनेगा।

वतमान युग मे ग्राप बडे बडे धनवान देखते है और सोचते हैं कि इसके पास अपार सपत्ति है। हो सकता है कि वे धनवान भी अपनी सपत्ति को असाधारण ही समझते हो, परन्तु अब जरा प्राचीनकाल के इब्ब सेठो की स्थिति पर ध्यान दीजिए। आज के धनपतियो की सपदा उनके वैभव के आगे कुछ भी नही है। इतना धन तो उनको नजर मे भी नही आता था।

ऐसे ही एक प्राचीन इब्ब सेठ के पुत्र जम्बूकुमार ने युवावस्था मे प्रवेश किया। उस समय उसका आठ सुन्दर कन्याओ के साथ सगाईसम्बन्ध हो चुका था और विवाह का प्रसग सामने था। यह एक ऐसा प्रसग है कि कोई भी व्यक्ति अपना सवरण नही कर सकता। ऊपरी दृष्टि से वह कितना ही चिन्तन करता हो, परन्तु इस रमणीय और लुभाने दृश्य को छोड कर धर्म मे प्रवेश करे, यह तो विरले ही व्यक्तियो के वश की बात है।

उस श्रेष्ठिकुमार ने आचाय सुधर्मास्वामी के एक ही प्रवचन को सुन कर आत्मिक प्रकाश प्राप्त कर लिया था और उससे अपनी हृदयतन्त्री को झकृत करते हुए वह आचाय सुधर्मास्वामा के समीप से अपने माता-पिता के चरणो मे पहुचा और उनसे निवेदन करने लगा कि हे माता पिता! मैं अब इन पाँचो इन्द्रियो के विषयो मे, मनोहारी विपयो मे रमण नही करना चाहता। ये तो बहुत समय से मेरे साथ लगे हुए हैं, परन्तु मुझे आत्मिक शाति की उपलब्धि नही हो पाई। मैं अज्ञानवश कस्तूरी मृग की तरह जीवन मे भटकता रहा। जब तक मैं उन महात्मा क चरणो मे नही पहुचा था, तब तक तो यही सोच रहा था कि इस जीवन का सुख केवल इन देवागनाओ के तुल्य रमणियो मे ही है। परन्तु आज मेरे भीतर के द्वार खुल गये हैं और मेरे चिन्तन की धारा बदल गई है। अब मैंने निश्चय कर लिया है कि यदि इस युवा-

पाया तो अब यह परिस्थिति तभी बन सकेगी, जब कि आप धर्मद्वार (हृदय) को अन्दर से खोलेंगे।

आप वास्तविक धर्म को समझिए। धर्म का संक्षिप्त स्वरूप तो यही है—जो सर्वजनहिताय है, जो सब जीवों के कल्याण के लिए है, जो सबको शांति की सांस लेने देता है, सबको आश्रय देता है और सबके मन को पवित्र बना कर अंतर्ज्योति जगाता है।

तरुण वर्ग को यदि सही धर्म का स्वरूप समझ में आ जाए तो वर्तमान में बढ रही स्वच्छन्दता, उच्छृंखलता स्वयमेव शांत हो जाए। फिलहाल तो वे अपने वर्तमान जीवन में साथ रहने वाले मन की शक्ति, तन का बल, वाणी की कला और बुद्धि की निधि को सिर्फ इन नाशवान् पदार्थों को बटोरने में ही लगा रहे हैं, चंद चांदी के टुकडों को संग्रह करने में ही लगा रहे हैं। परन्तु वे कुछ दिन भले ही ऐसा कर लें, आखिर ये कितने दिन साथ रहने वाले हैं? यदि आपने इन योगों को इस तरफ लगा दिया, इस जीवन की तीन धाराओं (ज्ञान, दर्शन और चारित्र) को अपने पास में रखा और युवावस्था का योग दे दिया तो अवश्य ही आपका यह वर्तमान जीवन भी स्वर्गीय आनन्द से आप्लावित हो जायेगा।

यह उधार धर्म नहीं है। यह धर्म सिर्फ वृद्धों के लिए ही नहीं है। यह तत्त्व तो हर एक प्राणी के लिए है। आज बहुतेरे लोग समझते हैं कि हम जो धर्म-करनी करते हैं, यह इस जीवन में नहीं, आगे के जीवन में काम में आएगी। परन्तु मैं कहूंगा कि यदि आपने अन्दर के कपाट को खोल कर धर्म में प्रवेश पा लिया तो आप समझ लीजिए कि आपका कल ही नहीं, आज भी सुन्दर बनेगा। कल के लिए तो आपका सब कुछ सुरक्षित है ही, परन्तु उसके पहिले आपका यह लोक भी सुखकर बनेगा।

वर्तमान युग मे आप बडे बडे धनवान देखते हैं और सोचते हैं कि इसके पास अपार सपत्ति है। हो सकता है कि वे धनवान भी अपनी सपत्ति को असाधारण ही समझते हो, परन्तु अब जरा प्राचीनकाल के इब्ब सेठो की स्थिति पर ध्यान दीजिए। आज के धनपतियो की सपदा उनके वैभव के आगे कुछ भी नही है। इतना धन तो उनको नजर मे भी नही आता था।

ऐसे ही एक प्राचीन इब्ब सेठ के पुत्र जम्बूकुमार ने युवावस्था मे प्रवेश किया। उस समय उसका आठ सुन्दर कन्याओ के साथ सगाईसम्बन्ध हो चुका था और विवाह का प्रसग सामने था। यह एक ऐसा प्रसग है कि कोई भी व्यक्ति अपना सवरण नही कर सकता। ऊपरी दृष्टि से वह कितना ही चिन्तन करता हो, परन्तु इस रमणीय और लुभाने दृश्य को छोड कर धर्म मे प्रवेश करे, यह तो विरले ही व्यक्तियो के वश की बात है।

उस श्रेष्ठिकुमार ने आचाय सुधर्मास्वामी के एक ही प्रवचन को सुन कर आत्मिक-प्रकाश प्राप्त कर लिया था और उसम अपनी हृदयतन्त्री का झकृत करते हुए वह आचाय सुधर्मास्वामा के समीप से अपने माता पिता के चरणो मे पहुचा और उनसे निवेदन करने लगा कि हे माता-पिता ! मैं अब इन पाँचो इन्द्रियो के विषयो मे, मनोहारी विषयो मे रमण नहीं करना चाहता। य तो बहुत समय से मेरे साथ लगे हुए हैं, परन्तु मुझे आत्मिक शाति की उपलब्धि नही हा पाई। मैं अज्ञानवश कस्तूरी-मृग की तरह जीवन मे भटकता रहा। जब तक मैं उन महात्मा क चरणो मे नही पहुचा था, तब तक तो यहीं सोच रहा था कि इस जीवन का सुख केवल इन देवागनाओ के तुल्य रमणियो मे ही है। परन्तु आज मेरे भीतर क द्वार खुल गये हैं और मेरे चिन्तन की धारा बदल गई है। अब मैंने निश्चय कर लिया है कि यदि इस युवा-

जब यह बात उन कन्याओ के कानो मे पहुची तो उन्होने अपने माता पिता से कहा, "आप हमारे लिए अन्य किसी भी प्रकार की कल्पना न करें। अब तो जिसके साथ हमारा सम्बन्ध जुडा है, वही हमारे पति हैं। यदि अब वे साधना के माग पर जाना चाहते हैं तो हम भी पीछे नही रहेंगी। फिर भी हम अपनी ओर से उन्हे मनाने की, रोकने की भरसक चेष्टा करेंगी। परन्तु इस काय मे यदि हम विफल हुई तो हम भी अपने जीवन को व्यथ मे गँवाना नही चाहती हैं।

कन्याओ के माता पिता आश्वस्त हो गये और एक ही रात्रि मे उन कन्याओ के साथ उस तरुण का (जम्बूकुमार का) विवाह सम्पन्न हो गया।

जब उन वधुओ के साथ प्रथम रात्रि बिताने का अवसर आया तो भव्य भवन के ऊपर की मजिल में वे तरुणियां सोलह शृगार सजा कर सामने आ गई। वे तरुण को अपनी ओर आक षित करने के लिए नाना प्रकार की चेष्टाए करने लगी। लेकिन पलग पर बैठे हुए तरुण के हृदय मे विषय वासना की ज्वाला जरा-सी भी प्रवेश नही पा सकी।

आध्यात्मिक जागति का काय वस्तुत श्रेष्ठतम काय है। परन्तु इस काय के लिए कौन तत्पर हो सकता है? जिसको आध्यात्मिक जिज्ञासा लगी हुई हो, वही इस ओर मुड सकता है। जम्बूकुमार सोचते हैं कि मैंने अनेक जीवन अन्याय और अत्याचार मे लगा दिये और आतरिक दिव्यता को प्रकट करने मे ध्यान ही नही दिया, यह कितनी बडी हानि है, विडम्बना है!

आज के तरुण और तरुणिया आत्मिक सुख को खोजने की कोशिश करें तो वे भी उस आंतरिक दिव्यता को प्रकट करने में समथ हो सकते हैं।

बधुम्रो ! तलवार की धार पर चलना सरल नही है । फिर भी कदाचित् तलवार की धार पर चला जा सकता है । परन्तु प्राध्यात्मिक, प्रातरिक धार पर चलना उससे भी कठिन है । आप आश्चर्य करेंगे कि ऐसा भी व्यक्ति हो सकता है जो विवाह की प्रथम रात्रि के सम्मिलन के समय जिसके सामने अप्सराम्रो के समान सोलह शृगार से सजी हुई आठ आठ तरुणिया खडी हो और ऐसे मनमहोक समय में भी वह मन वचन काया के अणुम्रो मे जरा भी विकार नही लाये और आध्यात्मिक ज्योति के दिव्य-प्रकाश से चमकता रहे । क्या यह शक्य है ? मैं कहूगा कि यह अशक्य नही है ।

पर तु आज के युवक इस शक्ति से अपरिचित हैं । जीवन की आतरिक शक्ति क्या है ? आध्यात्मिक ओज क्या है ? इसका अनेको को पता नही है । हा, जो इसका आस्वादन कर चुके हैं, वे ही इसका पता लगा सकते हैं ।

वतमान मे अधिकाश व्यक्ति सोचते हैं कि ध्यान लगाते हुए काफो समय व्यतीत कर दिया, परन्तु आज तक उससे कुछ भी नही मिला । क्या वे जमीन मे बीज बोते ही तत्काल उसका फल लेना चाहते हैं ? जब दुनिया मे साधारण-से साधारण बीज भी समय पर फल देता है, तब आज का मानव यह चाहे कि हम अभी धमस्थान मे जाए और आज ही फल मिल जाए, हमे दिव्य फल मिल जाए, तो यह एक हँसी की ही बात होगी ।

आज के युवको को और बुजुर्गों को दृढ निश्चय के साथ शाति का धरातल तैयार करना है । प्राणिमात्र को शाति देना है तो दृढता के साथ धम का द्वार खोलना होगा और उसके खुलते ही आध्यात्मिक तेज प्रकट होगा । आप बाह्य शक्तियों को क्या

देख रहे हैं ? आंतरिक शक्तियों को देखिए और उनकी सुगंध लोजिये। इन्सान को चाहिए कि वह धर्मस्थान पर पहुंचे और उसका द्वार खोले।

अब मैं पुन पूर्वोक्त कथा-प्रसग का सकेत करता हू कि उसी रात्रि का पाच सौ चोर जम्बूकुमार के भवन मे चोरी करने के लिए प्रविष्ट हुए परन्तु उनके सरदार के अतिरिक्त सबके पैर चिपक गये। यह कैसे हुआ ? यह सब जम्बूकुमार के ब्रह्मचर्य की महिमा है। पाच सौ चोर उस श्रेष्ठिकुमार के घर के आगन मे रखे हुए धन की पोटलिया बाध रहे है और उनके पैर चिपक जाए तो यह कौन सी शक्ति है ? उसको समझाने मे समय लगेगा अत अभी तो इतना ही सकेत देता हू कि जो सच्चे मन से काम करता है, उसी का असर होता है।

आप श्रेष्ठिकुमार की स्थिति को मस्तिष्क मे लें कि पाच सौ चोरो के पैर चिपकने की शक्ति उसमे किस सकल्प से पैदा हुई ? चोरो का सरदार सोचता है—मुझे देखना है कि यह कौन मत्र वादी है ? मेरे पास दो विद्याए हैं। एक विद्या के प्रयाग से मैं सब को नीद मे सुला देता हू और दूसरी से सभी ताले खोल देता हू। परन्तु यहा ता दानो ही विफल हो गई। सब तो सो गए परन्तु यह मनुष्य क्यो और कैसे बैठा रहा ? ये ताले तो खुल गए परन्तु मेरे साथियो के परो मे ताले कसे लग गए ?

जब चोरो का सरदार ऊपर जम्बूकुमार के कमरे के सामने पहुँचता है तो प्रथम दृष्टिपात होते ही साश्चर्य सोचने लगता है कि इस पलग पर बैठने वाला क्या इन्द्र है ! और क्या उसके सामने खडो रहने वाली इन्द्राणिया हैं ? क्या यह स्वर्ग है ? परन्तु दूसरे ही क्षण वह सोचता है कि यहा तो एक युवक है। जहा इन्द्राणिया हो, वहा इन्द्र भी मन को नही रोक सकता, वश में

नही रख सकता । परन्तु यहा तो इन्द्राणियो के सामने यह तरुण बैठा हुआ है । मैं अपनी श्रेष्ठ शक्ति इसे दे दू और बदले में पैर चिपकाने वाली शक्ति क्या है तथा उसका प्रयोग कैसे किया जाता है, वह शक्ति मैं इससे ग्रहण कर लू तो मेरा जीवन सफल हो जायेगा । ऐसा विचार कर चोरो के सरदार ने अपने आपको उस तरुण के चरणो मे अर्पित कर दिया ।

उस महापुरुष की शक्ति को उसने समझ लिया था । उसको विश्वास हो गया था कि यह सब आतरिक शक्ति का प्रभाव है । सरदार के समर्पण के साथ ही उन सभी चोरो के पैर भी खुल गए । उन्होने भी चोरी का धधा छोड कर अपने स्वरूप को समझ लिया । उनके सामने एक द्वार खुला और उससे अनेको की जिन्दगी सुधर गई ।

आज का मानव भी यदि अपनी शक्ति के अनुसार प्रयत्न करे तो क्या ऐसा नही हो सकता ? आज अनैतिकता का दौरदौरा है । आज मानवता खत्म हो रही है । नैतिकता के इस पतन में जिनका योग है, यदि वे अपने जीवन को आध्यात्मिकता की ओर मोड लें तो ससार को शाति की श्वास मिल सकती है । परन्तु इसके लिए एक ही रास्ता है कि अपने निज स्वरूप को पहिचानने का प्रयत्न किया जाये । अत सभी प्रयत्नो के द्वारा हमें उस अतर्यामी को प्राप्त करना है, उसको ही समझना है, जो—

श्री श्रेयांस जिन अतरजामी, आतमरामी नामी रे ।
अध्यातम मत पूरण पामी, सहज मुक्ति गति गामी रे ।

बीकानेर—

स० २०३०, आषाढ शुक्ला १४

चिन्तन का प्रथम सूत्र : 'मैं कौन हूँ'

श्री श्रेयास जिन अतरजामी आतमरामी नामी रे" "

परमात्मा के चरणों मे आतरिक उल्लास के साथ किया गया उद्बोधन इस लोक मे रहने वाले परम पावन तत्त्व आत्मा के लिए है। जिस आत्मतत्त्व के द्वारा हम चराचर लोक का स्वरूप दृष्टिगत हो रहा है, जिससे समस्त आध्यात्मिक प्रक्रियायें चल रही हैं, वह आत्मतत्त्व इस मानव पिण्ड के पास है और मानव-पिण्ड में ही नहीं, अपितु पशु जगत में भी वह व्याप्त है। उस आत्मिक स्वरूप को पहिचानने के लिए आध्यात्मिक दृष्टिकोण का स्वरूप मानव के मस्तिष्क मे आना जरूरी है।

कभी कभी मनुष्य के मस्तिष्क म यह विचार आता है कि आध्यात्मिक धम की दशा आत्मा के अस्तित्व मे आ सकती है। परन्तु जब तक हमको आत्मा के यथाथ अस्तित्व का ज्ञान नहीं है, तब तक वह जीवन के लिए कैसे श्रेयस्कर हो सकती है ? यह प्रश्न ही प्रकारा तर से सुन्दर तरीके का है। मूल है तो उसमे शाखा प्रशाखायें निकल सकती हैं। यदि बीज है तो वृक्ष बन सकता है। परन्तु बीज ही न हो तो शाखा प्रशाखाए कसे हो सकती हैं ? मानव को इस विषय मे निश्शक होकर चिन्तन करना है।

बधुओ ! जिस आधार को लेकर चिन्तन चल रहा है, उस शरीरपिण्ड मे यह चैतन्य-स्वरूप आत्मा विद्यमान है। उसके लिए अन्य प्रमाणों की आवश्यकता नहीं रहती है। प्रकाश को ढूढने के लिए अन्य प्रकाश की आवश्यकता नही है। इसी प्रकार

आत्मा को ढूंढने के लिए यदि कोई चाहे कि हमको अन्य कोई प्रमाण दिया जाये तो क्या वह प्रश्न महत्त्वपूर्ण होगा ? शास्त्रकारों का कथन है कि इस विषय में स्वसंवेदन ही एक महत्त्वपूर्ण चिन्तन है। स्वयं का अनुभव, स्वयं का संवेदन, इसका मतलब यह है कि 'मैं हूं' इस प्रकार की प्रतीति जहां हो रही है तो उस प्रतीति का आधार, उस प्रतीति का जो गुणी है, वह आत्मा है। किसी भी व्यक्ति से पूछा जाये कि 'तू कौन है ?' तो वह उत्तर देगा कि 'मैं अमुक हूं—मैं अमुक हूं', तो इस वाक्य में भी अमुक कहने के पहले 'मैं' आया। जब 'मैं' शब्द का प्रयोग हो रहा है तो जिसके लिए 'मैं' प्रयोग हो रहा है, वह कौन है ? वह आत्मा है।

जो दृढ संकल्पी 'मैं' है, वह संशय रहित है और स्वयं दृढता के साथ प्रयोग करता है कि 'मेरा है' और 'मैं हूं'। यह 'मैं' वस्तुस्वरूप का कथन है कि 'मैं' यानि आत्मा है और यह कथन अभिमान आदि का सूचक नहीं है। मैं अमुक ज्ञान रखता हूं, मुझे अमुक विज्ञान है, मैं अमुक कला के साथ कार्य कर सकता हूं मेरी इतनी योग्यता है, मैं इतना गणित का कार्य संपादन कर सकता हूं, इतनी गति मुझ में है आदि आदि कहने वाला वह चैतन्य तत्त्व आत्मा है। इस कथन की शक्ति आत्मा से भिन्न तत्त्व में नहीं है। जड तत्त्व में नहीं है। जड तत्त्व तो यह नहीं कह सकता है कि 'मैं हूं।' जिसमें 'मैं' कहने की ताकत नहीं है, वह आत्मा नहीं है। वह चैतन्य नहीं है और जो दृढतापूर्वक 'मैं' कहता हूं, वह आत्मा है।

कभी-कभी वह आत्मा ही विपरीत दृष्टिकोण से अपने आपका निषेध करने पर उतारू हो जाती है और कह दिया जाता है कि

मैं नही हू-आत्मा नही हू । ऐसे लोगो से पूछा जाये कि 'आत्मा नहीं है' यह कहने वाला कौन है? निषेधकर्ता कौन है? जो निषेधकर्ता है, वही आत्मा है। निषेध की दृष्टि से भी आत्मा का स्वरूप स्वयसिद्ध है। उस स्वरूप को सिद्ध करने के लिए अनेकानेक प्रमाण भी दिए जा सकते हैं। परन्तु मूलत उस स्वरूप के पीछे ही वे प्रमाण लागू होते हैं। व्यक्ति के पास तर्क वितर्क की शक्ति है। जो तर्क वितर्क करता है वह तर्क-वितर्क करने वाला ही आत्मा है। वह भले ही अपने मुह से कहे कि जैसे हम अन्य पदार्थों को आखो से देख रहे हैं, उसी तरह यदि कोई आत्मा भी हमको निकाल कर बता दे तो हम मान सकते हैं, परन्तु जो अन्य पदार्थों की तरह आत्मा को भी प्रत्यक्ष नही दिखला सकते, उनकी बातो को हम कैसे मानें? ऐसी भावना अनेकानेक व्यक्तियों की हो सकती है। यह पूर्व मे भी बनी है और भविष्य मे भी बन सकती है।

इसमे कोई आश्चर्य की बात नहीं है—जैसे कि प्रदेशी राजा राजकीय सत्ता और सपत्ति से युक्त था परन्तु साथ ही साथ आत्मा के विषय मे सशयशील भी था। उसका दृष्टिकोण था कि आत्मा नामक तत्त्व जब तक मैं अपनी इन आखो से नहीं देख लू, तब तक मैं उसे मानने को तैयार नही हू। जब किसी भी व्यक्ति के मुह से राजा प्रदेशी यह सुनता कि आत्मा है, परमात्मा है तो वह उस व्यक्ति को पकडवा कर जेल मे बद करवा देता था और उससे कहता कि बता आत्मा कहा है? परमात्मा कहा है? तुम्हारे इस शरीर मे आत्मा है तो मैं उसे देखना चाहता हू। अपनी आखो से यदि शरीर मे आत्मा देख लू तो समझ लू गा कि आत्मा नाम का कोई तत्त्व है। वह हाथ मे नगी तलवार लेकर कैदी का सिर, हाथ, पैर, नाक, कान अलग अलग काट कर देखता

कि उसमे आत्मा नाम का तत्त्व कहा है ? इस प्रकार उसकी नास्तिकता बढती गई। दिन प्रतिदिन वह इसी काय मे लगा रहता था। खून से उसकी तलवार रगी रहती थी और वह अनेक व्यक्तियो को त्रास देता रहता था।

एक बार किसी समय जब वह दूर से थका हुआ आया तो अपने प्रधान जी के साथ बगीचे मे वृक्ष के नीचे विश्राति लेने की दृष्टि से बैठा और वहा विश्राति लेकर जैसे ही उसने दृष्टि डाली ता वहा बगीचे के प्रागण मे जनसमुदाय शात एकचित्त होकर आत्मा और परमात्मा सम्बन्धी वत्तान्त सुन रहा था। यह देख प्रदेशी मन मे सोचने लगा कि यह बगीचे मे कौन है ? कौन जड-मूढ यहां बठा हुआ सुना रहा है और कौन ये जड मूढ सुन रहे हैं ?

राजा प्रदेशी ने यह कल्पना अपने मन मे ही की परन्तु आकृति पर उसकी झलक तक नही आने दी। उसने प्रधान जी को अपने मन की भावना ज्ञात नही होने दी। प्रधान जी के समक्ष तो उसने शिष्ट शब्दो का ही प्रयोग किया और कहा, "प्रधान जी ! ये कौन बैठे हुए हैं और क्या सुन रहे हैं ?" तब प्रधान ने राजा के वचनो को सुन कर कहा, "राजन् ! ये आत्मवादी श्रमण हैं। इनका नाम केशी श्रमण है। आत्मवाद के ये स्वामी हैं। ये भव्य आत्माओ को प्रबोध दे रह हैं, लोक और पर लोक सम्बन्धी प्रक्रियाओ का विवेचन कर रहे हैं। वतमान जीवन मे सुख और शाति कैसे मिले और भविष्य मे भी यह आत्मा वास्तविक शांति का अनुभव कसे करे, इसका उपाय बता रहे हैं।

यह सुन कर राजा प्रदेशी की जिज्ञासा बढी और वह कहने लगा कि क्या ये मुझे आत्मा के दशन करा सकेंगे ? तब प्रधान ने

कहा, "राजन् ! आप पधारिए और उनसे ही प्रश्न कीजिए। वे आपके लिए क्या कर सकते हैं और क्या नहीं, इसका निर्णय मैं नही कर सकता। हा, आपकी प्रसन्नता हो तो हम चलें।"

राजा प्रदेशी प्रधान के साथ सभा के समीप जाकर खडा हो गया और कुछ मुस्कराता हुआ देखने लगा। तब केशी श्रमण ने राजा की ओर सकेत किया—"कौन राजा प्रदेशी ?" अपने नाम को सुनकर राजा प्रदेशी मन मे अचभित हो गया। वह सोचने लगा कि मेरा नाम इन्होने कैसे जान लिया ? परन्तु दूसरे ही क्षण उसने सोचा कि जानें क्यो नही ? मैं बहुतों को नही जानता हू परन्तु मुझे तो वे लोग जानते हैं। सवारी में निकलते हुए कहीं इन्होने मुझे देख लिया होगा अथवा जनता से जानकारी कर ली होगी। इसी कारण इन्होने मुझे पुकार लिया।

राजा इतना चिन्तन कर ही रहा था कि केशी श्रमण ने पुन कहा, "राजन् ! उस वृक्ष की छाया मे बैठे बैठे आपके मन मे विचार पैदा हुआ कि कौन यह जड मूढ बैठा हुआ है और कौन ये जड मूढ सुन रहे हैं ? क्या यह बात सच्ची है ?"

इस प्रश्न ने तो राजा प्रदेशी के जीवन को ही झकझोर दिया। वह सोचने लगा कि मैं कितनी दूरी पर था। मेरी आकृति भी यहा से स्पष्ट रूप मे नही दीख पा रही थी। उस वक्त मैंने जो अपने मन मे सोचा और जिस विचार की झलक प्रधान तक को भी नहीं हुई, परन्तु ये महात्मा उसे कैसे जान गये ?

प्रदेशी अपने अतमन की बात को सुन कर जिज्ञासावान बनता है और फिर प्रश्नोत्तरो के द्वारा वह आत्मा सम्बन्धी जानकारी करता है।

बन्धुओ, राजा प्रदेशी के प्रश्नोत्तरो का प्रकरण बडा विस्तृत है। प्रश्न और उत्तर, प्रतिप्रश्न और पुन उत्तर, इस विषय को सिलसिलेवार सुनें तो आपको आत्मा सम्बन्धी विज्ञान का पूरा बोध हो सकेगा। आप स्वय चिन्तन कीजिए कि इतनी दूरी पर रहने वाले व्यक्ति के मन की बातो को केशी श्रमण ने कैसे जान लिया? आखें तो शरीर तक सीमित हैं। ये शरीर के ऊपरी भाग को देख सकती हैं। परन्तु शरीर के भीतर क्या है, यह आखें नही देख सकती। मन तो शरीर के अन्दर रहने वाला एक तत्त्व है, जिसके माध्यम से आत्मा अपना कार्य सपादन करती है। इस मन की गतिविधि को महात्मा केशी श्रमण ने कैसे पहिचान लिया?

पहिचानने की यह शक्ति बाहरी दृष्टि में नही है, यह अदर की शक्ति मे समायी हुई है। इसके द्वारा सूक्ष्म से सूक्ष्म तत्त्व जाना जा सकता है? स्थूल दृष्टि से सूक्ष्म तत्त्व को नही देखा जा सकता। वायु अन्य पदार्थों की अपेक्षा सूक्ष्म है। जैसे वायु को ग्रहण करने के लिए विशेष यन्त्र की आवश्यकता है, वैसे ही मन की गति को पकडने के लिए आध्यात्मिक शक्ति की आवश्यकता है। इन कल्पनाओ के आकार को आत्मप्रदेशो से जान लेना, यह शक्ति जिसमे हो, वही दूर रहने वाले व्यक्ति के मन के परिणामो को जान सकता है। आत्मा की यह शक्ति हर व्यक्ति मे है और उसको साधना के द्वारा वह प्रकट कर सकता है।

आप यहा जिस वायुमडल मे बैठे हैं, उसमे कैसे कैसे सूक्ष्म तत्त्व समाए हुए हैं तथा आकाश मे कौन कौन से ग्रह, नक्षत्र आदि कितनी दूरी पर हैं और उनका क्या स्वरूप है, इन्हे आप पूर्णरूप से इन चर्म चक्षुओ से नही देख सकेंगे। परन्तु दूरवीक्षण यन्त्र के

नहीं पा रहा है। यदि वह समता दर्शन के महत्त्व को जान ले तथा उसे आचरण मे उतार ले तो परिमार्जित हो जाये।

आत्मा ज्ञाता दृष्टा है और वह अपनी आंतरिक शक्तियो को देख सकती है। परन्तु मानव आतरिक शक्तियो को न देखकर केवल बाहर की आकृतियो को देखकर ही फूला नही समाता है। जैसे कि—मैं कितना सुन्दर हू, मैं कितना गौरवर्ण हू। यह कुकुम का तिलक ठीक है या नहीं है, इसकी परीक्षा लाग दर्पण मे देखकर करते हैं। ऐसा वे क्यों करते हैं ? दर्पण में वस्तु का प्रतिबिंब पडता है, इसी कारण उस मे देखने वाला व्यक्ति जैसा है, वैसा ही देख लेता है। जैसे आप दर्पण से मुखाकृति देख सकते हैं, उसी प्रकार समता के दर्पण में आने आपको देख लें तो अदर के जीवन की समता को देख सकेंगे। जब तक मनुष्य समता के धरातल पर नही आता है, तब तक मस्तिष्क की गुत्थियों को वह नहीं समझ सकता। अनेक व्यक्ति अनेक तरह की कल्पनाओ की कुछ ऐसी पोटलिया लेकर चल रहे हैं, जिससे वे बोझिल बन रहे हैं और सभल नही पा रहे हैं। उनके लिए समता-दर्शन की नितान्त आवश्यकता है। इस दर्शन मे किसी जाति, व्यक्ति, पार्टी या अमुक हिस्से का निर्देश नहीं है। यदि सब समता दर्शन को ग्रहण कर लें तो अपनी उलझी हुई मानसिक स्थिति को ठीक कर सकते हैं और शुद्ध हो सकते हैं। समता दर्शन की दृष्टि से मानव-जीवन का मूल्याकन करें। इससे आप अपने जीवन को भी पहिचान सकते हैं कि मैं कौन हू और मुझे क्या करना चाहिए। परिवार के साथ मेरा क्या सम्बन्ध है, समाज के प्रति मेरा क्या उत्तरदायित्व है, राष्ट्र के लिए मेरा क्या कर्तव्य है और विश्व के साथ मेरी क्या जिम्मेदारी है ? परन्तु ऐसा सोचें और करें कैसे ? जब मापदण्ड ठीक बन जाये, तभी यह हो सकता है। परन्तु आज

के मानव का दृष्टिकोण क्या है ? वह बाह्य दृष्टि से व्यक्ति का मूल्याकन करता है। बाहरी दृष्टि से यदि कोई किसी का मूल्याकन करता है और देखता है कि यह व्यक्ति अच्छी पोशाक सजा कर आया है तो यह बहुत बडा आदमी है और इस व्यक्ति की पोशाक साधारण है तो कुछ भी नही है। ऐसा सोचने वाला व्यक्ति अपने स्वरूप को भूलता है और दूसरो के साथ भी ईमानदारी का व्यवहार नही करता है। इस दृष्टि के कारण ही इन्सान विषमता के दलदल मे फसा हुआ है। इस सम्बन्ध मे एक रूपक है।

किसी गाव मे एक पटेल था। वह था तो पैसे वाला परन्तु उसकी पोशक वैसी ही थी, जसी कि गावो मे पाई जाती है—रेजे की मोटी कसोदार अगरखी, रेजे की मोटी धोती और वैसी ही जूतिया। ऐसी पोशाक के साथ वह पटल किसी शहर मे आभूषण खरीदने के विचार से एक बडे जौहरी की दूकान पर पहुँचा। दूकान के बडे जौहरी जी तकिये के सहारे बैठे हुए थे और दस-बीस मुनीम गुमास्ते काम कर रहे थे। पटेल के पैरो की आहट सुन कर सबकी नजर उसकी तरफ गई। परन्तु उसकी पोशाक गाव मे रहने वाले साधारण व्यक्ति जैसी होने के कारण उन्होने सोच लिया कि वह कोई मामूली आदमी होगा। ऐसा सोच कर किसी ने उसके साथ बातचीत तक नही की और सब अपने-अपने काम मे लग गये।

पटेल कुछ देर दूकान पर खडा रहा। उसने सोचा कि मेरी तरफ ये देखे और कुछ पूछें तो मैं इनसे माल लू, जवाहिरात खरीदू। परन्तु वहा खडे रहने पर भी किसी ने उसकी तरफ दृष्टि नही डाली तो उसने सोचा—"अरे, इन्होंने मेरा मूल्याकन पोशाक से किया है और मुझे ना कुछ समझ लिया है। इन्होने मेरी तरफ

इंसानियत के नाते से भी नहीं देखा। यह कितनी बडी विषमता है।

आज भी क्या भारतभूमि पर इसी तरह से मूल्यांकन नहीं हो रहा है ? जहा इस तरह से मनुष्य का मूल्यांकन हो वहा आत्मा के स्वरूप को कैसे समझा जा सकता है ?

उस पटेल में आत्मा की शक्ति थी, चिन्तन था। उसने तय किया कि ये लोग पोशाक से मूल्यांकन कर रहे हैं, अत इनको कुछ सावधान करना चाहिए। ये जौहरी तो बने बैठे हैं परन्तु सच्चे जौहरी नहीं हैं। ये बुद्धिमान हैं परन्तु इनमे स्वय का विवेक नही है।

पटेल थोडी देर दूकान पर खडा रहा और फिर नीचे उतर कर बाजार में चला गया। आगे जाकर उसने किसी व्यक्ति से धोबी की दूकान का पता पूछा और वहा जा पहुँचा। पटेल ने धोबी से कहा, "भाई, किसी मत्री या बडे आदमी की पोशाक भी तुम्हारे पास धुलने को आई है क्या ?" धोबी ने उत्तर दिया, "हा आई हुई है।" पटेल ने कहा, "उसे धोना है, या वह तैयार है ?" जवाब मिला कि पोशाक धुली हुई तैयार है। इस पर पटेल ने कहा, "भाई, थोडी देर के लिए वह पोशाक मुझ किराये पर दे दो। मैं उसका किराया और साथ ही दुगुनी धुलाई भी दे दूगा।" ऐसा सुन कर धोबी ने सोचा कि यह पटेल है या अन्य कोई है ? मैं कीमती पोशाक इसे दे दू और वह वापिस लाकर न देवे तो क्या हाल होगा ? इधर पटेल ने भी सोचा कि धोबी असमजस मे पड गया है। ऐसा विचार कर उसने कहा—"तू क्या डर रहा है ? पोशाक के बदले जितने रुपये चाहिए, ले लो।" ऐसा सुनते ही धोबी खुश हो गया और उसने पटेल को कीमती पोशाक सौंप दी।

पटेल ने फिर सोचा कि केवल पोशाक से ही काम नही चलेगा। इसके साथ और भी सामग्री चाहिए। अत उसने साबुन खरीदा बढिया बूट खरीदे और एक बढिया बेंत भी मोल ली। फिर वह एक तालाब पर पहुँचा। वहा साबुन लगा कर नहाया और फिर सारी सामग्री से उसने अपनी काया को सुशोभित कर लिया। इस प्रकार उसने ऊपर की सारी सजावट कर ली और बाजार के बीच मे से होकर चल पडा।

अब पटेल फिर उसी जौहरी की दूकान के समीप पहुँचा। बडे जौहरी जी ने उसे देखते ही मुनीम-गुमाश्तो से कहा, "देखो, कोई बडा आदमी या मत्री आ रहा है।' ऐसा सुनते ही बडे मुनीम जी उठे और उनके साथ दूसरे गुमाश्ते भी उठ खडे हुए। वे सब दूकान के नीचे आये। बडे मुनीम जी ने हाथ मिलाया और नम्रतापूर्वक कहा—"पधारिये, साहब।"

यह सब देख कर उस पटेल ने सोचा कि यह मेरी कद्र नही हो रही है, यह तो मेरे शरीर पर पडी हुई कीमती पोशाक की कद्र हो रही है।

इसके बाद सबसे पहिले चाय नाश्ते का प्रबध हुआ। बडे मुनीमजी ने चुपचाप सारा इन्तजाम करवा दिया। सेठ साहब ने भी बडे प्रेम के साथ कहा, "साहब, भीतर पधारिये।" साहब अदर गये। वहा बहुत बढिया तैयारी थी ही। चादी का बाजोट, चांदी के थाल-कटोरिया, यह सब आप सेठ लोग समझते ही होंगे। थाल अनेक तरह के पकवाना से भरा हुआ था। नकली साहब के पास बैठ कर सेठ साहब बातचीत करने लगे। वे बडे प्रेम से बोले—"आरोगिये साहब।"

पटेल कुछ देर विचार करता रहा और फिर उसने एक

घेवर उठा कर अपनी जेब मे रख लिया। इसके बाद गुलाबजामुन उठा कर दूसरी जेब मे रख लिया। यह सब देख कर जोहरी सोचने लगा, "इन्हे यह क्या हो गया? इनके दिमाग मे खराबी तो नही आ गई?" इतने मे ही देखा तो साहब ने एक जलेबी उठाई और उसे अपने वस्त्र के आगे के हिस्से मे रख लिया। अब तो जोहरी जी से नहीं रहा गया और वे बोले, "साहब, यह आप क्या कर रहे हैं? क्यो व्यर्थ मे अपनी पोशाक खराब कर रहे हैं? आप इस कीमती पोशाक को मलीन मत करें। मैं मिठाई टिफिन बक्स मे भरवा कर आपके साथ भिजवा दू गा।"

ऐसा सुनते ही पटेल ने कहा, "सेठ साहब, यह बढ़िया भोजन जिसकी बदौलत मिल रहा है, उसको ही खिलाना है। आपने मुझे पहिचाना नही। मैं तो वही पटल हू, जो कुछ समय पहिले आपकी दूकान पर आया था परन्तु उस समय मुझ पर आपकी नजर ही नही पडी। अब मैं बढिया पोशाक सजा कर आया हू तो खाने को अच्छी अच्छी मिठाइया मिल रही हैं। आपका जीवन केवल बाह्य दृष्टि की ओर ही लगा हुआ है। उसी दृष्टि से आप मानव जीवन का मूल्यांकन कर रहे है। आप सच्चे व्यापारी नही हैं। आपके पास कसा भी व्यक्ति आये परन्तु आपकी सब पर समभाव की दृष्टि रहनी चाहिए। आपने पोशाक देख कर मेरा सम्मान किया। यदि मैं चाहता तो इस पोशाक से बहुत कुछ ठग सकता था। परन्तु मुझ ऐसा कुछ नहीं करना है। मेरी चैतन्य आत्मा कहती है कि ऐसा नही करना चाहिए।"

पटेल ने इस प्रकार सेठ को उत्तम शिक्षा दी, जिससे उनके जीवन मे एक नया प्रकाश आ गया।

बधुओ, यह तो एक रूपक है। यह कैसा भी हो परन्तु आज

के भाई वहिन वाहर की दृष्टि से ही मूल्याकन कर रहे हैं। आज अदर के चिन्तन से मूल्याकन नहीं हो रहा है। यदि वाह्य पदार्थों के चिन्तन को छोडकर उस सत्-चित् आनन्दघन की ओर दृष्टि है तो ऐसा व्यक्ति कोई धोखा नही द सकता, ठग नही सकता। इसका आप स्वय अनुभव कर सकते हैं। यदि जीवन को साथक करना है तो समता दर्शन का सिद्धात हर एक व्यक्ति के हृदय मे आना चाहिए। तब आप सोचेंगे कि जैसा सत् चित् आनन्दघन मेरे अन्दर है, वैसा ही सामने वालो मे भी इसी रूप मे है। वही योग्यता उनकी भी है। यदि प्रत्येक व्यक्ति का दृष्टिकोण ऐसा वन जाता है तो सभी का जीवन भी समतादशनमय हो सकता है। यदि समतादशन का सिद्धात सबके दिमाग में जम गया तो जन-कल्याण की भावना रामवाण दवा की तरह काम करेगी। अत सब से पहिले समतादर्शन के माध्यम से अपने आपको समझने का प्रयास करें। यदि आप समतादशन के सिद्धात को लेकर चलते हैं तो स्वय को, परिवार को, राष्ट्र को और सम्पूण विश्व को समता मे ढालने का यह सफल प्रयास होगा और राष्ट्रीय घरातल पर व्याप्त विषमता सवथा समाप्त हो जाएगी। साथ ही आप जान सकेंगे कि वास्तविक समाजवाद की स्थापना किस प्रकार हो सकती है।

अत मे मैं इतन ही सकेत करना चाहता हू कि आप प्राथना के माध्यम से अन्दर की शक्ति को समझने का और अन्दर के विचारो को माजने का प्रयास करेंगे तो आपका यह लोक और परलोक दोनों ही सुधर जायेंगे।

卐

वीकानेर—
स० २०३०, आषाढ शुक्ला १५

श्रेयमार्ग प्रेयमार्ग

श्री श्रेयास जिन अतरजामी, आतमरामी नामी रे।
अध्यातम मत पूरण पामी, सहज मुक्ति गति गामी रे।
शब्द अध्यातम अथ सुणीने, निर्विकल्प आवरजो रे।
शब्द अध्यातम भजना जाणी, हाण ग्रहण मति परजो रे।
अध्यातम जे वस्तु विचारी "।

कविता के माध्यम से श्रेयास परमात्मा की स्तुति की गई है। प्रभु श्रयांस जीवन के श्रेयमाग के प्रतीक हैं। विश्व मे दो ही माग हैं—एक श्रेयमार्ग और दूसरा प्रेयमाग। प्रेयमाग की तरफ तो सारी दुनिया जा रही है, परन्तु श्रेयमाग की ओर विरले ही व्यक्तियो का ध्यान आता है।

प्रेयमाग का तात्पय बाहरी भौतिक जगत् से है। इन इंद्रियो से दिखलाई देने वाले नाशवान् मनोहारी दृश्यो से आत्मा प्रेम करने लगती है और क्षणिक सुखों मे ही अपने जीवन की इतिश्री मान लेती है, तो समझ लेना चाहिए कि वह आत्मा प्रेयमार्ग की ओर गमन कर रही है। यह प्रेयमाग ही विश्व की अशाति का कारण है और यही विषमता की जड है। मानव के मस्तिष्क की विकृति इसी से बनती है। यह दशा आज से नहीं, कल से नहीं, सख्यात वर्षों से ही नहीं, असख्यात वर्षों से भी नहीं, किन्तु अनादिकाल से चली आ रही है, फिर भी आत्मा को इन क्षणिक पदार्थों स तुष्टि नहीं हो रही है।

यह सब अज्ञान दशा अथवा अविद्या की अवस्था है। कर्मों

के झझावातो से आत्मा अपने वास्तविक मार्ग से भटकी हुई है। इस प्रकार भटकी हुई आत्मा को स्वय का रूप अर्थात् श्रेयरूप दिखलाई नही पडता है। एक मानव तन मे भी यदि वह अपने श्रेयमाग का वास्तविक रूप समझ ले तो इस लोक और परलोक मे अपने भव्य जीवन का निर्माण कर सकती है।

प्रभु के पवित्र स्वरूप को सामने रख कर स्वय के जीवन मे श्रेयमार्ग अभिव्यक्त किया जा सकता है, जिसे आध्यात्मिक मार्ग भी कह सकते हैं। कई भाई-बहिन आध्यात्मिक शब्द पढते ही हैं परन्तु ऐसा कभी नही सोचते कि अध्यात्म है क्या ? अध्यात्म किसको कहना चाहिए ? वक्ता भी अपने भाषणो मे भौतिक और आध्यात्मिक इन दो शब्दो का जिक्र करते हैं, परन्तु जनमानस मे इन दोनो शब्दो का यथार्थ रूप नही आ पाता है। वे केवल शब्दो मे उलझ जाते हैं। इसलिए कवि आनन्दघन जी ने अपनी कविता मे इस विषय को स्पष्ट करते हुए कहा है कि—

शब्द अध्यातम अथ सुणीने, निर्विकल्प आदरजो रे।
शब्द अध्यातम भजना जाणो, हाण ग्रहण मति धरजो रे।

अध्यात्म भी एक शब्द है। कठ, तालु, ओष्ठ आदि से जैसे अन्य शब्दो का उच्चारण किया जाता है, वसे ही इस शब्द का भी उच्चारण होता है। परन्तु अध्यात्म शब्द के पीछे रहे हुए अथ का अनुसधान करना आवश्यक है। यदि मनुष्य इसके अर्थ को सही तरीके से समझ लेता है तो आध्यात्मिक स्वरूप का विज्ञान उसके मस्तिष्क मे आ सकता है और फिर वह श्रेयमाग के गहन तत्त्व को समझने का प्रयास कर सकता है।

दुनिया को सावधान करने की दृष्टि से ज्ञानीजनो का कथन है कि तुम नाम अध्यात्म, स्थापना-अध्यात्म और द्रव्य अध्यात्म

इन तीनो के विषयो को समझने मे सावधानी रखो। इनम उलझो मत। परन्तु इनको छोड कर तुम भाव अध्यात्म मे ही रमण करो। इस भाव अध्यात्म को ग्रहण करते समय इसके अ दर रह हुए अथ का अनुसधान किया जाए। शब्द को सुन कर उसके निश्चित निर्विकल्प अभिप्राय को ग्रहण करो।

व्युत्पत्ति की दृष्टि स अध्यात्म का अथ है—अतति सतत-भावेन जाग्रदादि सर्वावस्थासु अनुवतते इति आत्मा—अर्थात् निरतर रूप ने जाग्रत और सभी अवस्थाओ मे जो अनुवतन करता है, रहता है, वह आत्मा है और आत्मनि अधि इति अध्यात्मम्–अर्थात् आत्मा के अ दर रमण करना अध्यात्म है।

इस विश्व में प्राणियों का जो रूप दिखलाई दे रहा है, वह सब आत्मिक शक्ति का दृश्य है। आप रग बिरगी पगडिया या टोपिया लगाये हुए अथवा नगे सिर बठे हैं। आपकी पगडियां भिन्न-भिन्न हैं, टोपियां अलग अलग हैं और वस्त्र तथा वेशभूषा मे भी अतर है परन्तु सामा य दृष्टि से मानव मानव मे अन्तर नहीं है। मनुष्य के रूप मे सब एक हैं। पर तु विशेष दृष्टि से यदि पुन चिन्तन किया जाए तो मानव-मानव मे भी भिन्नता दृष्टिगत होती है। सभी मनुष्य एक ही सांचे में ढली हुई वस्तु की तरह एक सरीखे नहीं है। सामा य रूप से उनमें एक समान आकृति दिखलाई देती है। कान, आंखें, नाक, मुह, हाथ-पैर और शरीर, इनकी दृष्टि से तो समानता है पर तु यदि आप विशेष रूप से मानवों का आकार देखेंगे तो उनमे एकरूपता नही, किन्तु विचित्रता मिलेगी। जब किसी मशीन से वस्तुए तैयार की जाती तो उससे जितनी वस्तुए बनती हैं, वे सब एक ही आकार की होती हैं पर तु मानव का ढांचा एक सरीखा नहीं है। सहज ही

ही मनुष्य यह सोच सकता है कि इस विभिन्नता के पीछे कारण है। माता-पिता की विविधता है, इसीलिए मनुष्यो की आकृतियो मे भी भिन्नता है। परन्तु यह हेतु भी ठीक नही बठता है। माता-पिता भिन्न न हो, तब भी एक ही माता पिता की सब सतानें एक सरीखी नही होती हैं। एक ही माता की कुक्षि से पैदा होने वाली सतानो मे भी आप भिन्नता देखेंगे—शारीरिक दृष्टि से, बौद्धिक दृष्टि से और मानसिक दृष्टि से भी। वे सब विचित्रतायें होने पर भी आप उनमे एक समान-तत्त्व अवश्य पायेंगे और वह तत्त्व है चैतन्य स्वरूप आत्मा।

सब आत्मायें दु ख को अप्रिय समझती हैं और सुख उन्हे प्रिय है। सब दु ख से बचने का प्रयास करती हैं और सुख की उपलब्धि के लिए प्रयत्न करती हैं। 'मैं हूं' और 'मेरे सामने यह व्यक्ति है' इतना ज्ञान तो हर एक आत्मा मे पाया जाता है और इस छोटे से ज्ञान की दृष्टि से यदि आप चिन्तन करेंगे तो यह समानता सब मे मिलेगी। शास्त्रीय दृष्टि से कहा जाए तो सब शरीरो के बीच मे रहने वाली आत्मायें योग्यता की दृष्टि से एक सरीखी हैं। उनमे भिन्नता नही है।

हिलने-चलने आदि की क्रियायें इस आत्मा की उपस्थिति मे ही होती हैं। खाने पीने का पुरुषार्थ भा इस आत्म शक्ति के रहने पर ही होता है। छोटे बच्चे के समक्ष भा यदि कडवी वस्तु रख दी जाए तो वह ग्रहण नही करेगा। वह मीठे (मधुर) पदार्थो को खाने की कोशिश करेगा। इस प्रकार कडवे और मीठे पदार्थो की पहचान करने वाला कौन है? मोट तौर पर तो व्यक्ति यही सोचता है कि उसकी पहिचान करने वाली जिह्वा है। परन्तु आप गहराई से विचार करेंगे तो ज्ञात होगा कि जिह्वा नही है। जिह्वा तो एक मुर्दे मे भी विद्यमान है। उस की जिह्वा पर आप

मीठा पदार्थ रखिए तो वह मीठे के जायके का अनुभव नही करेगी या कालकूट जहर रख दीजिए तो भी उस जहर का अनुभव नही कर सकती। इससे यह भली-भाति सिद्ध होता है कि जिह्वा कडवे और मीठे का अनुभव करने वाली नही, परन्तु उसके अदर रहने वाला जो तत्त्व है, वही उसका अनुभव करने वाला है। वह तत्त्व विज्ञानवान है और इस प्रकार प्रतीति कराता है कि कटु पदार्थ खाने से हानि होगी और मधुर खाने से पुष्टि। परन्तु जो व्यक्ति आत्मस्वरूप को भूल कर सिर्फ जिह्वा को ही सब कुछ समझता है या नेत्रो को अथवा नासिका या श्रोत्रेन्द्रिय आदि को ही महत्त्व देता है, वह प्रेयमार्ग का अनुगामी है। उसकी आत्मा अज्ञान से आच्छादित है। अज्ञान ससार के दुःख का कारण है और वही विषमता की सृष्टि करने वाला है। इसी प्रेयमार्ग का अनुसरण करने के कारण ही आत्मा की दुर्दशा हो रही है। इन्सान जब अपने आपको भूलता है तब उसकी ऐसी ही दशा होती है। यदि वह इससे मुड कर अपनी मूल दशा मे आ जाए और चिन्तन करने लगे कि मैं आत्मा हू और मेरी जो आतरिक शक्तिया हैं, ये यदि सही ज्ञान के साथ हैं तो आध्यात्मिक सुख की उपलब्धि हो सकती है और निज स्वरूप के प्रकट होने से विश्व के सामने भी समता-सिद्धात का सही रूप आ सकता है। यदि इस प्रकार का चिन्तन चला तो उसका श्रेयमार्ग में समावेश होगा और वह आध्यात्मिक शक्तियो को भली-भाति समझ सकेगा तथा अध्यात्म शब्द के निर्विकल्प अर्थ को ग्रहण करेगा।

आत्मा के सद्भाव मे मेरी काया की यह रौनक है, जिसकी उपस्थिति मे मैं सुख-दुःख का सवेदन कर रहा हू, जिसके रहने पर मैं पुरुषार्थ कर सकता हू, वह तत्त्व निश्चित है, दिव्य-रूप है, अमर है। उसको म कभी भी विस्मृत नही करू। यदि उसने इस

प्रकार का अर्थ अध्यात्म शब्द से ग्रहण किया तो वह व्यक्ति अवश्य आध्यात्मिक शक्ति की ओर बढ सकता है। इसीलिए कविता मे सकेत है कि—

'शब्द अध्यातम अर्थ सुणीने निर्विकल्प आदरजो रे।'

निर्विकल्प का मतलब यह है कि सशय-रहित होकर उस तत्त्व को ग्रहण करो। यदि कोई इस सशय में पडा कि मेरी आत्मा है या नही ? मैं जो शुभ कम कर रहा हू, इसका फल मुझे मिलेगा या नही, परलोक है या नही, आत्मशक्ति का सुख है या नही, परमात्मा है या नही तो ये सब विकल्प हैं। ये विकल्प मोह-जनित हैं, अज्ञान से परिपूरित हैं। इनमे उलझने वाली आत्मा निर्विकल्प अथ को ग्रहण नही कर सकती है। इसलिए सबसे पहिले अध्यात्म शब्द सुनते ही मन मे सशय-रहित भावना पैदा हो जाए कि अध्यात्म शब्द का अथ यह है कि इस शरीर-पिंड मे रहने वाली मेरी आत्मा भूतकाल मे थी, वतमान मे है और भविष्य मे रहेगी। जो त्रिकाल अवाधित तत्त्व है, वह मेरा है और वही अध्यात्मजीवन का मूल है। इस प्रकार अध्यात्म शब्द को ग्रहण किया गया तो इसान जीवन की सभी विषमताओं का शमन करने के लिए तत्पर होगा। फिर उसकी अवस्था सिफ शब्द तक सीमित नही रहेगी।

सब मे रहने वाली आत्मायें योग्यता की दृष्टि से समान हैं, परन्तु उन आत्माओ ने क्वचित् अथ को ही ग्रहण किया, अत विचित्रता पैदा हुई। यदि ससार की सभी आत्मायें सासारिक पदार्थों म न उलझ कर अध्यात्मजीवन के पूण लक्ष्य को ग्रहण करें और ऐसा चितन करें कि जितनी भी आत्मायें हैं, वे सब मेरी जैसी आत्मायें हैं, मेरे तुल्य हैं, तभी कल्याण हो सकता है।

दूसरे शब्दो मे कहा जाए तो योग्यता की दृष्टि से वे परमात्मा के तुल्य हैं और जब ऐसी स्थिति है तो इन आत्माओ के साथ मैं द्वन्द्व क्यों करू, धोखेबाजी क्यो करू ? यदि मैं आध्यात्मिक जीवन की दृष्टि से चिन्तन नही करता हू तो मैं परमात्मा के साथ धोखा करता हू । मैं मनुष्य को नही ठगता हू परन्तु आध्यात्मिक दृष्टि से परमात्मा को ठगता हू । मैं अपने पडोसियो को धोखा देकर प्रसन्न होता हू तो आध्यात्मिक दृष्टि का चिन्तन मुझ बताता है कि तू आध्यात्मिक नही है, भौतिक है । तू पडोसियो को अपने तुल्य नही समझ रहा है । यदि समाज को विषमता को देखकर कोई खुश होता है तो समझना चाहिए कि वह भौतिक है, आध्यात्मिक नही है, अज्ञानी है । समाज मेरे भाइयो का समूह है । मैं अपनी हवेली मे बैठ कर गुलछर्रे उडाता हू और यह सोचता हूँ कि मेरे पास तो पक्का मकान है, तीन मंजिली हवेली है, मै तो सब तरह से सुखी रह सकता हू । मेरे पास मे रहने वाले गरीबों की झोपडिया भले ही जलें, नष्ट हो, मेरा क्या बिगडता है । यदि इस प्रकार का चिन्तन है तो यह बहुत बडे अज्ञान का चिन्तन है । वह नही सोच पाता है कि यह हवेली बनाई किसने है ? इसको बनाने वाले कौन हैं ? क्या स्वय मेहनत करके बनाई है यह हवेली ? इसके निर्माण में उसने अपने शरीर का श्रम लगाया है या श्रम करने वाले दूसरे हैं ? जिन्होंने श्रम करके हवेली को बनाया है, वे व्यक्ति झोंपडियो में रह रहे हैं । उनको कितना क्या कष्ट हो रहा है, आवश्यक सामग्री भी उनको मिल रही है या नही, उनकी दशा कैसी है ? यदि वे इसमें सहयोग नही देते तो तीसरी मंजिल पर नही बैठा जा सकता था । तीसरी मंजिल पर बैठाने का श्रेय किसी को है तो उन श्रम करने वाले व्यक्तियों को ही है । याद रखना चाहिए कि पडोसियो और

श्रम करने वालो के साथ आत्मीयता का व्यवहार नही रखा तो आप भी क्या सुरक्षित रह सकेंगे ?

आज हिन्दुस्तान की दशा बडी विचित्र है। जिस देश का अधिकांश भाग गांवो में रह रहा है, उन ग्रामीण व्यक्तियो की दशा क्या है ? वे क्या सोच रहे हैं ? वे जसे तैसे अपने पेट पर पट्टी बाध कर जीवन बिता रहे हैं ? इनके जीवन की दशा दयनीय हो रही है। परन्तु यह सब देखने सोचने की फुर्सत किसको है ? कहावत है—"मरे तो दूजा, हम करायें पूजा।" दूसरे लोगो की कसी भी दशा हो, हमको इसकी कोई परवाह नही। हमारा उनके साथ कोई सबन्ध नही। परन्तु हमारा ऐसा सोचना ज्ञान के साथ है या अज्ञान के साथ है ? क्या इन भाइयो के साथ हमारा कोई सबध नही है ? वे भाई जिस रोज सबध नही रखेंगे, उस दिन ज्ञात होगा कि हमारी क्या दशा बन रही है ? हमें जिन्दा रहने का अवसर तभी मिलेगा, जब उन व्यक्तियो के साथ आत्मीय-सबध बनाये रखेंगे। भले ही आज वे आर्थिक दृष्टि से कमजोर हैं परन्तु सब हमारे साथी हैं। इनके साथ हर व्यक्ति को आत्मीय भावना होनी चाहिए और चिन्तन करना चाहिए कि ये मेरे भाई हैं, मैं इनका भाई हू।

आज के अधिकाश भाई यही सोचते हैं कि मजदूरी का काम तो मजदूरो का है। हम मेहनत मजदूरी क्यो करे ? यह व्यर्थ का बडप्पन मध्यम वर्ग मे विशेष रूप से देखने मे आता है। अरे ! मजदूरी करना कोई छोटा काम नही है। इस झूठी प्रतिष्ठा के भ्रम मे फसे हुए मध्यम-वर्ग की स्थिति क्या है ? यह वर्ग बडी बुरी तरह से पीसा जा रहा है। उसकी आमदनी के जरिए टूट रहे हैं और दो पाटो के बीच में जैसे दाने पिस जाते हैं, वैसे ही मध्यम वर्ग पिसा जा रहा हैं। ऐसी दयनीय स्थिति मे भी मध्यम-

वग अपनी झूठी इज्जत को लेकर चल रहा है और अभी तक भी इस वग मे जागृति नही आई है। इसने कुरीतियो का भारी बोझ वटा लिया है और व्यथ के कार्यों मे फिजूल खच कर रहा है। कष्ट पाते हुए भी यह कुछ नही विचार रहा है। अरे ! लौकिक रीति रिवाजो की बात तो दूर रही परन्तु आत्मशुद्धि के लिए की जाने वाली तपस्याओ के पीछे भी झूठी प्रतिष्ठा और कुरीति का भूत लग गया है। कोई बहिन तपस्या कर रही है। उसने अट्ठाई आदि कर ली तो उसके पीछे भी कितना क्या किया जाता है, उसका हिसाब आप जानते होंगे। तपस्या तो आत्मशुद्धि के लिए होती है, परन्तु उसके पीछे भी बडे बड आडम्बर होने लगे हैं। यह भी क्या तपस्या है ? ऐसी स्थिति कभी पैदा नहीं करनी चाहिये।

चाहे कोई बड से-बडा आदमी भी क्यों न हो, वह ऐसा अभिमान न करे कि मैं बडा हो गया हू, अत छोटो की परवाह क्यों करू ? यदि इस प्रकार का विचार रहा तो यह बडप्पन कब तक टिकेगा ? आज के मनुष्य को अपना चिन्तन करना है। आज उस की दशा बदल रही है। उसका कम बदल रहा है। आज के मानव के जीवन का सारा नक्शा ही बदल रहा है। परन्तु वह अपने कतव्य को भूल रहा है। लेकिन ध्यान रखना चाहिए कि यदि आज का मानव समता सिद्धात पर आरूढ नही हुआ तो उसकी दशा बडी दयनीय हो जायेगी। यदि आज उसका कोई सहारा है तो अध्यात्म ही है। हमे उसका ही चिन्तन करना चाहिए। हमारे पास यदि कोई चीज है तो—

यो नो वास्ति तु शक्तिसाधनचयो, न्यूनोऽधिकश्चाथवा।
भाग न्यूनतम हि तस्य विदधेमात्मप्रसादाय च।

तत्पश्चादवशिष्टभागमखिल, त्यक्त्वा फलाशा हृदि ।
तद्धीनेष्वभिलाषवत्सु वितरेमाङ्गीषु नित्य वयम् ।

प्रत्येक व्यक्ति को सोचना चाहिए कि मेरे पास सम्पत्ति का या शक्ति का जो कुछ सचय है, उसका स्वल्प-से-स्वल्प भाग मैं अपने लिए ग्रहण करू और जो कुछ शेष बचे, वह अन्य अभाव-ग्रस्त व्यक्तियो के लिए समवितरण मे काम आए। मैं सब के साथ सहानुभूति रखते हुए चलू। यदि इस प्रकार की भावना मानव के मस्तिष्क मे आ जाती है तो वह अध्यात्म के धरातल पर अपने आपको टिकाये रख सकता है और सकटग्रस्त दु खी व्यक्तियो के आसू भी पोछ सकता है। वह अध्यात्म-मार्ग, श्रेय-माग पर आरूढ हो सकता है। यदि वह इस प्रकार का चितन नही करेगा तो स्वय आध्यात्मिक माग से गिरेगा, साथ ही दूसरो को भी गिराने मे सहायक (निमित्त) बनेगा।

कोई व्यक्ति कितना भी सपत्ति सपन्न क्यो न हो, परन्तु उस सम्पत्ति को यदि कायम रखना है तो जितनी भी जनोपयोगी सामग्रिया हैं, उनके यथा अवसर समवितरण मे आस्था होनी चाहिए। तभी समता-दर्शन की भूमिका पर आध्यात्मिकता का साकार रूप बन सकता है।

अत आज के मानव चाहे वे किसी भी दशा मे हो, किसी के पास पैसे का धन हो, बुद्धि का धन हो, उन सबको अपने-अपने धन का सदुपयोग करना चाहिये। यदि अपने पडौस मे, गाव मे, राष्ट्र मे रहने वाले भाइयो के साथ सद्व्यवहार किया, समवितरण किया तो बधुओ! तभी आपकी आध्यात्मिक सम्पत्ति सुरक्षित रहेगी।

बीकानेर—
स० २०३०, श्रावण कृष्णा ७

भेद अभेद-दृष्टि

वासुपूज्य जिन त्रिभुवन स्वामी, घननामी परनामी रे।

वासुपूज्य परमात्मा के चरणो मे जिन भावो को अभिव्यक्त करने के लिए प्रार्थना की पक्तियो का उच्चारण किया गया है, उन भावो को अन्त करणपूर्वक समझने का प्रयास करें, जिससे कि परमात्मा का सही स्वरूप हमारे समक्ष आ सके। यदि उस आदर्श को समक्ष रखकर चलेंगे तो हमारी स्वय प्रभु के तुल्य बनने की आकाक्षा भी उसमे गर्भित हो जाएगी।

सर्वप्रथम परमात्मा के स्वरूप को समझना आवश्यक है। जब यह सचेतन आत्मा केवलज्ञान-युक्त जीवनमुक्त दशा को प्राप्त कर लेती है तब उसे साकार परमात्मा और जब वह सर्वथा शरीर-रहित बन जाती है तब उसे निराकार परमात्म अवस्था कहते हैं। यह एक दृष्टिकोण से व्याख्या है। इस विषय को कविता मे नय दृष्टि से समझाया गया है। यहा दृष्टि का तात्पर्य विचार-धारा है।

प्रत्येक तत्त्व को समझने-समझाने के लिए कई दृष्टियां अपनानी पड़ती हैं। वे दृष्टियां कम-से-कम सात हैं। यदि इस सात दृष्टियो से उस वस्तु के स्वरूप को समझा गया तो उसका पूर्ण रूप समझ मे आ सकता है और इन सातो दृष्टियो में भी एक दूसरे के साथ अभिन्नता है, भिन्नता नही है।

मात्र एक ही दृष्टि सर्वज्ञ के स्वरूप का प्रतिपादन नहीं कर सकती है। समझने की शक्ति ज्ञान में है। उस ज्ञानशक्ति से समझने के लिए शास्त्रकारों ने सक्षिप्त रूप में उसके दो भाग किए

है—एक द्रव्यार्थिक नय और दूसरा पर्यायार्थिक नय। फिर उसका विस्तार सात विभागो मे किया गया है। इन सात विभागो द्वारा यदि परमात्मा को समझने का प्रयास किया गया, आत्मा को समझने की कोशिश की गई, ससार के प्रत्येक पदार्थ को समझने, समझाने का प्रयत्न हुआ तो वे समग्र दृष्टिया सम बन जाती हैं और उससे आत्मा का समग्र रूप समझ मे आ जाता है।

आत्म स्वरूप के साथ ज्ञान का सबध जोडना सर्वथा उपयुक्त होने से सात नयो की उन दृष्टियो को एक रूपक देकर समझा रहा हू। वह रूपक प्रसिद्ध ही है—

सात जन्माध अर्थात् जन्म से अन्धे, जिन्होने कभी किसी वस्तु को आखो से नही देखा, एक ही गाव मे रहते थे। गाव वालो से उन्होने सुना कि बस्ती मे हाथी आया है। उसको देखने के लिए सबकी जिज्ञासा प्रबल बनी। यह खबर उन अन्धों के कानो मे भी पहुँच गई। उन्होने सोचा कि हम भी हाथी को देखें। परन्तु उनके पास देखने का माध्यम अर्थात् नेत्रो का अभाव था। फिर भी उन्होने सोचा कि नेत्रो से न सही, वे हाथी के स्पर्श से ही हाथी को समझने की कोशिश करेंगे।

इसी भावना से वे सातो भी जहा हाथी था, वहा जा पहुँचे। वहा पहुँचकर उन्होने हाथी को हाथ लगाने शुरू किए। एक अधे के हाथ में हाथी का पैर आ गया तो उसने चारो ओर से टटोल कर पैर को देख लिया और निश्चय कर लिया कि हाथी बडे खम्भे के समान होता है। दूसरे के हाथ हाथी की पीठ पर लग गये तो उसने सोचा कि वह चबूतरे सरीखा होता है। उसने भी निश्चय कर लिया कि मैंने हाथी को समझ लिया है। तीसरे अन्धे के हाथ मे हाथी की पूछ आई। वह कल्पना करने लगा कि हाथी रस्सी

की तरह होता है और मैं इसे भलीभाति समझ गया हू। चौथे के हाथ मे हाथी के दात आ गए। उसने सोचा कि हाथी ता मूसल सरीखा होता है और उसका अन्य कोई स्वरूप नही है। एक के हाथ में हाथी की सूड आ गई। उसने भी कल्पना कर ली कि हाथी तो अजगर सरीखा होता है। एक का हाथ हाथी के उदर की ओर गया। उसने नीचे के पेट को टटोला था। वह सोचने लगा कि हाथी पाटिये सरीखा होता है। सातवें अन्धे के हाथ मे हाथी का कान आया। उसने निश्चय कर लिया कि हाथी छाजले समान होता है।

इस प्रकार इन सातो अन्धो ने अपने हाथो के सहारे हाथी को परखा और फिर अपने स्थान पर पहुँच कर वे उसके बारे मे चर्चा करने लगे। उनमे से एक बोला कि आप लोगो ने हाथी को देखा है, वह कसा है ? सब बोल उठे—"हा, देखा है।" वह बोला—"अच्छा, बतलाओ कि वह कसा है ?"

तब जिसने हाथी का पैर पकडा था, वह कहने लगा कि हाथी थभे सरीखा होता है। इस पर पीठ छूने वाला बोला, "तेरा कथन मिथ्या है। तू समझ नही पाया। हाथी तो चबूतरे सरीखा होता है।" यह सुनते ही पूछ पकडने वाला उछल पडा और बोला, "तुम दोनो गलत बोल रहे हो। हाथी तो रस्सी जैसा होता है।"

इस पर दात को छूकर हाथी की जानकारी करने वाला उन तीनो की बात सुन कर बोला, "तुम बकवास करते हो। हाथी तो मूसल सरीखा होता है।" इतने मे ही सूण्ड छूने वाला बोला, "हाथी मूसल सरीखा नहीं, वह तो अजगर सरीखा होता है।" छठे अन्धे ने कहा, "अरे, हाथी तो पाटिये सरीखा है।" सातवा अन्धा बोल उठा, "नहीं, नहीं, वह तो छाजले जसा है।"

इस प्रकार वे सातो अन्धे अपनी अपनी बात पर ही जोर देते हुए एक दूसरे से झगडने लगे। एक कहता था कि हाथी को मैंने सही रूप मे देखा है और दूसरा कहता था कि मैंने उसे सही रूप मे देखा है। परन्तु उन्हे सही स्थिति समझाये कौन ?

इतने मे हा आखों वाला एक व्यक्ति उधर से निकला। उन सातो अधो को झगडते हुए देख कर वह कहने लगा, इस प्रकार से झगडा करके तुम हाथी के सही स्वरूप को नही समझ सकते। तुम्हारे नेत्र नही हैं और इसी कारण यह झगडा हो रहा है। हाथी के एक एक अग को छूकर ही आप अपनी अपनी समझ के अनुसार बोल रहे हैं और मात्र एक एक पर ही बल दे रहे हैं कि हाथी तो रस्सी मूसल, थभा, छाजला चबूतरा, अजगर और पाटिये सरीखा ही है। ये तो उसके अवयव हैं और इनमे से कोई एक समग्र हाथी नही है।

अत मे उस समझदार व्यक्ति ने प्रकट किया कि तुम सातो का कहना यदि अपेक्षा दृष्टि से है तो सही है और यदि तुम अपेक्षा-दृष्टि को छोड कर एकान्तरूप से कथन कर रहे हो तो वह मिथ्या है। इस मिथ्या दृष्टि से तुम वास्तविक तत्त्व को समझ नही पाओगे।

बधुओ! यह रूपक तात्त्विक दृष्टि को समझाने के लिए है। प्रभु के विषय मे मनुष्य यदि एकागी चिन्तन करे और एक ही दृष्टि से उनका एक एक रूप देखे तो प्रभु का समग्र स्वरूप दृष्टि मे नही आ सकता है क्योकि प्रभु तो अनन्त शक्ति-सम्पन्न हैं। यदि अनन्त दृष्टि से देखेंगे तो अनन्त की गिनती नही कर सकते हैं। किन्तु उनका विभाग करके आप सात नय दृष्टियो से परमात्मा के शुद्ध स्वरूप को समझने का प्रयास करेंगे तो भगवान् का सही

स्वरूप ठीक तरह से समझ पाएंगे। उनमें से दो दृष्टिकोण मैं आपके सामने रख रहा हूं। कवि ने कहा है कि—

'निराकर साकार सचेतन " " ""।'

प्रभु के स्वरूप को समझने के लिए दृष्टिकोण दो धाराओं में बह रहा है—एक सामान्य ज्ञानधारा (निराकार) और एक विशेष ज्ञानधारा (साकार)। निराकार की दृष्टि अनेक दृष्टियों से प्रतिबद्ध हो रही है। अभेदग्राहक एक नय है, जिसको संग्रहनय कहते हैं। संग्रहनय की दृष्टि सामान्य को ग्रहण करती है, यह विशेष भेद नहीं करती है। इसीलिए अभेद (संग्रह) नय यह कहता है कि 'एगे आया' अर्थात् आत्मा एक है। आत्मा एक ही है, ऐसा वह नहीं कहता है। आत्मा एक है, इसमें संग्रहनय की दृष्टि है। अभेद नय से आत्मा के समग्र तत्त्वों (गुणों) को दृष्टि से आप ऐसा कह सकते हैं। परन्तु समग्र दृष्टि से 'एक ही है' यह गलत है। आत्मा अनेक भी हैं, यह सत्य है। वैसे ही—'एगे सिद्धा,' परमात्मा एक है। यह अभेद दृष्टि है। परमात्मा के अनन्त स्वरूपों को एक स्वरूप में आप संग्रहनय की दृष्टि से ग्रहण कर सकते हैं। इसलिए कि यह दृष्टि अभेद ग्राहक है। वह निराकार है, उसके स्वरूप का विश्लेषण नहीं कर सकते हैं किन्तु सामान्य रूप से जान सकते हैं। इसमें भेद नहीं हो सकता है। इसलिए वह निराकार दृष्टि है। जैसे मनुष्य जाति एक है। अब मनुष्य जाति एक है तो इस शब्द में कौन मनुष्य बाकी रहेगा? हिन्दुस्तान के सभी मनुष्य आए या नहीं? क्या कोई बाकी रह गया? हिन्दुस्तान, पाकिस्तान, रूस, अमेरिका, इंगलैंड, जर्मनी, जापान आदि कहीं का भी मनुष्य बाकी नहीं रहा। मनुष्य कहने से सबका ग्रहण हो गया। यह कथन सामान्य दृष्टि

से, अभेद ग्राह्य दृष्टि से है। परन्तु मनुष्यो का जब भेद करेंगे, तब व्यवहारनय की दृष्टि से भेद होगा। मनुष्य अनेक हैं तो उनकी आकृतियां भी अलग अलग हैं। इसीलिए मनुष्यो की गिनती होती है—एक, दो, तीन, चार आदि। मनुष्य एक है और अनेक हैं। एक मे सबका ग्रहण और अनेक मे सबका विभिक्तिकरण है। सग्रहनय की दृष्टि से मनुष्य अनेक हैं, ऐसा कहना भी गलत नही है, परन्तु व्यवहारनय की दृष्टि से मनुष्य अनेक हैं, ऐसा कहना भी गलत नही है। इस दृष्टि से चिन्तन किया जाए तो मनुष्यो मे द्वन्द्व नही होगा। इसी तरह सग्रहनय की दृष्टि से परमात्मा एक है और व्यवहारनय की दृष्टि से अनेक है। अत उसको निराकार और साकार कहेंगे तो कोई द्वन्द्व, भेद नही होगा और हम परमात्मा के स्वरूप को सही तरीके से समझ लेंगे, तभी आत्मा के स्वरूप को सही तरीके से समझ पाएंगे।

बधुओ! दार्शनिक बात बडी गहरी होती है। परन्तु मैं कहूंगा कि यदि आप परमात्मा के वास्तविक स्वरूप को और परमात्मा के मार्ग को पाना चाहते हैं तो आपको इन बातो को समझना होगा। आज नही तो कल समझना होगा।

यह बात सही है कि जो व्यक्ति सदा हलका भोजन करता है, उसकी जठराग्नि कमजोर पड जाती है। यदि वह सहसा गरिष्ठ भोजन कर ले तो उसे पचा नही सकेगा। इसके विपरीत जो व्यक्ति हलकी और भारी सब चीजो को खाने का मुहावरा रखता है, वह सबको पचा लेता है। जैसी यह भोजन पचाने की स्थिति है, वैसी ही मस्तिष्क की स्थिति है। अधिकांश व्यक्ति सहज चीजों को—कथा अथवा दृष्टांत को जल्दी ग्रहण करने की स्थिति में रहते हैं। परन्तु यदि आप केवल कथाभाग में ही रस लेंगे और उसके साथ ही यदि दार्शनिक तत्त्व समझने का प्रयास नही करेंगे

परिवार आदि को नष्ट करने के लिए तयार है तो क्या ऐसे मनुष्यों को मनुष्य कहे ? क्या उन्हें समदृष्टि कहें ? आप ही फैसला करें। आप सब मौन धारण करके सुन रहे है और सोच रहे हैं कि यह बात तो हम पर भी लागू होती है। इस प्रकार की प्रवृत्ति छोड़ने के योग्य है।

यह मनुष्य तन कभी कभी ही मिलता है। यदि मनुष्यो मे परस्पर प्रेम नही रहा और ईर्ष्या द्वेष का त्याग नही किया तो यह मनुष्य का जीवन मिलना और न मिलना बराबर है। इससे तो पशु का जीवन ही ठीक कहा जा सकता है।

शरीर की दृष्टि से मनुष्य जाति का समुदाय एक है परन्तु आज का मानव शरीर तक ही सीमित नही रहा है। उसने वर्ण भेद की भी दीवारें खड़ी कर दी है—ये काले मनुष्य हैं और ये गोरे मनुष्य हैं। अरे, कोई चमड़ी का काला या गोरा है तो इससे क्या मनुष्य की आत्मा में भी भेद आ गया ? यह छूत है और यह अछूत है। किसको छूत अछूत समझते हो ? उसके पीछे कोई सिद्धांत है क्या ? यदि आपने अछूत को छू लिया तो क्या अछूत हो गए ? फिर स्नान करोगे तो पवित्र और यदि नहीं करोगे तो क्या अपवित्र रहोगे ? क्या पानी अछूतपन को धो डालता है ?

जो हिन्दुस्तान अखण्ड था, उसके टुकडे टुकडे हो गए। अब और कितने टुकडे करना चाहते हो ? आज अलग अलग गुट या पार्टियां बन गई हैं। वे चाहे राजनीति की दृष्टि से हों या अन्य किसी दृष्टि से हो, परन्तु वे भेद की दृष्टि ही अपना रही हैं। वे आत्मा और परमात्मा के स्वरूप को नही समझ रही हैं। वे अपने ही भाइयों को आपस मे टकरा रही हैं। किन्तु मानव यदि भेद और अभेद दोनों दृष्टि अपना कर चलता रहे तो भिन्नता नही

आ सकती । अत दोनो दृष्टियो से समभाव के साथ चलने का प्रयास करेंगे तो आत्मा के स्वरूप को समझ सकते हैं ।

आज से अढाई हजार वर्ष पूर्व भगवान महावीर के जीवन-चरित्र को देखते हैं तो पता चलता है कि उनका स्वय का जन्म क्षत्रियकुल में हुआ था । वे क्षत्रिय राजकुमार थे । उनके गणधरो को देखिए तो गौतम स्वामी ब्राह्मण कुल में जन्म लेने वाले दिग्गज विद्वान और चारो वेदो के पाठी थे । सुधर्मास्वामी भी ब्राह्मण-जाति मे जन्म लेने वाले थे । धन्ना शालिभद्र का जिक्र सुनते हैं तो वे वैश्य-जाति के थे । अर्जुन माली और हरिकेशी श्रमण सरीखे व्यक्ति जाति से शूद्र थे । परन्तु उनका गुण और कर्म एक हो गया था । वे एकरूप मे चलने लगे । गुण और कर्म द्वारा वहा कृत्रिम जाति-भेद नही रहा । किन्तु—

कम्मुणा बभणो होई, कम्मुणा होइ खत्तिओ ।
वइसो कम्मुणा होई, सुद्दो हवइ कम्मुणा ।।

आप कह सकते हैं कि यह तो बहुत पुरानी बात है । क्या वर्तमान मे ऐसी समानता प्रकट हुई है ? ऐसी समानता कुछ तो हुई है और कुछ आगे भी हो सकता है ।

आपने अभी गाधी-युग देखा है । मैं गांधीजी के समग्र जीवन की बात नही कहता हू । उन्होने स्वतन्त्रता प्राप्त करने की दृष्टि से अहिंसा और सत्य की भावना अपनाई । वे मानव-भावना के साथ चले । उन्होने छुआछूत त्यागने को कहा । वे स्वय मोढ जाति के बनिये थे । परन्तु उनके साथ प० जवाहरलाल नेहरू काश्मीरी ब्राह्मण थे, मौलाना आजाद और खान अब्दुल गफ्फार खा मुसलमान थे । विनोबा भावे महाराष्ट्रीय ब्राह्मण थे । जमनालाल बजाज सरीखे वैश्य भी थे । ये सब के सब गाधीजो

के साथ घुलमिल गए। परन्तु यह स्थिति तभी बनी जबकि गुणो के साथ अभेद दृष्टि रखी गई। व्यक्तियो मे यद्यपि भेद था, परन्तु ऐसा होने पर भी गुणो की दृष्टि से समानता थी। गुणों का उन्होंने थोडा-सा अश ग्रहण करके देश के सामने एक आदर्श उपस्थित कर दिया।

आज का मानव माग कर रहा है। वह कह रहा है कि मानव अपने जीवन मे मानवता लायें और मानव मानव को आत्मा को समझने का प्रयास करे। अभेद दृष्टि से मनुष्य एक भी है और भेद दृष्टि से अनेक भी हैं। इसी तरह परमात्मा एक भी है और अनेक भी है। इसलिए परस्पर सघर्ष मत करो। मानव यदि समन्वय की दृष्टि से चले तो शाति का अनुभव कर सकता है।

卐

बीकानेर—

स० २०३०, श्रावण कृष्णा ११

सत् चित्-आनन्द

सुपूज्यजिन त्रिभुवन स्वामी घननामी परनामी रे ।

परमात्मा के चरणो मे भव्यात्माओ का अतर्नाद किसी न-किसी माध्यम से प्रकट हो जाया करता है । भव्यात्मायें जब प्रभु का दशन अपने अन्त करण मे करने का सकल्प करती हैं तो प्रभु को स्मृति पटल पर लाने का उनका प्रयास निरन्तर चालू रहता है और अतश्चेतना मे एक हूक पैदा हो जाती है ।

इस दृश्य जगत मे अनेको प्राणी अपनी विविध क्रियाओ द्वारा कार्य कर रहे हैं, परन्तु उन्हे प्रभु के दशन नही हो रह हैं । इस आत्मा ने अनादिकाल से ससार के पदार्थों का अनुभव किया है और करती ही चली जा रही है । परन्तु इन नाशवान पदार्थों के बीच उस अविनाशी तत्त्व का अश भी दृष्टिगत नही हो रहा है । परमात्मा का स्वरूप कहा है ? कितनी दूर है ? उनको कैसे पाया जाये ? इन सब प्रश्नो का हल एक ही स्थल पर हो सकता है । दूर जाने की आवश्यकता नही, किसी और स्थान का अवलोकन करने की भी आवश्यकता नही है । क्योकि जहा यह प्रश्न उठ रहा है, वही प्रश्नकर्ता स्वय प्रश्नकर्ता को देख लेता है तो उसकी जिज्ञासा शात हो जाती है । परन्तु प्रश्नकर्ता स्वय के स्वरूप को नही देख पा रहा है । जहा से प्रश्न का आविर्भाव हो रहा है, उस भूमिका के दर्शन यदि कर लिए जायें तो परमात्मा कहां है, आत्मा कहा है—इन दोनों प्रश्नो का हल एक ही साथ हो जायेगा । यह प्रश्नकर्ता इस शरीर के अदर है, बाहर नही है । आंतरिक शक्ति को नही पहिचानने के कारण ही बाह्य दृष्टि उसके समक्ष है । अतर्जीवन के महत्त्व का मूल्याकन भलीभाति नही होने

से ही नाशवान तत्त्वों का मूल्यांकन किया जा रहा है। वह अंदर की दिव्य शक्ति चेतना (ज्ञान) रूप है। उसके एक ओर सत् तथा दूसरी ओर आनन्द, ये दो अवस्थायें और हैं अर्थात् सत्, चित् और आनन्द इनके बीच का तत्त्व चित् है। बीच की अवस्था को यदि समझ लें तो सत् भी देख सकते हैं और आनन्द भी प्राप्त कर सकते हैं। लेकिन बीच के तत्त्व को यदि नहीं पकड़ा तो न सत् पा सकते हैं और न आनन्द का अनुभव कर सकते हैं। परमात्मा का समग्र स्वरूप सत् चित् और आनन्द रूप है।

सत् का तात्पर्य है—'कालत्रय तिष्ठतीति सत्।' तीनों काल में जिसका अवस्थान हो, तीनों काल में जो स्थायी रहता हो, वही सत् है। भूतकाल में जिसका अस्तित्व हो, वर्तमान में भी हो और भविष्य में भी रहे, ये तीनों अवस्थायें काल की दृष्टि से जिस तत्त्व की रहती हैं, वही तत्त्व सत् कहला सकता है। परन्तु सिर्फ कालकृत इन तीन अवस्थाओं के रहने पर भी आनन्द और चित् की अनुभूति नहीं होती है, क्योंकि कालकृत ये तीनों अवस्थायें तो आत्मा से शून्य जड़-तत्त्व में भी पाई जाती हैं। जैसे कि यह स्तम्भ भूत काल में था, वर्तमान में है और भविष्य में रहेगा। इसलिए त्रिकाल स्थायी तो स्तम्भ भी है। यह बात दूसरी है कि नये समय तक स्तम्भ एक स्तम्भ के रूप में नहीं रह सकता है क्योंकि प्रति समय अवस्थाओं (पर्याय) का परिवर्तन होता रहता है। परन्तु त्रिकालवर्ती जिन जड़ पदार्थों से मिलकर यह स्तम्भ बना है, वे स्थायी हैं। उन्हें दार्शनिक भाषा में परमाणु कहते हैं। यह कथन जैन दार्शनिक दृष्टि से है। वैज्ञानिकों ने भी परमाणु की परिभाषा की है। इस परिभाषा की शास्त्रीय दृष्टिकोण की और दार्शनिक क्षेत्र की परिभाषा के साथ समानता है। शास्त्रीय दृष्टि से उसको परमाणु (परम+अणु) कहा गया है—जिसके दो हिस्से

नही हो सकें । बौद्धिक दृष्टि से जिसका विभाग नही किया जा सके, ऐसे सूक्ष्मतम अणु को परमाणु कहा है । वैज्ञानिक क्षेत्र मे भी भौतिक विज्ञान वेत्ताओ ने परमाणु की परिभाषा यही की है कि जिसके दो हिस्से नही किए जा सकें, वह परमाणु है । परन्तु भौतिक विज्ञान की आधारशिला प्रयोगात्मक है । वैज्ञानिको ने माइक्रोस्कोप (सूक्ष्मवीक्षण यत्र) से बारीक तत्त्व को देखा और उसको देख कर उन्होने अपनी काल्पनिक दृष्टि से निश्चय किया कि जिस बारीक अणु को देख लिया है, उसके टुकडे नही हो सकते हैं । अत जिसके टुकडे नही हो, वह परमाणु है, यह व्याख्या तो कर दी परन्तु जिस तत्त्व को देखकर यह व्याख्या की गई, वह तत्त्व जन शास्त्र की दृष्टि से अनन्त परमाणुओ का स्कध हो सकता है । लेकिन उन्होने उसको ही अपनी व्याख्या के अनुसार परमाणु समझ लिया । बाद मे जब उसको भी तोडने का प्रयास किया गया तो उन्हे मालूम हुआ कि जिसका हम टुकडा होना नही मानते थे उसके भी टुकडे हो गए—उसके भी इलेक्ट्रोन, प्रोटोन, न्यूट्रोन आदि विभाग हो गए और फिर इनके भी अनेक टुकडे और हो गए। इससे यह सिद्ध हो गया कि वह अनन्त परमाणुओ का पिंड था और वैज्ञानिक उसको प्रारम्भ मे समझ नही पाए थे ।

वैज्ञानिक अपने सिद्धांत के अनुसार प्रयोगशाला मे जितना निणय वतमान मे करता है, वह निणय भविष्य मे भी टिका रहेगा या नही, ऐसा विश्वास नही किया जा सकता है और न ही वैज्ञानिक स्वय उस पर विश्वास करते हैं । उनका कथन भी यही है कि वतमान मे जिन भौतिक साधनो स जो कुछ भी खोज की और उससे जो उपलब्ध हुआ, उसको ही हम कह रहे हैं । समव है कि भविष्य में हमारी यह धारणा भी गलत साबित हो जाए ।

उसके साथ चित् नही । इसलिये जहा सत् तत्त्व होते हुए भी चित् नही तो वहा चेतना नहीं, आत्मा नही । इसीलिए आध्यात्मिक वज्ञानिको ने आत्मा के लिये सत् के साथ चित् विशेषण और दिया और कहा कि सत् के साथ चित् होना चाहिये ।

चित्त का अर्थ चैतन्य है और उसका शुद्ध अर्थ है ज्ञान । ज्ञान उस तत्त्व से अलग नही है । ज्ञान उसका गुण है । वह ज्ञानवान सत् है और सत् का ज्ञाता कहलाता है । यदि वह ज्ञान की पूर्णता को प्राप्त कर लेता है, चरम सीमा को पा लेता है तो वह आनन्द से परिपूर्ण हो जाता है । ये आत्मा की तीन अवस्थायें हैं—सत्, चित् और आनन्द । जो इन तीनो अवस्थाओ से परिपूर्ण है, वह परमात्मा है और जो इनमे से दो अवस्थाओ—सत् और चित् से युक्त है, वह आत्मा है । उसमे भी पूर्णता प्राप्त करने का सामर्थ्य समाया हुआ है परन्तु अभी वह कर्मों से आच्छादित है । उस पर मोह और माया का आवरण लगा हुआ है, वह अपने आनन्द को पाने के लिये छटपटा रही है । वह देखती है कि मेरा प्रिय आनन्द कहाँ है ? वह इस आनन्द की खोज म जहा भी राह मिलती है, वहीं बढती है । उसको पता लगा कि अमुक वस्तु में आनन्द है तो अपने समस्त जीवन की शक्ति लगाकर वह उस स्थान पर पहुँचने की कोशिश करती है, क्याकि वह आनन्द की भूखी है । परन्तु वहा पहुँचने पर भी कष्ट मिलता है और आनन्द की उपलब्धि नहीं हो पाती है, तब वह घवरा कर सोचती है कि यहा आनन्द नही है, पहाड की चोटी पर आनन्द है । लेकिन पहाड मे इद गिद जगली जतु हैं और भयवाने दृश्य हैं । वहा पहुँचना शमय नहीं है । परन्तु उसे यह विश्वास हो जाता है कि पहाड की चोटी पर आनन्द की अनुभूति होने वाली है तो वह शरीर की भी परवाह नही करती है और पहाड की चोटी पर पहुँचने की कोशिश करती

है। किन्तु वहा पहुँचने पर भी आनन्द का अनुभव नहीं होता है। इसी प्रकार समुद्र की गहराइयो मे गोते लगाकर अथवा आकाश मे उडानें भर कर वह आनन्द प्राप्त करना चाहती है, लेकिन उसे वहा पर भी आनन्द नही मिलता है।

यह सब तो मृगतृष्णा के पीछे भटकना है। जैसे ग्रीष्म ऋतु मे मृग को प्यास सताने लगती है, तब वह पानी की खोज मे इधर-उधर दूर दूर तक दृष्टि दौडाता है। रेतोले मैदान मे सूर्य की किरणो की चमक से उसे प्रतीत होता है कि वहां पानी हिलोरें ले रहा है। अत वह सारी शक्ति लगा कर पानी पीने के लिए वहा पहुँचता है। लेकिन वह देखता है कि यहा तो पानो नही है। क्या मैं भ्राति मे पड गया? वह फिर दृष्टि दौडा कर देखता है तो ज्ञात होता है कि पानी तो पीछे रह गया है। वह फिर उसी तरफ दौड कर जाता है। लेकिन वहा पर भी वास्तविक पानी नही होने से उसकी सम्पूण आशाओ पर पानी फिर जाता है। सूर्य की किरणो से रेतोले मैदानो मे पानी जैसा दृश्य दिखलाई देता है, उसको मृगतृष्णा की सज्ञा दी गई है।

भ्रातिवश जैसे मृग पानी की खोज मे दौडता-दौडता अपने आपको समाप्त कर देता है, वैसी ही दशा आज के अधिकाश मानवो की हो रही है। मनुष्य ज्ञान से युक्त है परन्तु उसका प्रयोग वह पाचो इन्द्रियो के विषय सुख की प्राप्ति के लिये कर रहा है, जिनमे वास्तविक आनन्द नही है, सिर्फ लुभावने दृश्य दिखलाई देते हैं।

भौतिक पदार्थों के पीछे मनुष्य भटक रहा है और मानता है कि उनको प्राप्त करने के लिए चाहे जो साधन अपनाना पडे, भले ही खून-पसीना एक हो जाए, परन्तु कोई परवाह नही। उसे तो

चाहिए चद चादी के टुकडे। वह सोचता है—इनको जितना इकट्ठा कर लूगा, उतना ही आनन्द मिलेगा। वह ऐसा कभी नहीं सोचता है कि जिन्होने काफी धन इकट्ठा कर लिया है, क्या उनको आनन्द मिल गया ?

आज भारतवासियो की दृष्टि भी पाश्चात्य जगत् की तरफ लगी हुई है। वे सोचते हैं कि अमेरिका वाले आनन्द में होंगे क्योंकि उनके पास बहुत पैसा है। परन्तु पूछिए उनसे कि आप कितने आनन्द मे हैं? सुख-शाति मे तो हैं? बडी हवेलियों में रहने वालो से भी पूछिए कि आपको सुख है या दुःख? वे अपनी सारी शक्ति लगा करके मृगतृष्णा की तरफ भाग रहे हैं। वे नही सोचते हैं कि यह जीवन क्यो है और क्या है? यद्यपि इन पदार्थों का सर्वथा निषेध नही किया जा सकता है, परन्तु इनसे ही आनन्द मान लेना और इनसे ही चिपक जाना, यह अज्ञान की दशा है। इसीसे आत्मा के आनन्द की शक्ति दब रही है और उसका ह्रास हो रहा है। आज के मानव का सोचना चाहिये कि मैं पूरी शक्ति लगा कर इन पदार्थों को बटोर तो रहा हू परन्तु इनके साथ मेरा सबन्ध नही है। ये स्थायी नही हैं। दुनिया चाहे जिधर भी दौड रही हो, परन्तु क्या हम भी उधर ही भागते जायें? दुनिया मे जिधर भी जाइए, उधर यही रट लग रही है—हाय पसा! हाय पैसा! हाय धन! यदि धन मिल भी गया तो वह कितने दिन तक टिकेगा? उससे आनन्द की कितनी अनुभूति होगी? इसका चिंतन करना चाहिए और यदि चिंतन किया गया तो अनैतिकता की ओर जीवन को नही ले जाते हुए सोचेंगे कि यह तो साधन है—साध्य नही है। साधन को सीमित रखना चाहिए। पेट की पूर्ति तो हर कोई कर सकता है। मनुष्य ही करता है, केवल यही बात नही है। मनुष्य करता है तो इसमें क्या विशेष बात है?

पक्षी के पास तो केवल एक चोच होती है परन्तु वह भी भूखा नही रहता है और परिवार का पोषण भी करता है। पशु भी अपना काय करते हैं। परन्तु मानव के पास तो दो हाथ, दो पैर और विकसित मस्तिष्क है। क्या वह भूखा रह सकेगा?

अरे, भूख पेट की नही, परन्तु पेटी की है। उसके लिये इन्सान अपनी शक्ति को कहा लगा रहा है और कहा कहा भागता फिर रहा है? यह पेटी की तृष्णा जल्दी से पूरी नही होती है। मनुष्य इसमे आनन्द का अनुभव करना चाहता है, इसलिए वह नतिकता और अनैतिकता कुछ नही देखता है। जसे कोई व्यक्ति साचता है कि ईमानदारी से व्यापार करूगा तो थोडे से पसे पैदा होंगे। अत इसमे चालाकी की जाए ताकि पैसे ज्यादा मिल सकें और वह वस्तु मे मिलावट करना चालू कर देता है। ग्राहक की आंखो मे धूल डालने के लिए असली घी मे डालडा या अमुक जाति का तेल डालने की कोशिश करता है। इस मिलावट की दृष्टि से व्यापारी अपनी आत्मा को कितनी मैली कर रहा है? वह सोच भी नही पा रहा है कि उसका जीवन मानवीय धरातल पर है या अमानवीय धरातल पर है? वह जीवन राक्षस का है या मनुष्य का है? यदि आप इसे गहराई से सोचेंगे तो प्रकट होगा कि जो व्यक्ति मिलावट करता है, वह अत्यन्त क्रूर और निदयी बन रहा है। कोई पैसे का गुलाम बनता है, तभी वस्तु मे मिलावट करता है। इससे मानव को कितना नुकसान होता है, इसी चिंतन नहीं करता है। जिसके साथ जिस पदाथ का मेल नही है, यदि वह उसमे मिला दिया जाता है तो इस सयोग से जो पदार्थ बनता है, वह जहरीला बन जाता है। इस अनुचित सयोग से न मालूम मानव के जीवन को कितनी क्षति पहुच रही है? इसका उसका ध्यान नही है। इस तरह से जो वस्तुओ मे मिलावट करता है,

वह चाहे किसी प्रलोभन में आकर ऐसा करता हो परन्तु मैं अनु-मान से चिंतन करता हूं कि ऐसा करके वह मनुष्यों के लिए जहरीला काम करता है। ऐसा व्यापारी या कोई व्यक्ति क्या वस्तुतः देश का ईमानदार और वफादार नागरिक है ? ऐसे आदमी क्या आत्मा की खोज कर पायेंगे ? ऐसे व्यक्तियों के लिए क्या कुछ कहा जाए !

मैं सुनता हूं कि जितनी ऊंचे दर्जे की दवाइयां भारत में बनती हैं, उनमें भी बेईमानी चलती है। आज नकली दवाएं बनने लगी हैं। अरे! रोगी रोग से त्राण पाने के लिए दवा खरीदता है किन्तु निर्माता उन औषधियों को भी शुद्ध नहीं रहने देते हैं। मैंने यह भी सुना है कि क्लोरोमाइसिन की गोलियां आदि को खोल कर दूकानदार बदल लेते हैं और उनमें कुछ दूसरे तत्त्व डाल कर वे गोलियां दे दी जाती हैं, जिससे रोगी का जीवन खतरे में पड़ जाता है और कोई असर नहीं होता है। एक दृष्टि से देखा जाये तो रोगी और दवा में मिलावट करने वाले आपस में एक दूसरे के भाई हैं। यह व्यापरी का दोष है, व्यापार का नहीं। जब व्यापारी इस प्रकार की मिलावट और काला बाजार करते हैं तो अन्य नौकरी वाले भी उनसे पीछे नहीं हैं। वे भी दूसरे व्यापारी बनने की तैयारी कर रहे हैं। इस प्रकार की दुष्प्रवृत्ति इंसान इंसान के बीच चले तो क्या वे मनुष्य हैं ? मैं तो कहूंगा कि वे मनुष्य से भी गए बीते हैं। वे पशु से भी बदतर हैं। पशु कम से कम ऐसा तो नहीं करता है। बंधुओ! वे मानवता के विरुद्ध काम करते हैं और अपनी आत्मा का पतन करने वाले हैं और इसलिए ही कहना पड़ रहा है कि आज मनुष्य की दशा कितनी विषम है ? यही समाज की विषमता है।

मैं सुनता हूं कि विदेशों में ऐसी प्रवृत्ति कम है। जो अपने

देशवासी वहा जाकर ग्राते हैं, वे वहा की ईमानदारी की तारीफ करते हुए कहते हैं कि क्या कहना है वहा की ईमानदारी का ! वहा दूकानें खुली हैं, लाखो का माल भरा पडा है । दूकान का स्वामी नहीं है, ग्राहक ग्राता है बिना रोक-टोक दूकान मे प्रवेश करता है । उसे जो चीज चाहिए वह ले लेता है ग्रौर ईमानदारी से पसे डाल कर चला जाता है । दूकान का मालिक ग्राता है माल को देखता है ग्रौर पूरे पैसे प्राप्त कर लेता है । कहिए, क्या यह ईमानदारी यहा के नागरिको मे है ?

भगवती सूत्र मे तुगिया नगरी के श्रावको का वणन ग्राया है कि वे कसे थे ? बताया गया है कि उनके घर के द्वार सदा खुले रहते थे, ग्रगलायें खुली रहती थीं । इसका तात्पर्य यह है कि वे कभी भी ग्रपने मकान का दरवाजा बद नही करते थे । इसमे कई रहस्य भरे हुए हैं । परन्तु ग्राज वह वणन शास्त्रो मे ही रह गया है । ग्राज के श्रावको की क्या दशा है ? ग्राज के मनुष्यों की क्या ग्रवस्था है ? क्या इसका चितन ग्राज का मनुष्य कर पाएगा ?

मैं तो ग्राध्यात्मिक बात रख रहा हू, ग्रात्मा ग्रौर परमात्मा की बात कह रहा हू । ग्राप इस पर चितन करें और ग्रपने जीवन मे उतारें । तभी ग्राप सत्-चित् ग्रानदघन रूप ग्रात्मा को समझ सकेंगे, उसे पा सकेंगे ।

●

बीकानेर—

स० २०३०, श्रावण कृष्णा ३०

स्वतन्त्रता का मूलाधार

धार तलवारनी सोहली, दोहली चोदमा जिन तणी चरणसेवा।

अनन्तनाथ परमात्मा चरम वीतराग अवस्था को प्राप्त कर चुके हैं। उन्होने जिस मार्ग का निर्देश किया, वह मार्ग इस ससार में श्रेयस्कर है। उस मार्ग को अपनाये बिना भव्य प्राणियो का कल्याण होने वाला नही है।

वीतराग देव की स्तुति, परमात्मा की प्रार्थना कुछ मागने की दृष्टि से नही की जाती है। परन्तु प्रार्थना इस दृष्टि से उच्चारण की जाती है कि जीवन की परम पवित्र शुद्धि का प्रसग बने और आध्यात्मिक जीवन का चरम लक्ष्य सही तरीके से सध सके। यदि वे महापुरुष अपनी दिव्य साधना का फल जन-कल्याणार्थ वितरित नही करते तो आज की विचित्र दशा मे मानव की कसी दुर्दशा होती, इसका वर्णन करना शक्य नही है। उन्होंने आत्म कल्याण तो प्राप्त किया ही परन्तु साथ ही भव्य जीवो के लिए भी जो पवित्र देशना प्रसारित की, उसका निष्कप आज तक चला आ रहा है। ऐसे पवित्र पुरुषों का स्मरण उनके सिद्धांत वाक्यो के कथन के पूर्व होना नितान्त आवश्यक है। इस दृष्टि से भी भव्यात्माओ को सबसे पहले परमात्मा की प्रार्थना मगलाचरण के रूप मे करनी ही चाहिये। परन्तु प्रार्थना के शब्दो तक ही हम सीमित नही रहें, उनके अन्दर रहने वाले मर्म का अनुसधान भी अवश्य करें। वह अनुसधान आत्म शक्ति के साथ सबद्ध हो। अनुसधान सिर्फ दिखाने लिए नही परन्तु जीवन की शोध के लिये हो। जीवन का परिमार्जन करने की भावना से जिनका अनुसधान

निरन्तर चलता रहता है, वे आत्मायें ही इस ससार मे अपने जीवन को सुव्यवस्थित रख सकती हैं।

वीतरागदेव ने जिस पवित्र आध्यात्मिक मार्ग का निर्देश किया, वह मार्ग आत्मा की परम सुख शाति के लिये ही है। यद्यपि मुख्य लक्ष्य सभी का एक है परन्तु उस लक्ष्य को ध्यान मे रख कर चलने वाले सब प्राणी एक ही धरातल पर नही चल सकते हैं। उनका माग शक्ति के अनुसार न्यूनाधिक रूप मे भिन्न हो सकता है। जहा साधु-साध्वियो के लिए निर्देश है कि वे अपने परिपूण महाव्रतो का पालन करें और उनकी सुरक्षा करना उनके लिये निता त आवश्यक है, वहा श्रावक और श्राविकाओ के लिए भी उनकी मर्यादा के साथ जिस माग का निर्देश है, उस माग पर वे चलें। दोनो की सीमा अपनी-अपनी है परन्तु आध्यात्मिक लक्ष्य समान है। दोनो का उद्देश्य एक है। साधना की श्रेणियो मे भिन्नता है। वे छोटी और बड़ी है। इसका तात्पय यह नही कि दोनों का लक्ष्य भिन्न हो गया। साधु और साध्वी शीघ्रगति से चलने वाले हैं, जबकि श्रावक और श्राविकाए कुछ मथर गति से उसी आध्यात्मिक माग पर अग्रसर होने वाले हैं। मुख्य लक्ष्य जब दोनों का एक बन जाता है तो वे जिस धरातल पर रहते हैं, उसका भी यथास्थान उनको ज्ञान होना चाहिए। जिस भू मण्डल पर सयमी जीवन की आराधना सभावित है, उस भू मण्डल सब धी वातावरण भी उसके अनुरूप रहना निता त आवश्यक है। यही कारण है कि भगवान महावीर ने आध्यात्मिक जीवन का मुख्य रूप ने निर्देश करते हुए प्रसगोपात्त दस धर्मों का भी निर्देश किया है।

श्रीमद् ठाणाग-सूत्र के दसवें ठाणे मे दस प्रकार के धर्मों का सकेत है। उसमे ग्राम-धम,-नगर-धम, राष्ट्र-धम आदि गिनाते

हुए श्रुत-धर्म और चारित्र-धर्म को अंत मे रखा है। इसका तात्पर्य यह है कि श्रुत और चारित्र धर्म जिसका मुख्य लक्ष्य है, ऐसा आध्यात्मिक साधक सयम की आराधना की दृष्टि से जिस ग्राम मे विचरण कर रहा है, उसमे यदि ग्राम-धर्म की सुव्यवस्था नही है अर्थात् वहा अराजकता का प्रसग है, वायुमडल दूषित है तो उस गांव के अन्दर मुनि अपने श्रुत और चारित्र धर्म की आराधना कैसे कर सकता है ? वैसे ही नगर-धर्म के लिए सकेत है। जिस नगर मे नैतिकता की दृष्टि से सुव्यवस्था नहीं है, जहा सब लोग स्वच्छंद और उद्दण्ड हैं, एक दूसरे को सताने वाले हैं ता ऐसे नगर के बीच वह साधक श्रुत और चारित्र धर्म की आराधना नही कर सकता है। चाहे साधक कैसा भी क्यो न हो, पर तु अभी आध्यात्मिक शक्ति का माध्यम शरीर है। अत शरीर का जहां निर्वाह करना है, उस स्थान का वायुमडल भी तो शुद्ध होना चाहिये। यदि नगर सुव्यवस्थित है अर्थात् नैतिक धरातल के साथ है, नगर के रहने वालो मे एक दूसरे का सहयोग है, सहानुभूति है, मानवीय धरातल पर शांति है तो उस नगर में आध्यात्मिक जीवन का साधक अपनी पवित्र साधना करते हुए अपने चरम लक्ष्य को भलीभाति प्राप्त कर सकता है। साधक वहां जो लक्ष्य साधता है, वह सिर्फ उसके लिए ही नही होता परन्तु जन-समुदाय के लिये भी वह शुद्ध और आदर्श वायुमण्डल तैयार करने वाला बनता है।

ग्राम-धर्म और नगर-धर्म की सुव्यवस्था के वर्णन की तरह ही राष्ट्र धर्म के विषय मे भी समझना चाहिये। जिस राष्ट्र मे व्यवस्थित मानवीय धरातल है, आत्मीय शक्तियो के विकास का सुन्दर अवसर है, जिसमे हरएक साधक अपनी साधना को साधने मे तत्पर रह सकता है, वही श्रुत धर्म और चारित्र धर्म की आरा-

धना हो सकती है। यदि राष्ट्र मे अराजकता है, विप्लव की स्थिति है, राक्षसी-वृत्तियो का दौर दौरा है तो वहा आध्यात्मिक साधक का भी टिकाव नहीं हो सकता है।

इस प्रकार दस धर्मों के वणन से वीतराग देव ने मुख्य तौर पर आध्यात्मिक जीवन का सकेत देते हुए नैतिक जीवन का परिमाजन करने के लिए ग्राम धम, नगर-धर्म, राष्ट्र-धम आदि का सकेत किया है। यह सकेत एक वैज्ञानिक तथ्य को लिए हुए है।

मानव सिफ विचारो की ऊची-ऊची उडाने भरें, अध्यात्म की सिफ बातें करें तो व्यावहारिक धरातल पर सामाजिक जीवन के साथ आध्यात्मिक रस कैसे आ सकता है? इस विषय का सकेत यदि नही दिया जाता है तो वह अपने जीवन की पूण साधना मे तन्मय नही हो सकता। साधु सकेत अवश्य दे सकता है, परन्तु अपनी सीमा मे आबद्ध होकर, अपने गृहीत महाव्रतो को सुरक्षित रखता हुआ, साधुमर्यादा के अनुरूप ही वह इस राष्ट्रीय-धम का सकेत कर सकता है। इस प्रकार वह राष्ट्र मे रहने वाले जन समुदाय का भव्य कल्याण अपनी वाणी के माध्यम से साध सकता है।

वीतराग वाणी के इस विषय के अतर्भूत ही राष्ट्र धम का प्रसग आ जाता है। इस दृष्टिकोण से आध्यात्मिक साधक जिस स्थान पर रहता है जिस देश में रहता है, उस देश के वायुमण्डल मे यदि दूषण है तो उसका प्रभाव आध्यात्मिक जीवन पर भी आ सकता है और आध्यात्मिक जीवन का साधक यदि वायुमण्डल को शुद्ध करने मे तत्पर है तो उसके आध्यात्मिक जीवन का प्रभाव व्यक्ति के साथ ही परिवार, समाज और राष्ट्र के वायुमण्डल को भी शुद्ध करने वाला बनता है।

आज १५ अगस्त है। भारत का स्वतन्त्रता दिवस है। इसका प्रसग भारतवासियो के लिए उल्लास का विषय है। परन्तु जिस वक्त भारतीयो को स्वतन्त्रता मिली, उस समय मे और आज के समय मे अतर आ चुका है। उस समय के उल्लास तथा उस समय की भावनाओ मे और आज के उल्लास तथा आज की भावनाओ मे बडा भारी अतर दृष्टिगत हो रहा है। यह स्वाभाविक भी है। इन्सान जिस वस्तु को ले करके चलता है, उसका यदि उसे आद्योपात ज्ञान नही है, पूर्वापर विज्ञान नहीं है कि उस वस्तु का मूल स्वरूप कहा है, जिसका सरक्षण करने पर ही शाखा प्रशाखायें बनती हैं और बिना विज्ञान ही यदि वह सहसा उसके उल्लास मे प्रफुल्लित होता है तो उल्लास स्थायी नहीं रह सकता है। आगे चल कर यह उल्लास ठडा पड जाता है, परिवर्तित हो जाता है।

एक दृष्टि से चिंतन किया जाए तो भारतीयो की लगभग यही स्थिति है। उन्होने यत्किचित् उपलब्धि १५ अगस्त १९४७ को की थी। उस प्रसग पर वे फूले नही समाये थे। परन्तु स्वतन्त्रता का स्वरूप क्या है, स्वतन्त्रता दिवस किस तरह से मनाया जाता है, इसका पूर्वापर सम्बन्ध क्या है और स्वतन्त्रता की जडें किस स्थान पर जमी हुई हैं, इन जडो को सभाला या नहीं, अथवा सिर्फ परिपक्व फल को देख कर ही उल्लसित हो गये आदि आदि विषयो का यदि दीर्घदृष्टि सहित ज्ञान होता तो भावना मे जो कुछ परिवर्तन दृष्टिगत हो रहा है, वह नही होता।

बधुओ! उन्होंने अपनी दृष्टि से जो कुछ भी सोचा हो, परन्तु वस्तुस्वरूप की दृष्टि से स्वतन्त्रता क्या है—इस विषय को पहिले तात्त्विक दृष्टि से समझ लेना चाहिये। जहा राष्ट्रीय स्वतन्त्रता का राष्ट्र-धर्म की दृष्टि चिंतन होता है तो वहीं पर वस्तुत

राष्ट्रीय स्वतन्त्रता है। स्व का अर्थ है—आप (स्वय)। तन्त्र का अर्थ नियन्त्रण और सिद्धात भी लिया जाता है। अत जिसमे अपने आप पर नियन्त्रण हो, वह स्वतन्त्रता है। जहा राष्ट्र-धर्म का प्रसग है, उस राष्ट्र-धर्म मे राष्ट्र की स्वतन्त्रता आती है। उसका अर्थ यह होता है कि राष्ट्र के अन्दर रहने वाले प्रबुद्ध व्यक्तियो के हाथ में राष्ट्र का नियन्त्रण हो, तभी वहाँ राष्ट्र-धर्म रहता है और सुव्यवस्था का रूप बन सकता है।

प्रबुद्ध व्यक्ति का मतलब है वह व्यक्ति, जिसने राष्ट्र-धर्म से युक्त राष्ट्रीय सस्कृति पाई हो। कौन से राष्ट्र की कौन सी सस्कृति उसके गौरव को बढाने वाली है, किस राष्ट्र मे कौन सी सस्कृति काम करती है, पडौसी राष्ट्र कौन सी सस्कृति के हैं, उनके जीवन का धरातल क्या है, राष्ट्र का धरातल क्या है, इस प्रकार का तुलनात्मक विज्ञान प्रबुद्ध व्यक्ति को होना जरूरी है। उस राष्ट्रीय धरातल पर जिन मानवो का निवास है, उन मानवो के अन्दर जो चेतना है उस अतश्चेतना के स्वरूप, आध्यात्मिक जीवन के स्वरूप को जान कर व्यक्ति प्रबुद्ध हो सकता है।

तात्पय यह है कि जिस शरीर-पिण्ड को लेकर हम चल रहे हैं, उसके दो भाग हैं—एक भौतिकता-प्रधान और दूसरा आध्यात्मिकता प्रधान। भौतिकता प्रधान और आध्यात्मिकता प्रधान जीवन का ज्ञान भी उस प्रबुद्ध मानव को रहना चाहिये। वैसे ही राष्ट्रीय सस्कृति के दोनो अग एक आतरिक सस्कृति और एक बाह्य सस्कृति का विज्ञान भी इन प्रबुद्धो को होना चाहिये। नैतिकता और अनैतिकता तथा मानवीय बुद्धि और दानवी अवस्था किन किन लक्षणो से पल्लवित होती है, इस विषय का ज्ञान भी आवश्यक है। इसी तरह पडौसी देशो मे यह विज्ञान है या नही, इस प्रकार की विज्ञान अवस्थाओ का तुलनात्मक ज्ञान भी इन

प्रबुद्धों को होना चाहिए। जो व्यक्ति इन सब विज्ञानो के साथ हो, वही प्रबुद्ध की सज्ञा पा सकता है। जो इन सब विज्ञानो के साथ अपने जीवन के धरातल को माज सके और जैसे विचार उसके मस्तिष्क मे हैं, उनका यथासाध्य प्रतिपादन करता हुआ उनको यथाशक्ति अपने जीवन में, आचरण मे लाते हुए चले, उसका ही प्रबुद्ध की सज्ञा दी जा सकती है। जो राष्ट्रीय धरातल पर रहने वाले प्रबुद्ध हैं, उनको अपने राष्ट्र की नियन्त्रण-शक्ति प्राप्त हो और उस नियन्त्रण के साथ यदि राष्ट्र है तो वह राष्ट्र स्वतन्त्रता की स्थिति मे कहला सकता है। इसी को राष्ट्रीय स्तर पर स्वतन्त्रता की सज्ञा दी जा सकती है।

इस प्रकार के विज्ञान वाले प्रबुद्ध यदि अपने हाथ मे राष्ट्रीय स्थिति को लेकर चलते हैं तो वे राष्ट्रीय स्तर पर जो कुछ भी व्यवस्था करनी है, उस व्यवस्था में जागरूक रहते हुए स्वतन्त्रता का लाभ प्राप्त करने मे समर्थ हाते हैं।

ध्यान रखना चाहिये कि इस प्रकार का प्रबुद्ध वग समाज के बीच में से ही आता है। समाजो का समूह ही राष्ट्र है। इसलिये सामाजिक स्वतन्त्रता का होना भी आवश्यक है। सामाजिक स्वत न्त्रता की दृष्टि से समाज के प्रबुद्ध व्यक्तियो के हाथ मे समाज का तत्र हो। सामाजिक स्वतन्त्रता जिनके हाथ मे है, ऐसे व्यक्ति ही आगे स्वतन्त्रता को साध सकते है। परन्तु समाज का रूप परिवार मे रहा हुआ है। इसलिये पारिवारिक स्वतन्त्रता भी अपेक्षित है। जिस प्रबुद्ध का जीवन जिस परिवार मे हो वह उस परिवार को भव्य स्वतन्त्रता को रख सके, परिवार का नियत्रण आत्मीय भावना से कर सके, वही परिवार समाज को सामाजिक शक्ति से पुष्ट बना सकता है।

परन्तु परिवार की जडें भी तो व्यक्ति में रही हुई हैं। परि

वार मे व्यक्ति का अपना स्वतन्त्र अस्तित्व है। व्यक्ति स्वतन्त्रता का मतलब 'स्व' का नियन्त्रण है। जो व्यक्ति अपने ऊपर नियन्त्रण रख कर चलता है, अपना जीवन अपने नियन्त्रण मे रखता है, अपनी तमाम प्रक्रियाओ को व्यवस्थित रखता है, वही व्यक्ति अपनी व्यक्ति-स्वतन्त्रता की स्थिति को लेकर चलता है। व्यक्ति मे यह स्थिति तभी पनप सकती है, जबकि वह आध्यात्मिक लक्ष्य से परिपूण हो और उसका जीवन आध्यात्मिक सिद्धात के अनुरूप हो।

आध्यात्मिक माग तलवार की धार से भी तीक्ष्ण है। मानसिक वत्तियो में जो विकारो का प्रवेश है, जिनके कारण व्यक्ति विषमता और विकारो का शिकार बनता है, उन वृत्तियो के ऊपर जिस व्यक्ति का नियन्त्रण है, वही व्यक्ति अपना स्वतन्त्र नियन्त्रण लेकर चलता है। ऐसे व्यक्ति की आध्यात्मिकता से परिवार मे नियन्त्रण आता है और पारिवारिक स्वतन्त्रता आती है। परिवार मे स्वतन्त्रता को पोसने वाला व्यक्ति सामाजिक स्वतन्त्रता को पनपा सकता है और वही राष्ट्रीय स्वतन्त्रता का सिरमौर बन सकता है।

स्व (अपना) तन्त्र (शासन) यह स्वतन्त्रता शब्द की व्याख्या हुई। स्वतन्त्रता के अतरपेटे मे (अन्तर्भूत) आर्थिक स्वतन्त्रता समाई हुई है और जीवन की स्वतन्त्रता भी रही हुई है। परन्तु मुख्य तौर पर यदि तन्त्र की व्यवस्था ठीक है, नियन्त्रण व्यवस्था भलीभांति है तो वहा स्वतन्त्रता का उपयोग सही तरीके से हो सकता है।

आज जिस स्वतन्त्रता की व्याख्या अपने चिंतन का विषय बन रही है, उसको आप अपने बौद्धिक धरातल पर ठीक तरह से व्यवस्थित करें। सभव है कि आप स्वतन्त्रता की लबी व्याख्या में नही गए हो। आप स्वतन्त्रता का सिर्फ इतना ही अथ समझते हो

कि अग्रेजो के हाथ में भारत का नियत्रण था ग्रौर अंग्रेज 'पर' थे इसलिए भारत परतत्र था ग्रौर अब भारतीयो के हाथ में भारत का नियत्रण ग्रा गया है, इसलिये भारत स्वतत्र हो गया है। इस ग्रर्थ तक यदि भारतीय सीमित हैं ग्रौर इसी को महत्त्व देकर के ग्राज की दशा को देखना चाहते हैं तो यह बहुत ही चितनीय स्थिति है। स्वतत्रता का ग्रथ इतना ही नही है। यह ग्रथ तो बिल्कुल ही सीमित है ग्रौर ऐसा कहा जा सकता है कि केवल एक पत्ता ले लिया है ग्रौर सारा का सारा वृक्ष तो छिपा हुग्रा ही है। जब तक जड-मूल सहित इस वृक्ष का ज्ञान नही होगा तब तब पत्त की स्वतत्रता के ज्ञान को ही स्वतत्रता समझ कर चलते रहेंगे। न तो यह मानव के साथ इसाफ है ग्रौर न ही राष्ट्र के साथ न्याय है।

इस स्वतत्रता दिवस के प्रसग को लेकर कई व्यक्ति भारतीयों की उपलब्धि पर ग्रालोचना ग्रौर प्रत्यालोचना मे उतरते हैं। जिन व्यक्तियो के हाथ मे तत्र है, वे उनकी सिफ बुराइया को ही प्रकट करते हैं। वे उनकी ग्रच्छाइया का छिपाने की कोशिश करते हैं। साथ ही उसका प्रतिपादन इस ढग स करते हैं कि हम राष्ट्र की वास्तविक स्वतत्रता को बतलाना चाह रहे हैं। परन्तु जिसके मन मे राष्ट्र की स्वतन्त्रता का सच्चा प्रेम है, वह तो तटस्थ दृष्टि से ही ग्रालोचक बनेगा। ग्रालोचना काई बुराई नही है, परन्तु वह स्वस्थ होनी चाहिये। जहा स्वस्थ ग्रालोचना होती है, वहां गुण ग्रौर ग्रवगुण दोनो का तुलनात्मक दृष्टि से विश्लेषण होता है। राष्ट्र के व्यक्तियो ने राष्ट्रीय धरातल पर यत्किंचित् दृष्टिकोण ग्रौर जो बातें रखीं, उनमें जा कमी रह गई है, उसका निर्देश किया जाए, परन्तु यह सब तटस्थ भावना से किया जाय ताकि वह हर व्यक्ति क ऊपर ग्रसर करने वाला हो। एकांगी ग्रालोचना

अथवा एकात वस्तु को लेकर चलने वाला इन्सान न तो अपने तन्त्र को और न अपने राष्ट्रीय तन्त्र को ही सुरक्षित रख पाता है। उसमे राष्ट्रीय तन्त्र के विपरीत तत्त्व आ सकते हैं।

जो कुछ भी उपलब्धिया भारत को हुई हैं, वे सब आप लोगो से सबधित हैं और आप ही अपनी सीमा मे उनका चिंतन करें। मैं तो सिफ वस्तु स्वरूप का निर्देश कर रहा हू। इन उपलब्धियो के साथ यदि तटस्थ दृष्टि से चिंतन चलता है तो यह वस्तुस्थिति अवश्य सामने आती है कि स्वतन्त्रता का जो मधुर फल जनता को मिलना चाहिये, वह अभी तक उपलब्ध नही हो पाया है। दूसरे शब्दो में कहा जा सकता है कि वह परिपक्व रूप मे भी प्राप्त नही हुआ है। यदि वह परिपक्व रूप मे प्राप्त होता तो भारतीय जीवन की वतमान दशा ऐसी नही रहती। आज जो कुछ खीचातानी चल रही है, गुटबदी चल रही है, स्वाथ का अखड चल रहा है ये सब स्वतन्त्रता के अनुरूप नही हैं परन्तु परतन्त्रता की जजीरें हैं। यह स्थिति चाहे व्यक्ति मे हो, चाहे परिवार मे हो, समाज मे हो अथवा राष्ट्र मे हो, उज्ज्वल भविष्य की द्योतक नही है। यह तो अधकार की सूचना दे रही है। भारतीयो को इस अधकार से सावधान रहना है और स्वतन्त्रता के वास्तविक तथ्य को समझना है। जिस दिन भारतीय इस वास्तविक तथ्य का समझेंगे, उसी दिन उनके साथ शुभ स्वतन्त्रता का सबध जुडेगा।

बधुओ! मैं कभी कभी चिंतन की दृष्टि से एक आम्र वृक्ष की उपमा दे दिया करता हू। आम्र-वृक्ष का बीज जमीन मे बोया जाता है। जब वह अकुरित होता है तो उस समय उसकी सुरक्षा की आवश्यकता रहती है। परन्तु वही अकुर जब पेड का रूप धारण कर बडी शाखा प्रशाखाओ से सम्पन्न हो जाता है तो उस

कि अंग्रेजो के हाथ में भारत का नियन्त्रण था और अंग्रेज 'पर' थे इसलिए भारत परतन्त्र था और अब भारतीयो के हाथ में भारत का नियन्त्रण आ गया है, इसलिये भारत स्वतन्त्र हो गया है। इस अर्थ तक यदि भारतीय सीमित हैं और इसी का महत्त्व देकर के आज की दशा को देखना चाहते हैं तो यह बहुत ही चिन्तनीय स्थिति है। स्वतन्त्रता का अर्थ इतना ही नही है। यह अर्थ तो बिल्कुल ही सीमित है और ऐसा कहा जा सकता है कि केवल एक पत्ता ले लिया है और सारा का सारा वृक्ष तो छिपा हुआ हो है। जब तक जड-मूल सहित इस वृक्ष का ज्ञान नही होगा तब तक पत्ते की स्वतन्त्रता के ज्ञान को ही स्वतन्त्रता समझ कर चलते रहेंगे। न तो यह मानव के साथ इन्साफ है और न ही राष्ट्र के साथ न्याय है।

इस स्वतन्त्रता दिवस के प्रसग को लेकर कई व्यक्ति भारतीयो की उपलब्धि पर आलोचना और प्रत्यालोचना में उतरते हैं। जिन व्यक्तियो के हाथ मे तन्त्र है, वे उनकी सिर्फ बुराइयो को ही प्रकट करते हैं। वे उनकी अच्छाइयो का छिपाने की कोशिश करते हैं। साथ ही उसका प्रतिपादन इस ढग स करते हैं कि हम राष्ट्र की वास्तविक स्वतन्त्रता को बतलाना चाह रहे हैं। परन्तु जिसके मन में राष्ट्र की स्वतन्त्रता का सच्चा प्रेम है, वह तो तटस्थ दृष्टि से ही आलोचक बनेगा। आलोचना कोई बुराई नही है, परन्तु वह स्वस्थ होनी चाहिये। जहा स्वस्थ आलोचना होती है, वहाँ गुण और अवगुण दोनो का तुलनात्मक दृष्टि से विश्लेषण होता है। राष्ट्र के व्यक्तियो ने राष्ट्रीय धरातल पर यत्किचित् दृष्टिकोण और जो बातें रखी, उनमें जो कमी रह गई है, उसका निर्देश किया जाए, परन्तु यह सब तटस्थ भावना से किया जाय ताकि वह हर व्यक्ति के ऊपर असर करने वाला हो। एकांगी आलोचना

अथवा एकात वस्तु को लेकर चलने वाला इन्सान न तो अपने तन्त्र को और न अपने राष्ट्रीय तन्त्र को ही सुरक्षित रख पाता है। उसमे राष्ट्रीय तन्त्र के विपरीत तत्त्व आ सकते हैं।

जो कुछ भी उपलब्धिया भारत को हुई हैं, वे सब आप लोगो से सबधित हैं और आप ही अपनी सीमा मे उनका चिंतन करें। मैं तो सिर्फ वस्तु स्वरूप का निर्देश कर रहा हू। इन उपलब्धियो के साथ यदि तटस्थ दृष्टि से चिंतन चलता है तो यह वस्तुस्थिति अवश्य सामने आती है कि स्वतन्त्रता का जो मधुर फल जनता को मिलना चाहिये, वह अभी तक उपलब्ध नही हो पाया है। दूसरे शब्दो मे कहा जा सकता है कि वह परिपक्व रूप मे भी प्राप्त नही हुआ है। यदि वह परिपक्व रूप मे प्राप्त होता तो भारतीय जीवन की वतमान दशा ऐसी नही रहती। आज जो कुछ खीचातानी चल रही है, गुटबदी चल रही है, स्वार्थ का प्रचड चल रहा है ये सब स्वतन्त्रता के अनुरूप नही हैं परन्तु परतन्त्रता की जजीरें हैं। यह स्थिति चाहे व्यक्ति मे हो, चाहे परिवार मे हो, समाज मे हो अथवा राष्ट्र मे हो, उज्ज्वल भविष्य की द्योतक नही है। यह तो अधकार की सूचना दे रही है। भारतीयो को इस अधकार से सावधान रहना है और स्वतन्त्रता के वास्तविक तथ्य को समझना है। जिस दिन भारतीय इस वास्तविक तथ्य को समझेंगे, उसी दिन उनके साथ शुभ स्वतन्त्रता का सबध जुडेगा।

बधुओ! मैं कभी-कभी चिंतन की दृष्टि से एक आम्र वृक्ष की उपमा दे दिया करता हू। आम्र-वृक्ष का बीज जमीन मे बोया जाता है। जब वह अकुरित होता है तो उस समय उसकी सुरक्षा की आवश्यकता रहती है। परन्तु वही अकुर जब पेड का रूप धारण कर बडी शाखा प्रशाखाओ से सम्पन्न हो जाता है तो उस

बक्त उसकी सुरक्षा को उतनी आवश्यकता नही रहती। ऐसी लोकोक्ति प्रचलित है कि बारह वर्षों मे तो आम्र वृक्ष के मधुर फल आ जाते हैं। परन्तु तभी आते हैं, जबकि उस आम के वृक्ष की जडो कि सिंचाई होती है, उनकी सुरक्षा होती है, उनम खाद दी जाती है। जडें यद्यपि छिपी रहती हैं, परन्तु वस्तुत आम्र वृक्ष के मधुर फल उन जडो मे से ही निकलते हैं। जिस प्रकार मधुर आम्र-फल के लिए आम्र वृक्ष की जडें सहायक हैं, वैसे ही राष्ट्रीय सुफल के लिए, राष्ट्रीय मानवो को स्वतत्रता का मधुर फल चखाने के लिए छिपी रहने वाली आध्यात्मिक जडें आवश्यक हैं।

राष्ट्र के सुफल की जड़ें व्यक्ति मे रही हुई हैं और व्यक्ति के भौतिक पिण्ड में नही परतु इसकी सद्वृत्तियो मे रही हुई हैं। इनसे ही स्वतत्रता के सच्चे स्वरूप को प्राप्त किया जा सकता है।

यदि आपको राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के वास्तविक सुमधुर फल चाहिए तो विदेशियो से यत्किंचित् छूट कर और नियन्त्रण शक्ति को पाकर आप फूलें नहीं। आप यह सोचें कि हमको जो चीज प्राप्त हुई है, इसको हम आगे से आगे बढ़ाते हुए व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र एव विश्व इन पाचो अगो को पुष्ट करते हुए चलेंगे, तब तो हम उसके मधुर फल चखेंगे और यदि इस प्रकार नही चले तो हमारे हाथ में कच्चे फल भी आ सकते हैं और आज वही देख रहे हैं।

एक दृष्टि से देखा जाए और तटस्थ दृष्टि से चिंतन किया जाए तो आज राष्ट्र की विचित्र दशा देखने को मिलती है। इसके पीछे अनुसधान की कमी है। राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के पीछे प्रबुद्ध व्यक्तियो की कमी है। प्रबुद्ध व्यक्तियों का जब तक निर्माण नहीं होता, तब तक सर्वांगीण दृष्टि से सोच नहीं पाते और इस प्रकार

सोचने के अभाव मे वास्तविक जीवन के अभाव की स्थिति बनी रहती है। उसके अभाव मे सब प्रकार से अभाव का प्रदशन होता है।

आज राष्ट्रीय धरातल पर विषमता का जो नग्न नृत्य हो रहा है, सामाजिक व्यवहार की जो दुदशा हो रही है, परिवार के लोगो मे जो विडम्बना की स्थिति बन रही है, इन सब कारणो से इस निष्कष पर पहुचा जा सकता है कि जिस १५ अगस्त को स्वतन्त्रता मिली, उसे बीते हुए आज छब्बीसवा वर्ष चल रहा है, तो क्या छब्बीस वर्षो मे भी आम्र वृक्ष फल न दे, मधुर फल न दे ? प्राचीन तथाकथित सकेत में तो बारह वष ही चाहिए। बारह वर्षो मे फल देने वाले आम्र वृक्ष को यदि कलम किया जाय तो वह और भी कम वर्षो मे मधुर फल दे सकता है। भारतीयो को विदेशियो के हाथ से इस वैज्ञानिक युग मे स्वतन्त्रता मिली है। यदि वे सही दृष्टिकोण से, वज्ञानिक दृष्टि से चलते तो छब्वीस वष जिस स्वतन्त्रता को हो जाय, फिर भी राष्ट्र की दशा लगभग वही देखने को मिले, जो पूर्व मे थी तो क्या यह चिंतनीय स्थिति नही है ?

१५ अगस्त का दिन आया और कुछ झण्डे फहरा दिए गए। राष्ट्रीय ध्वज के साथ अपने कुछ रीति रिवाज अदा कर दिए गए। दो चार नारे लगा दिए और भाषण हो गए। इससे ही सन्तुष्टि कर ली जाती है कि हमने स्वतन्त्रता दिवस मना लिया। परन्तु इस तरीके से स्वतन्त्रता दिवस नहीं बनता है और न ही मनाया जा सकता है। इसमे तो आत्मावलोकन करना आवश्यक है। आज हर व्यक्ति को अपने मानस मे भारतीय जीवन की जज रित दशा का चिंतन करना चाहिये। आजकल नारे खूब लगाये जाते हैं। जितने दल हैं, उन सबके बडे लुभावने नारे हैं। वे सब

अपनी अपनी दृष्टि से अपना चिंतन करते हैं। परन्तु वे अंदर का अवलोकन नहीं करते कि वस्तुत हम राष्ट्रीय चरित्र के साथ चल रहे हैं या राष्ट्रीय चरित्र का हनन करते हुए चल रहे हैं। हम जसे नारे लगा रहे हैं, उनके अनुरूप ही हमारा जीवन है भी या नहीं ? यदि उनके मन मे वस्तुत भारत के कल्याण की भावना है, वास्त विक राष्ट्रीय स्वतन्त्रता की भावना है तो वे भारत के साथ खिल वाड कभी नही करेंगे।

आज अनैतिकता का जो ताडव नृत्य दृष्टिगत हो रहा है, वह किसी वग विशेष मे ही नहीं है। कहा जाता है कि अमुक वग मे अनैतिकता व्याप्त हो गई है, परन्तु आप तटस्थ दृष्टि से चिंतन करेंगे तो किसी एक वग मे ही नहीं, दूसरे दूसरे वर्गों मे भी यह होड चल रही है। चाहे किसी नाम स कोई सस्था हो या पार्टी हो, कही कम और कही ज्यादा, परन्तु प्राय कोई वर्ग इस तत्त्व (अनतिकता) से अछूता नहीं है। अत आज किसको राष्ट्रीय चरित्र से हीन कहा जाए और किसको राष्ट्रीय चरित्र सपन्न कहा जाए, समाज के सामने यह एक टढा प्रश्न है। समाज उसका चिंतन भलीभाति नहीं कर पा रहा है।

आज इस प्रकार की धाधलेबाजी चल रही है कि जिसकी लाठी उसकी भैंस। बडा मच्छ गलागल न्याय चल रहा है। एक मछली ने किसी छोटी मछली को पकडा तो दूसरी बडी मछली उसे खाने को तैयार है। जिधर जो मिले उसे लूटते जाए। किसी को राष्ट्र की परवाह नहीं। नैतिक अनैतिक कुछ नहीं, स्वार्थपूर्ति होनी चाहिये। चरित्र क्या है ? यह भी कुछ नहीं। ऊपर से तो नैतिकता की बातें की जायें, राष्ट्रीय चरित्र की बातें की जायें, परन्तु जीवन में शून्यता है। चाहे कोई व्यक्ति हो या वग हो, अधिकाशत यही स्थिति है।

छात्र वर्ग, जो कि शिक्षा लेने वाला है—जिसमें राष्ट्रीय चरित्र का जीवन आना चाहिये, उसको भी देखा जावे तो वहां भी राष्ट्रीय चरित्र के शायद ही कुछ नमूनें मिलें। छात्रों को भी अनुचित तरीके से भड़काया जा रहा है। वे अपनी ही वस्तु की तोड़ फोड़ करने में तत्पर होते हैं। जो ऐसा कर रहे हैं, क्या वे राष्ट्रीय चरित्र में निष्ठा रखते हैं? छात्रों को सोचना चाहिये कि यह सम्पूर्ण सम्पत्ति राष्ट्र की है—हमारी है और हम राष्ट्र के हैं। यदि इस प्रकार की निष्ठा छात्र-वर्ग में आ जाए तो फिर उसको कितना भी प्रलोभन देकर भड़काया जाए, परन्तु वह ऐसा नहीं करेगा। जिस बच्चे को अपने परिवार का ज्ञान है और जिसे अपनी चीजों पर ममत्व है, उसको यदि कहा जाए कि तुम अपने माता पिता से अमुक चीज की मांग करो और व न दें तो उन्हें तोड़ फोड़ कर फेंक दो। क्या वह ऐसा काम करेगा? परिवार का वास्तविक सदस्य तो किसी के बहकावे में आकर ऐसा कार्य नहीं करेगा। इसी प्रकार से छात्र-वर्ग, जो कोमल पौधे के तुल्य है, उसको यदि राष्ट्रीय जीवन का महत्त्व समझाया जाए, व्यक्ति के चरित्र के साथ साथ समाज और राष्ट्र के चरित्र का शिक्षण दिया जाए तो वह अपनी मांग के लिए इस प्रकार की तोड़ फोड़ और हिंसक नीति में कभी नहीं जायेगा। जो हिंसा की नीति को अपनाते हैं, तोड़-फोड़ करते हैं, क्या वे राष्ट्रीय-चरित्र के प्रति वफादार हैं? क्या वे राष्ट्र को अपना समझते हैं? मैं समझता हूं कि उनमें राष्ट्रीय चरित्र की बहुत बड़ी कमी है। क्या वे वास्तविक स्वतन्त्रता दिवस मना सकेंगे? आज जो कुछ भी सुनने को मिल रहा है—वह चाहे किसी वर्ग विशेष में मिलता हो परन्तु सुन-सुन कर विचार अवश्य होता है कि यह कैसी राष्ट्रीय स्वतन्त्रता आ गई?

अपनी अपनी दृष्टि से अपना चिंतन करते हैं। परन्तु वे अंदर का अवलोकन नहीं करते कि वस्तुत हम राष्ट्रीय चरित्र के साथ चल रहे हैं या राष्ट्रीय चरित्र का हनन करते हुए चल रहे हैं। हम जसे नारे लगा रहे हैं, उनके अनुरूप ही हमारा जीवन है भी या नहीं? यदि उनके मन मे वस्तुत भारत के कल्याण की भावना है, वास्त विक राष्ट्रीय स्वतन्त्रता की भावना है तो वे भारत के साथ खिल वाड कभी नही करेंगे।

आज अनैतिकता का जो ताडव नृत्य दृष्टिगत हो रहा है, वह किसी वग विशेष में ही नही है। कहा जाता है कि अमुक वग मे अनैतिकता व्याप्त हो गई है, परन्तु आप तटस्थ दृष्टि से चिंतन करेंगे तो किसी एक वग मे ही नही, दूसरे दूसरे वर्गों मे भी यह होड चल रही है। चाहे किसी नाम से कोई सस्था हो या पार्टी हो, कही कम और कही ज्यादा, परन्तु प्राय कोई वग इस तत्त्व (अनतिकता) से अछूता नही है। अत आज किसको राष्ट्रीय चरित्र से हीन कहा जाए और किसको राष्ट्रीय चरित्र सपन्न कहा जाए, समाज के सामने यह एक टेढा प्रश्न है। समाज उसका चिंतन भलीभाति नहीं कर पा रहा है।

आज इस प्रकार की धाधलेबाजी चल रही है कि जिसकी लाठी उसकी भैंस। बडा मच्छ गलागल न्याय चल रहा है। एक मछली ने किसी छोटी मछली को पकडा तो दूसरी बडी मछली उसे खाने को तैयार है। जिधर जो मिले उसे लूटते जाए। किसी को राष्ट्र की परवाह नहीं। नैतिक अनतिक कुछ नहीं, स्वार्थपूर्ति होनी चाहिये। चरित्र क्या है? यह भी कुछ नही। ऊपर से तो नैतिकता की बातें की जायें, राष्ट्रीय चरित्र की बातें की जायें, परन्तु जीवन मे शून्यता है। चाहे कोई व्यक्ति हो या वग हो, अधिकांशत यही स्थिति है।

छात्र वर्ग, जो कि शिक्षा लेने वाला है—जिसमे राष्ट्रीय-चरित्र का जीवन आना चाहिये, उसको भी देखा जाये तो वहा भी राष्ट्रीय-चरित्र के शायद ही कुछ नमूनें मिलें। छात्रो को भी अनुचित तरीके से भडकाया जा रहा है। वे अपनी ही वस्तु की तोड फोड करने मे तत्पर होते हैं। जो ऐसा कर रहे हैं, क्या वे राष्ट्रीय चरित्र में निष्ठा रखते हैं? छात्रो को सोचना चाहिये कि यह सम्पूण सम्पति राष्ट्र की है—हमारी है और हम राष्ट्र के हैं। यदि इस प्रकार की निष्ठा छात्र-वग में आ जाए तो फिर उसको कितना भी प्रलोभन देकर भडकाया जाए, परन्तु वह-ऐसा नही करेगा। जिस बच्चे को अपने परिवार का ज्ञान है और जिसे अपनी चीजो पर ममत्व है, उसको यदि कहा जाए कि तुम अपने माता पिता से अमुक चीज की माग करो और वे न दे पायें तो उन्हे तोड फोड कर फेंक दो। क्या वह ऐसा काम करेगा? परिवार का वास्तविक सदस्य तो किसी के बहकावे मे आकर ऐसा कार्य नही करेगा। इसी प्रकार से छात्र वर्ग, जो कोमल पौधे के तुल्य है, उसको यदि राष्ट्रीय जीवन का महत्त्व समझाया जाए, व्यक्ति के चरित्र के साथ साथ समाज और राष्ट्र के चरित्र का शिक्षण दिया जाए तो वह अपनी मांग के लिये इस प्रकार की तोड फोड और हिंसक नीति मे कभी नहीं जायेगा। जो हिंसा की नीति को अपनाते हैं, तोड-फोड करते हैं, क्या वे राष्ट्रीय-चरित्र के प्रति वफादार हैं? क्या वे राष्ट्र को अपना समझते हैं? मैं समझता हू कि उनमे राष्ट्रीय चरित्र की बहुत बडी कमी है। क्या वे वास्तविक स्वतन्त्रता दिवस मना सकेंगे? आज जो कुछ भी सुनने को मिल रहा है—वह चाहे किसी वर्ग विशेष मे मिलता हो परन्तु सुन सुन कर विचार अवश्य होता है कि यह कैसी राष्ट्रीय स्वतन्त्रता आ गई?

लोग अपनी इच्छा के अनुसार धांधलेबाजी चला रहे हैं। यह मानसिक परतन्त्रता है, असयमी जीवन की परतन्त्रता है। ऐसी स्थिति मे मानव अपने जीवन का विकास नही कर सकता। यद्यपि मैं, तो अपनी भाषा में ही कह सकता हू परन्तु आप अपनी स्थिति से चिंतन करें और इस दृष्टि से सोचें कि आपका जीवन क्या है ? भारतीयो का जीवन क्या है, उनका क्या उत्तरदायित्व है और किस उत्तरदायित्व को लेकर वे चल रहे हैं ? मेरे भद्रिक भाई यही सोचते होगे कि यह काम तो उनका है, जिनके हाथ में शासनतन्त्र है। परन्तु ऐसा सोचना ठीक नही है। यह कार्य तो प्रत्येक नागरिक का है। व्यक्ति मे यदि इस प्रकार की भावना आ जाए तो वह अपने स्वार्थ को, अपने जीवन को भी अपण कर सकता है, परन्तु राष्ट्रीय उन्नति पर धब्बा नही आने देता है।

मैंने किसी पुस्तक मे पढा है कि जापान का एक गरीब व्यक्ति जहाज मे नौकरी करता था। एक भारतीय उसी जहाज में सफर कर रहा था। भारतीय को फलो की आवश्यकता अनुभव हुई। उसने जहाज मे तलाश की, परन्तु उसको वहा फल उपलब्ध नहीं हुए तो वह जोर-जोर से चिल्ला कर कहने लगा कि यह कैसा निकम्मा देश है कि जिसके जहाज मे फल तक उपलब्ध नही हैं। इन कठोर वचनों को सुन कर वह मजदूर उन महाशयजी के पास पहुँचा और नम्रता से कहने लगा, आप क्या फरमा रहे हैं ? जरा ठहरिए।" और फिर वह अपने स्थान पर गया, जहां उसने अपने लिये कुछ फल रख छोडे थे। उनको लेकर वह आया और उन महाशयजी को भेंट कर दिया। वह भारतीय फल प्राप्त करके खुश हो गया और पैसे निकाल कर देने लगा तो उस भाई ने कहा, "मेहरबान, माफ कीजिए, मुझे पैसे नहीं चाहिये। परन्तु आपसे मेरा सानुरोध निवेदन है कि आप कृपया मेरे देश के लिये ऐसे शब्दों का प्रयोग कभी न करें।"

उस गरीब व्यक्ति के मन में अपने देश के प्रति जो राष्ट्रीय भावना थी, क्या वही भावना आज भारतीय जनता मे भी है ? आज भारत के व्यक्ति ही भारत के लिए क्या बोल जाते हैं सो आप जानते ही हैं। वे काय करना नही जानते, वे केवल बोलना जानते हैं और उनका बोलना भी स्वच्छद तरीके से होता है। वे कहते हैं कि हमे वाणी की स्वतन्त्रता है। इसलिये वे इच्छा के अनुसार बिना लगाम, बिना अकुश जो कुछ भी बोलना चाहें बोल जाते हैं। यह स्वतन्त्रता है या स्वच्छदता ?

एक दूसरा उदाहरण और लीजिये–जब रूस और जापान का युद्ध छिडा तो एक जगह केवल पचास जापानी अढाई सौ रूसियो के साथ भिड गए और जी-जान से सघप करते रहे। उस प्रसग पर अडतालीस जापानी मारे गए और दो शेष रहे। वे दोनों भी घेरे मे पड गए। उनमे से एक घायल हो गया। जब बचने का कोई अवसर नही रहा तो घायल जापानी ने ऐसी अवस्था में अपना झडा साथी को सौंपते हुए कहा, "इसे ले जाकर मेरी पत्नी को दे देना और कह देना कि तुमारा पति लौट कर नहीं आ सकता है। परन्तु तुम अपने जीवन को राष्ट्रीय-जीवन के साथ सम्बद्ध रखना।" उसने यह सदेश अपने साथी को दिया। रूसी सिपाही उसके साथी को पकड कर सेनापति के पास ले गए। अपने देश का झडा उसके हाथ मे था। सेनापति ने कहा कि यह झडा अब रूस को समपण कर दो। उसने कहा कि मैं ऐसा कभी नहीं कर सकता। सेनापति ने कहा, "तुम जान से चले जाओगे। यदि झडा अपण करोगे तो बच जाओगे।" उस जापानी ने उत्तर दिया, "मुझे मरना कबूल है परन्तु झडा देना कबूल नहीं है।" अंततोगत्वा उसको तोप के मुह पर खडा कर दिया गया। अन्तिम निर्देश भी कर दिया गया। इधर तोप चली और उसके

पुरुषार्थ

वासुपूज्य जिन त्रिभुवन स्वामी, घननामी परनामी रे।

आज प्रार्थना की पंक्तियो के स्वर और नाम में परिवर्तन आया है। सिद्ध अवस्था मे रहने वाले परमात्मा को किस नाम से पुकारा जाए, किस नाम से उनकी स्तुति की जाए, यह एक प्रश्न है। ज्ञानी-जनो का कथन है कि नाम के पीछे मत उलझो परन्तु नाम के साथ कौन-सा अर्थ समझ आ रहा, यह समझो। 'घट' (घडा) शब्द का उच्चारण होते ही मनुष्य 'घट' शब्द को नही पकड़ता है परन्तु उससे निकलने वाले अर्थ को वह समझ जाता है कि पानी भरा जाने वाला ऐसे आकार का जो बर्तन है, उसे घट कहते हैं। घडा कहो या कलश कहो, दोनो शब्दों से जैसे वह उस पानी भरने के साधन को समझ लेता है, वैसे ही परमात्मा के स्वरूप को अपनी बुद्धि मे ग्रहण कर लेना चाहिये। वे सिद्ध अवस्था मे रहने वाली आत्माए अनन्त गुणो से सम्पन्न बन चुकी हैं। जिनकी समग्र शक्तिया चरम सीमा के रूप मे परम पवित्रता को प्राप्त हो चुकी हैं, उन आत्माओ को हम किसी भी शब्द से समझें, अर्थ वही होना चाहिये। उस अर्थ की स्थिति को लेकर आज की कविता मे कुछ संकेत दिया गया है कि—

वासुपूज्य जिन त्रिभुवन-स्वामी, घननामी परनामी रे।

आप वासुपूज्य के नाम से पुकारे जाते हैं। आप तीन लोक के स्वामी हैं। आपके गुणो का चिट्ठा (विवरण) मैं गिनती की दृष्टि से पेश नहीं कर सकता। परन्तु मैं एक ही शब्द के द्वारा आपके समग्र नामों को ग्रहण करता हू कि आप घननामी हैं

अर्थात् आपके इतने नाम हैं कि इन्सान उनकी गिनती नही कर सकता है। प्रभु की एक-एक शक्ति के पीछे यदि एक-एक नाम भी रखा जाए तो अनन्त नामो का चिट्ठा सामने आता है। उनकी गिनती करने में मनुष्य असमर्थ है। इन सब शब्दों को एक नाम के रूप मे ग्रहण करके मैं आपके वास्तविक स्वरूप की ओर मुडना चाहता हू कि आप 'परनामी' हैं अर्थात् इतने नाम होते हुए भी आप नामो से परे हैं। नामो के साथ आपका सम्बन्ध नही है। इसलिए आप परनामी भी हैं।

ऐसे शुद्ध स्वरूपी परमात्मा को भव्यात्मायें किस रूप मे ग्रहण करें? यदि उनको ग्रहण करना है तो वर्तमान शक्ति के साथ करना है। उस परमात्मा की जाति जैसा तत्त्व मनुष्य के शरीर-पिण्ड मे विद्यमान है। परमात्मा की जितनी व्याख्यायें अभी की गई हैं, उन्ही व्याख्याओं के अनुरूप और दूसरे शब्दो मे कहा जाए तो भगवान् के अनुरूप भगवान् की परिपूर्णता की योग्यता, चैतन्य तत्त्व आत्मा (मानव) के जीवन मे विद्यमान है। वह है तो जीवन है और यदि वह नही है तो फिर जीवन भी नहीं है।

मानव बहुत बडी शक्ति को सचित करके बैठा हुआ है। वह बहुत बडी निधि को लेकर चल रहा है। वह बहुत बडे चिंतामणि-रत्न को पास मे रख कर सो रहा है। परन्तु उस चिंतामणि-रत्न का उसको कुछ भी ज्ञान नहीं है। उसे उस पवित्र शक्ति का ध्यान नहीं है। ऐसी दशा मे ही ज्ञानीजनों का कथन है कि वे अनन्त करुणा की दृष्टि से अपने कर्तव्य का वहन करने की भावना से भव्य प्राणियों को जगाने की कोशिश करते हैं। मानव को जागने की आवश्यकता है। वह चिंतन करे कि ऐसी शक्तियों का पुंज और चिंतामणि रत्न, जो वांछित इच्छापूर्ति करने वाला तत्त्व है,

मेरे पास है तो मैं दरिद्री कैसे हू ? मैं क्यों अपनी आत्मा के अंदर हीन भावना को पा रहा हू ? रात और दिन मेरे चेहरे पर उदासी छाई रहती है, मैं चिंता ही चिंता करता रहता हू कि क्या करू, मेरे पास अमुक चीज नही है, मैं अमुक कष्ट से ग्रसित हो गया, मेरे ऊपर अमुक विपत्ति आ गई, अमुक समस्या आ गई तो उसकी पूर्ति कैसे की जाये, अब कैसे क्या होगा ? इस प्रकार की धारणा का मस्तिष्क मे लाकर यह आत्मा अपने आपको हीन भावना मे बहा रही है। इस हीन भावना का दुष्परिणाम यह है कि इन्सान की प्रफुल्लित बनने की शक्ति का विकास नही हो रहा है, उसे पवित्र शक्ति का उद्बोधन नही मिल रहा है।

इन्सान को अपनी शक्ति पर विश्वास रख कर चलना है और दृढता के साथ विकास करने का सकल्प करना है। जब तक वह दृढतापूर्वक अपने जीवन को नहीं संभालेगा, तब तक जीवन की दयनीय दशा न आज समाप्त होने वाली है, न कल समाप्त होने वाली है और न वर्षों बाद समाप्त होने वाली है। उसकी यह दशा भूतकाल से, बहुत वर्षों से, अनादि काल से चली आ रही है और भविष्य मे भी चलती रह सकती है। यदि वह इस जीवन को महत्त्वपूर्ण दृष्टि से देखना चालू कर दे तो उसे पूर्वकालीन वृत्तान्त ज्ञात हो सकता है और भविष्य के लिये भी भव-भ्रमण की सीमा निर्धारित की जा सकती है।

आत्मा इस जीवन मे वास्तविक आनन्द की अनुभूति कर सकती है। परन्तु यह अनुभूति सहसा एक साथ उपलब्ध नही हो सकती। यदि इसको शनै-शनैः सपादित किया जाय तो यह अवश्य ही इस जीवन की वास्तविक उपलब्धि कर सकती है। मानव का ध्यान जब इस विषय की ओर हो, तो कैसा भी कुछ हो, वह इस काम को पूरा कर सकता है।

एक मनुष्य ने बहुत बडी गेहू की राशि देखी, जिसमे बहुत अधिक ककर मिले हुए थे। फिर उसने यह विचार किया कि इस गेहू के साथ बहुत ककर हैं और यदि ये ककर साथ रखे गए तो मेरे जीवन के लिये घातक बनेंगे। मैं इन ककरों को बीन लू तो शुद्ध गेहू मेरे जीवन के लिये हितावह हो सकता है। इस भावना से यदि वह गेहू को देखना चालू करे और उसमे रहने वाले ककरो को चुनने की कोशिश करे तो आहिस्ता-आहिस्ता वह उस गेहू की राशि को ककरो से रहित कर सकता है। परन्तु यदि कोई चाहे कि गेहू की राशि को मैं एक साथ ही ककरो से रहित कर दू तो यह शक्य नहीं है।

इस जीवन की भव्य राशि मे ककरो के समान जो हीन-भावनाओं का सचय है, मलिन तत्त्वो की उपस्थिति है, यदि उनको चुनने का कोई मुहावरा बना ले तो वह प्रतिदिन अपने गुणो में वृद्धि करता हुआ अपने इसी जीवन में पुण्यशालो बन सकता है। यदि कोई मनुष्य कभी ऐसा सोचता है कि मैं इस वतमान दृष्टि से जीवन को पुण्यशाली कसे बना सकता हू क्योकि मेरा जन्म तो एक दरिद्र घराने में हुआ है और मैं स्वय भी दरिद्र हू, यदि इस प्रकार की भावना किसी के मस्तिष्क मे हो तो यह एक बहुत बडी भ्राति है। मनुष्य का जन्म चाहे किसी घराने में हुआ हो परन्तु आत्मा स्वय दरिद्री नही है। यदि कोई आत्मा आर्थिक दृष्टि से कमजोर परिवार मे जन्म लेने पर भी पुरुषाथ करे तो वतमान जीवन मे वह समृद्धिशाली बन सकती है। साथ ही वह अपने पूर्व के बाधे हुए भाग्य का भी परिवतन कर सकती है, बशर्ते कि वह मजबूत बध वाला नही हो। कहा है कि—

'पूर्व जन्म कृत कर्म तद्दवमिति कथ्यते।'

पूर्व जन्म मे जो कर्म किए गए हैं, उनका आत्मा के साथ बध

हुआ है—वही भाग्य और दैव की सज्ञा पाता है। यदि वह बधन ढीला हो और वर्तमान मे दरिद्री अवस्था मे पैदा होने वाला व्यक्ति सत्सग के सम्पर्क से अच्छा पुरुषार्थ करे तो वह पूर्वजन्म के दुर्भाग्य को भी सौभाग्य में परिवर्तित कर सकता है। सामुद्रिकशास्त्र के ग्रन्थो के अनुसार हस्तरेखाओ को लेकर लोग भाग्य का चिन्तन किया करते हैं कि तू अमुक बन सकता है और तू अमुक नही बन सकता है। परन्तु ज्ञानीजनो का कथन है कि यह सब भूल भुलया का खिलोना है। यदि इन्सान अपनी स्वय की शक्ति पर विश्वास करे, सयमित जीवन से दृढ पुरुषार्थ करे तो वह पूर्व की रेखाओ का आमूल चूल परिवर्तन कर सकता है। रेखाओं को देख कर अपने पुरुषार्थ का चयन मत करो। परन्तु आत्मिक शक्ति को देख कर अपने पुरुषार्थ का चयन करो। ये तो छाया की तरह बदलती हुई चली जायेंगी।

सूर्योदय के समय जो मनुष्य सूर्य की तरफ पीठ करके पश्चिम की ओर मुह करता है तो उसे अपनी छाया लम्बी दिखलाई देता है। वह छाया को देखता हुआ सोचता है कि मैं बहुत बडा हू। मैं हाथ ऊचे करू तो और भी बड़ा हो सकता हू। वह अपने हाथो को ऊचा करता है। हाथ लंबे दिखलाई दते हैं। वह झुकता है तो छाया भी झुकती है। वह टेढा होता है तो छाया भी टेढी हो जाती है। वह मुह फेरता है तो छाया भी मुह फेर लेती है। इस प्रकार छाया पुरुष के आधीन है। छाया के अनुरूप पुरुष नही है, पुरुष के अनुरूप छाया है। यदि इन्सान उस छाया को विशेष महत्त्व न दकर अपने जीवन को गौण करके छाया को पकडने के लिए दौडता है, जिधर छाया है उधर भागता है तो क्या छाया पकड में आ सकती है? वह कितना भी दौडे परन्तु छाया उसके हाथ मे आने वाली नहीं है। वैसे ही इन्सान का पूर्वकृत भाग्य,

उसकी हथेली की रेखाए और शारीरिक चिह्न ये सब छाया के तुल्य हैं। यदि वह अपनी शक्ति को मोडता है तो उसके भाग्य मे भी मोड आता है। इन्सान अपनी शक्ति को कुवडा करेगा तो उसमे भी कुबडापन आ जाएगा। यदि व्यक्ति यह सोच ले कि ये रेखाएं कुछ नही, ये तो छाया के तुल्य है, मैं इन्हें मोड सकता हू तो वह जीवन की शक्ति को सभाल लेगा। परन्तु मनुष्य के मन मे यह उदात्त भावना, यह शक्ति योग्य व्यक्तियो के सम्पर्क से ही आ सकती है। यदि उनका सम्पक निरतर चलता रहा और उनके पद-चिह्नो पर चला जाए तो इन्सान बहुत बडी शक्ति पाकर बडे व्यक्तियो के समान आश्चयजनक काय कर सकता है।

सुख विपाक सूत्र में जो कुछ भी वर्णन है, वह इसी भावना को प्रकाशित करने वाला है। उसमे पहला अध्ययन, सुबाहुकुमार नाम का है। सुबाहुकुमार अपने पूवकृत भाग्य का ऐसा बडा समूह लेकर आये थे कि जिससे वतमान मे वे समृद्धिशाली तो बने ही परन्तु शारीरिक दृष्टि से भी वे कातिमय, प्रियकारी और जनमानस के लिए आकर्षण के केन्द्र बिन्दु बने हुए थे। ऐसी स्थिति मे भी उनके मस्तिष्क मे पूवजन्म के भाग्य की समृद्धि के पीछे अहकार-वृत्ति नही थी। वे सदा नम्र होकर चलते थे। उनका चितन यही रहता था कि पूर्वजन्म मे मैंने सत्कम किए, उनका फल मुझे वर्तमान में मिला और वतमान में मैं सत्कर्म करूगा तो इससे मैं अपना वतमान भी धन्य बनाये रख सकूगा।

इसी भावना को लेकर सुबाहुकुमार प्रभु महावीर के चरणों मे पहुँचे। वे जानते थे कि प्रभु महावीर यद्यपि मानव पिण्ड (शरीर) की दृष्टि से एक क्षत्रिय कुल के भूपण हैं, क्षात्रकुल में जन्म लेने वाले एक मानव हैं परन्तु अब वे केवल इस कुल के भूपण ही नही रहे हैं, वे सम्पूण जगत् के भूपण बन गए हैं। परन्तु

वे बने कैसे ?, पूर्वजन्म से तो वे समृद्धि लेकर आए ही थे वतमान के पुरुषार्थ से, वे दिव्य शक्ति सम्पन्न होकर केवलज्ञान, केवल दशन से युक्त बने हैं। आज वे समस्त ससार के पदार्थों को हथेली की रेखाओ के समान स्पष्ट रूप से देख रहे हैं । उनसे मेरा जीवन छिपा हुआ नही है। ऐसे वीर प्रभु का आगमन सहसा समीप हो और मैं उनके पावन दशन के लिये नहीं जा सकू, यह मेरे भाग्य की बहुत बडी कमजोरी होगी, दुर्भाग्य की अवस्था होगी। मुझे ऐसे दिव्य पुरुष के चरणों मे अवश्य पहुँचना है और उनको वन्दन नमस्कार करके उनके दिव्य संदेश को ग्रहण करना है। यदि उनके उपदेश के अनुरूप मैं वतमान पुरुषाथ को बनाऊँगा तो मैं भी, उनके तुल्य दिव्य शक्ति पा सकूगा।

ऐसी दिव्य आत्माओ के मानस मे न जाने किस किस प्रकार की उदात्त- भावनाओ का सचार होता है, यह तो वे ही सोच सकते हैं परन्तु उन प्रक्रियाओं से उत्प्रेक्षा करके अनुमानत उन भवो को अकित किया जा सकता है। सुबाहुकुमार सम्पन्न होते हुए भी प्रभु के चरणों में पहुँचे। उनकी पोशाक बहुत बढिया थी। वे जेवर आदि धारण किये हुए थे। परन्तु जैसे ही वे त्यागियो के चरणो मे पहुँचे तो इस बढिया पोशाक का आकषण उनके मन से लुप्त हो गया। वे उनके त्याग का साकार रूप देख कर सोचने लगे, "इन सवस्त्र-त्यागियो के समक्ष यह भभकेदार पोशाक कुछ भी महत्त्व नहीं रखती है" जहा से प्रभु के दर्शन हुए, वहीं से वे नतमस्तक हो गए। वे पांच अभिगम सूचनाओं का ध्यान रख कर चले। उत्तरासन लगा लिया गया। अर्थात् एक कपडा मुह के सामने डाल लिया, जिसस कि वाणी विना आवरण के नहीं निकले। खुले मुह से वचन निकल गए तो जीवों की हिंसा होगी। किसी प्रकार कि हिंसा नही करनी है। उन्होंने अभिमानसूचक

चीजें अलग रखी। फूलमाला उतार कर अनुचर के हाथ मे दी। इस प्रकार वे प्रभु के समवसरण मे गए और वहाँ पहुँच कर पाचो अग नमा कर वदन किया। उन्होने यह नही सोचा कि मैं इस समय वन्दन कर रहा हू तो मेरी धोती के धूल लग जाएगी या मेरे आभूषण इधर-उधर झूल जायेंगे।

यह विचार तो उन प्राणियो को होता है जो त्यागी को महत्त्व न देकर अपनी भडकीली पोशाक को महत्त्व देते हैं। ऐसे व्यक्ति अपने बहुमूल्य फल को खो देते हैं। आजकल जहां नमन करने का प्रसग आता है तो उनके घुटने ऊपर ही रह जाते हैं। वे इस वदन के अनुरूप यत्किंचित् पुण्य का सचय करते हैं और आत्मा की शुद्धि भी यत्किंचित् होती है परन्तु यदि उनका ध्यान त्यागी के अनुरूप बन जाए तो कितने भी बहुमूल्य वस्त्र हो, इसका विचार नही रख कर वे पुण्य का फल प्राप्त करने के लिये जमीन पर झुक जायेंगे।

आज के युग में भी कई प्राणी ऐसे हैं जो बढिया पोशाक को महत्त्व न देकर श्रद्धायुक्त वदन को ही महत्त्व देते हैं। परन्तु ऐसे प्राणी बिरले ही होते हैं। वे यही सोचते हैं कि वदन से हमारे नीच गोत्र के कर्म क्षय होंगे और उच्च गोत्र के कर्म बधेंगे। परन्तु ऐसा चिन्तन वही व्यक्ति कर सकता है, जिसने वन्दन का महत्त्व समझा हो। दुर्भाग्य की रेखा कैसे कटती है और सौभाग्य का निर्माण कैसे होता है, इस आतरिक भावना को नहीं समझेंगे तब तक वैसे फल की प्राप्ति नही हो सकती।

मैं आपसे कुछ सकेत कर रहा हू कि सुबाहुकुमार का वदन भी वैसा ही था। वे विनम्र भावना से सुख-शांति पूछ कर आगे बढे तो उनके मस्तिष्क में यह विचार नहीं था कि ये प्रभु महावीर

राखी का रहस्य

धार तलवारनी सोहली, दोहली चौदमा जिन तणी चरणसेवा ।

अनन्तनाथ परमात्मा का स्वरूप तात्त्विक दृष्टि से समझने योग्य है । प्रभु का जीवन अद्भुत है । इस अद्भुत ज्योति की उपासना तलवार की धार से भी कठिन बतलाई गई है ।

यह पचम काल है । इसके अन्दर अनेक प्रकार की विचित्र परिस्थितिया मानव मन को शात न रखते हुए उसकी चचलता को दिन-प्रतिदिन बढा रही हैं । ऐसी मानसिक दशा मे प्रभु के स्वरूप का चिंतन अति कठिन है । वह स्वरूप मन से, बुद्धि के माध्यम से और चिन्तन की शक्ति से समझा जा सकता है । जिस माध्यम से, जिस मन से तात्त्विक दृष्टि का स्वरूप चिंतन किया जाता है, जब उस मन मे ही उलझन हो मन ही गठोला बना हुआ हो, तब उसकी एकाग्रता स्थिर नहीं रहती है । ऐसी स्थिति में परमात्मा के स्वरूप को समझना कठिन हो जाता है ।

मन की इस प्रकार की विचित्र दशा बनने के अनेक कारण हैं । पचम काल का प्रभाव, उसकी स्थिति की विचित्रता तो मन का विचित्र बनाने मे निमित है ही, परन्तु साथ ही इसके प्रभाव से संसार के अन्दर विचित्र-विचित्र गच्छ, विचित्र-विचित्र परिस्थितिया और विचित्र गुट भी बन रहे हैं । उनमे मनुष्य का मन उलझ जाता है और वह सही मार्ग से ध्यान हटा कर दूसरी ओर लग जाता है । इसीलिये कवि का कथन है कि—

'गच्छना भेद बहु नयण निहारता, तत्त्वनी वात करता न लाज ।'

जहां अलग अलग पार्टियां हो, अलग अलग व्यक्तियों के गुट

हो, अलग-अलग स्थिति से चिंतन हो और अलग-अलग भावना से स्वाथ का पोषण हो, इस प्रकार का वातावरण जब कुछ इन्सानो मे चलता हो तो व्यक्ति का मन दूषित हुए बिना नही रहता है। व्यक्ति सोचता है कि मैं अमुक गच्छ या अमुक गुट के साथ अमुक तरीके से बध कर चलूगा तो मुझे बडी भारी सफलता मिलेगी। मैं दुनिया मे प्रसिद्ध हो सकूगा। दुनिया मेरे पीछे भागेगी और मैं अपना स्वार्थ सिद्ध कर सकूगा। इस प्रकार की भावना जिस मानस मे चलती है तो वह मानस भले ही तत्त्वो की बातें करता हो, ऊपरी दृष्टि से वह कितना ही चिंतक कहलाता हो परन्तु जब उसके अ दर स्वाथ सिद्धि की आसक्ति रहती है, जब वह इस गच्छ या उस गुट के साथ गाढे तरीके से बध जाता है, तब वह प्रभु की साधना का चि तन करने वाला नही रहता है।

सकेत है कि—'तत्त्वनी वात करता न लाज।' जो व्यक्ति इस प्रकार के तुच्छ स्वाथ के पीछे अपने मन को कुठित बना कर गुट-बाजी की अवस्था मे लुब्ध होता है और साथ ही आध्यात्मिक तत्त्व की बातें भी करता है तो वे बातें उसे शोभा नही देती हैं। इसलिये सकेत किया गया है कि वह लजाता नही है।

ऐसे व्यक्ति तात्त्विक बातें करके अपना उदर-पोषण करते फिरते हैं। साधारण जनता के सामने तो वे कहते हैं कि हम अध्यात्मवादी हैं, हम आत्मधर्मी हैं, हम आत्मसाधना के अतिरिक्त और कुछ भी बात नही करते हैं, परन्तु उनके जीवन की स्थिति देखी जाए, उनके बर्ताव को देखा जाए तो आध्यात्मिक जीवन की दृष्टि से शून्यता ही मिलेगी। वहा बौद्धिक दृष्टि से कथन तो अवश्य है, परन्तु आत्मा मे विपरीत पुद्गलो का प्रवेश है। रहने के लिये बढिया बगला चाहिये, सोने के लिये गादी-तकिए चाहिए, भोजन मे मिष्टान्न चाहिये और आने जाने के लिये हजारो रुपयो की

मोटर चाहिये। ऐसी अनेक प्रकार की सुख सुविधा की बातें जिनके आचरण मे हो, जिनका व्यवहार इस प्रकार का पुद्गलानन्दी हो और फिर वे आत्म तत्त्व की बातें करें कि हमारे समान आध्यात्मिक जीवन का ज्ञाता कोई नही है तो वे अपने मन मे आध्यात्मिक जीवन की कल्पना भले ही कर लें, परन्तु वस्तुत आध्यात्मिक जीवन के साथ उनका कोई विशेष सबध नही है।

वे ऐसा करते हैं तो दुनिया के लोग कह सकते हैं कि जब तू ससार के परिवार को लेकर चल रहा है, मोह को लेकर चल रहा है तो तू त्यागी नही है। तू आत्मा की साधना मे नहीं, मोह का साधना मे लगा है। जसे हम ससार का काय करते हैं वैसे ही तू भी कर रहा है। ऐसी कठिन हालत मे निभने की स्थिति नहीं रहती है तो वह सोचता है– दुनिया ठगना मक्कर से, रोटी खाना शक्कर से।' दुनिया को भुलावे मे डालने के लिये आध्यात्मिक तत्त्व की बातें करते रहे, आध्यात्मिकता की पुस्तकें निकालते रहें तो दुनिया कहेगी कि बडे आध्यात्मिक ज्ञानी आ गये हैं। इसकी आड मे पाचो इन्द्रियो के भोगो को भोगते रहो। कलिकाल मे जो इस प्रकार रहते हैं, उन्हे तात्त्विक बातें कहते लज्जा आनी चाहिए। ऐसे व्यक्तियो के लिये सकेत है कि वे मोह के बधन में पडे हुए हैं और बनावटी बातें करते हैं। इसीलिए कवि ने उनको फटकारा है कि उन्हे लज्जा आनी चाहिये क्योंकि इस प्रकार की बातें कहना तो 'वदतो व्याघात' है। इसका मतलब है कि वाणी के उच्चारण के साथ ही साथ उसके उच्चारण का स्वयं खडन हो जाता है। उदाहरण के तौर पर यदि कोई व्यक्ति कहे कि मेरी मा बांझ है, यानि सतान वाली नहीं है तो फिर वह उसकी मा कैसे हो गई ? इस प्रकार उस व्यक्ति के कथन से ही उसका खडन हो जाता है। वैसे ही आध्यात्मिकता की बातें ऊची हैं, खरी हैं,

परन्तु यदि जीवन में परिग्रह है, व्यसनों में आसक्ति है तो वह जीवन स्पष्ट बतलाता है कि आध्यात्मिक जीवन की बातें सिर्फ वचनो तक ही सीमित हैं। मन मे भौतिक लालसा है और उसकी पूर्ति के लिये सुख के साधनो की सामग्री जुटाई जा रही है।

शरीर और आत्मा वर्तमान पर्याय की दृष्टि से दूध और पानी की तरह मिले हुए हैं। आत्मा के बिना बेचारा शरीर क्या कर सकता है? आत्मा रहित शरीर जड है। यदि शरीर ही कुछ करता है तो आत्मा के निकल जाने के बाद क्या मुर्दा शरीर कहेगा कि मुझे बढ़िया मोटर चाहिये, बढिया मिष्टान्न चाहिये, गादी-तकिये चाहिये? मुर्दा शरीर तो कुछ नही कहता है।

जिस व्यक्ति को आध्यात्मिक ज्ञान है, जो अनन्तनाथ प्रभु की चरण सेवा का मर्म समझ गया है, वह कभी नहीं कहेगा कि मुझे मिष्टान्न चाहिये, गादी तकिये चाहिये या मोटर चाहिये। वह तो साधना मे जीवन बितायेगा। वह शरीर पर ममत्व नही रखेगा, वह किसी वाहन का अवलबन नही लेगा। उसका जीवन समभाव से चलेगा। खाने को जो मिलेगा, उसे वह स्वाभाविक तौर पर ले लेगा, चाहे उसे भूगडे मिलें या उडद के बाकले। रूक्ष अथवा सरस आहार मिलता है तो क्या? वह तो समभाव से सोचेगा कि मुझे तो शरीर को भाडा देना है, सो दे दू। इस प्रकार का आचरण जिन मानवों का हैं, वे आध्यात्मिक जीवन की तात्त्विक बातें करें तो फिर भी योग्य है परन्तु जिनके जीवन मे आचरण नहीं है, वे तो सिर्फ बातो को उडाने भर रहे हैं।

बधुओ! आध्यात्मिक जीवन की जो तीक्ष्ण धार है, उस पर चलना अति कठिन है। वह सहज नहीं है। उस पर चलने वाले प्राणी बडी विचक्षणता से चलते हैं। एक क्षण के लिये भी अशुभ योग रूप प्रमाद आया कि इतने में ही पाचो इन्द्रियो के विषयों ने

प्रवेश पा लिया। आसक्ति आ गई तो तलवार की धार के नीचे गर्दन चली जायेगी। बड़े बड़े योगी, जिन्होंने सर्वस्व का त्याग किया, वे भी प्रसग आने पर फिसल गये।

अरिष्टनेमि के लघु भ्राता रथनेमि ससार का त्याग करके एक गुफा मे आध्यात्मिक साधना में बैठे थे। परन्तु वहां भी उनके डिगने का प्रसग आ गया। आधी और तूफान के साथ पानी बरसने लगा। सती राजिमती नेमिनाथ भगवान के दर्शन करने के लिये जा रही थी। बरसात मे भीगते हुए उन्होंने उस गुफा मे प्रवेश किया। सती सोचने लगी कि इसमें कौन रह सकता है? उन्होने बाहर के प्रकाश मे से अधकार म प्रवेश किया था। जब व्यक्ति सहसा प्रकाश से अधेरे में प्रवेश करता है तो उसे जल्दी ही कुछ दिखलाई नहीं देता है। वहा सती अपने वस्त्रो को अलग करके सुखाने मे तत्पर हुई। वस्त्र सुखाने मे कुछ समय लगा। इधर गुफा में बैठने वाले रथनेमि ने, जो अपनी आध्यात्मिक साधना में तन्मय थे, राजिमती को देख कर अपने मन के सकल्प बिगाड़े और आध्यात्मिक धारा से नीचे उतर कर मलिन भावना अभिव्यक्त करने लगे। परन्तु सती तेजोमयी थी और प्रभु के मार्ग को समझने वाली थी। ऐसी कठिन परिस्थिति मे भी वह तलवार की धार (सयम) पर अखड रूप से चलने वाली थी। रथनेमि को फिसलते देख कर उस सती ने बोध देना ही उपयुक्त समझा और इस प्रकार फटकार लगाई—

धिरत्थु तेऽजसोकामी जो त जीविय कारणा।
वत इच्छसि आवेउ, सेय ते मरण भवे॥

उत्तरा अ २२ श्लोक ४३

अरे! धिक्कार है तुझे अपयश के कामी। तू आत्मिक साधना के लिये साधु बना और आत्मबल साधने के लिये गुफा में बैठा,

परन्तु यहा वैठे-वठे भी उस साधना से भ्रष्ट होने की स्थिति मे चल रहा है। ऐसे जीवन को धिक्कार है। इससे तो मरण ही श्रेयस्कर है।

सती के ऐसे जोशीले वचन आध्यात्मिक धारा पर चलने के कारण ही तीक्ष्ण थे। वे किसी के दिल पर चोट पहुचाने के लिये नही थे। वे तीक्ष्ण वचन तो मोह-जाल को काटने के लिये थे। रथनेमि के मन पर उन वचनों का प्रभाव पडा और वह ठिकाने आ गया।

तात्पर्य यह कि आध्यात्मिक साधना इतनी सहज नही है, जैसा कि लोग सोच लेते हैं। यह बातो से नही, आचरण से आती है। आत्मा के असख्य प्रदेश शरीर मे व्याप्त हैं और शरीर मे रहे हुए हैं। आत्मा म आध्यात्मिक जागृति है तो वह प्रत्येक प्रदेश में आयेगी, शरीर के कण-कण में व्याप्त होगी। उसमे से आध्यात्मिकता की सुगध निकलेगी और शरीर के प्रत्येक अवयव मे से आध्यात्मिक जीवन की साधना का सयम अभिव्यक्त होगा जसे कि—

हत्यसजए, पायसजए, वायसजए सजइदिए।
अज्झप्परए सुसमाहि अप्पा, सुत्तत्थ च विआणइ जे स भिक्खू ॥
(दस० सूत्र, अध्य० १०, गाथा १५)

जो हाथो से सयत है, पैरो से सयत है अर्थात् हाथ-पैर आदि अवयवों को कछुवे की तरह सकोच कर रखता है और आवश्यकता पडने पर यतनापूर्वक काय करता है, जा वचन से सयत है अर्थात् किसी को सावद्य परपीडाकारी वचन नही कहता, जो सब इन्द्रियो को वश मे रखता है, अध्यात्मरस में एव धर्मध्यान शुक्लध्यान मे रत रहता है, जो सयम मे अपनी आत्मा को समाधिवत् रखता है, जो सूत्रो और अर्थ को यथार्थ रूप से जानता है, वह

प्रवेश पा लिया। आसक्ति आ गई तो तल
गर्दन चली जायेगी। बड़े बड़े योगी, जिन्हें
किया, वे भी प्रसग आने पर फिसल गये।

अरिष्टनेमि के लघु भ्राता रथनेमि स
एक गुफा मे आध्यात्मिक साधना मे बैठे
उनके डिगने का प्रसग आ गया। आधी
पानी बरसने लगा। सती राजिमती नेमिन
करने के लिये जा रही थी। बरसात में भीग
गुफा में प्रवेश किया। सती सोचने लगी कि
है ? उन्होंने बाहर के प्रकाश मे से अधकार
जब व्यक्ति सहसा प्रकाश से अधेरे मे प्रवेश
जल्दी ही कुछ दिखलाई नहीं देता है। वहा
अलग करके सुखाने मे तत्पर हुई। वस्त्र
लगा। इधर गुफा मे बैठने वाले रथनेमि
त्मिक साधना मे तन्मय थे, राजिमती को दे
सकल्प बिगाड़े और आध्यात्मिक धारा से
भावना अभिव्यक्त करने लगे। परन्तु सती
के मार्ग को समझने वाली थी। ऐसी कठिन
तलवार की धार (सयम) पर अखड रूप से
रथनेमि को फिसलते देख कर उस सती ने
समझा और इस प्रकार फटकार लगाई—

धिरत्थु तेऽजसोकामी जो त जीविय
वत इच्छसि आवेउ, सेय ते,
उत्तरा

अरे! धिक्कार है तुझे अपयश के कामी
...ये साधु बना और आत्मबल साधने के

शिष्य-परिवार सहित बगीचे मे पधारे हैं। अत पहले उनके दर्शन करना है, व्याख्यान श्रवण करना है, जीवन को साधना मे लगाना है। ये राजकीय काय तो हर रोज ही चलते रहते हैं परन्तु यह अवसर तो कभी कभा ही आता है।

महाराजा ने अपने प्रधान नमुचि तथा अन्य कमचारियो के समक्ष अपने विचार रखे। जो कमचारी आध्यात्मिकता मे रस लेने वाले थे, वे परम प्रसन्न हुए। परन्तु उनमे प्रमुख रूप से काम करने वाला प्रधान नास्तिक विचारो का था। उसने सोचा कि अकपन नाम के आचाय यहा पधारे हैं। यदि महाराजा ने उनके आध्यात्मिक वचनो को श्रवण कर लिया तो उनकी आध्यात्मिक भावना और भी गहरी हो जायेगा और फिर म अपने मनमाने तरीके से भौतिकवाद का प्रचार व प्रसार नही कर सकूगा।

महाराजा ने प्रधान से कहा कि आचायश्री अकपन पधारे हैं, अत उनका उपदेश सुनने का लाभ प्राप्त करना चाहिये। बगीचे मे चलें और आचायश्री के दशन करें। इस पर प्रधान ने उत्तर दिया, 'राजन्! ऐसे रूड मुड व्यक्तियो के पास जाकर आप क्या करेंगे?" महाराजा ने कहा, "प्रधानजी, आप क्या कहते हैं? ये बहुत बडे महात्मा हैं। इनके समीप जाने से चित्त को बहुत शाति मिलेगी।"

प्रधान सभल गया। उसने सोचा कि महाराजा की उनमे प्रगाढ श्रद्धा है। अत वह बोला, "राजन्! आप जैसा कहते हैं, वे वसे ही हैं। परन्तु क्या वे मेरे प्रश्नो का उत्तर दे देंगे।"

प्रधान ने अपने मन मे सोचा कि मैं उनके समक्ष अटसट प्रशन रखूगा, जिनका उत्तर वे अपने शिष्यो के सामने नहीं दे पायेंगे। उस समय मैं महाराजा से कहूगा कि आप मुझे बिनये

पास ले आये ? इस प्रकार मन मे कूटनीति रख कर प्रधान ने कहा, "अच्छा महाराज ! मै चलता हू।"

अकपन आचार्य विशिष्ट ज्ञाता थे। उन्होंने अपने अन्तर्ज्ञान से पता लगा लिया कि महाराजा अपने जिस प्रधान के साथ आ रहे हैं, वह नास्तिक है। वह जिज्ञासा से नही, परन्तु विजिगीषा (विजय की इच्छा) से आ रहा है। वह दूसरा ही वातावरण बनाना चाहता है। इसलिए अकपन आचार्य ने अपने सभी शिष्यो से कहा कि महाराजा तथा प्रधान आए तब सब मौन रखें। सबने यह आज्ञा शिरोधार्य कर ली।

प्रधानजी महाराजा के साथ आचार्यश्री के समीप पहुँचे और वहां जाकर प्रश्नो की झडी लगा दी। सब सत मौन व्रत में थे। अत उन्हे कुछ भी उत्तर नहीं मिला। महाराजा उनके मौन व्रत की आकृति देख कर बहुत प्रसन्न हुए। त्यागी की छाप हर एक व्यक्ति के ऊपर पडे बिना नहीं रहती है। उनका प्रभाव भव्य था। इस प्रकार महाराजा तो आध्यात्मिकता से प्रभावित हो गये परन्तु प्रधान जब कुतर्क करने लगा और उसे कोई उत्तर नही मिला तो वह बोला, "राजन् ! आप कह रहे थे कि ये बहुत बडे ज्ञानी हैं, परन्तु ये तो मौन-व्रत लेकर बैठ हैं।" महाराजा ने कहा, "ये विशिष्ट साधना मे हैं, अत मौन धारण कर रखा है।" इसके बाद वे लौट चले।

सयोग की बात है कि उस समय आचार्यश्री का एक शिष्य भिक्षा के लिये नगर मे गया हुआ था, जिसे गुरुवर की आज्ञा की जानकारी नही थी। भिक्षा लेकर जसे ही वह उस रास्ते से आ रहा था तो सामने से प्रधान जी मजाक उडाते हुए आ गये। सडक के किनारे एक वृक्ष के नीचे प्रधान जी ने उसको रोक लिया

और प्रश्न कर बैठे। भिक्षा लेकर आने वाले मुनि ने इस ढग से उत्तर दिया कि प्रधान जी बौद्धिक दृष्टि से परास्त हो गये।

प्रधान ने विचार किया कि मै साथियो के साथ रहता हू और इनसे सम्मान प्राप्त करता हू। परन्तु इस छोटे मुनि ने इन सबके सामने मेरा मुह बद कर दिया। अत साथियों के सामने मेरी इज्जत गिर गई। अवसर आने पर इसकी खबर लेनी है। ऐसा विचार करता हुआ वह राजधानी में पहुँचा और अपनी झूठी प्रतिष्ठा कायम रखने के लिए मुनियो के विरुद्ध षडयन्त्र रचने लगा।

मुनि ने आचार्यश्री के समीप पहुच कर मार्ग मे हुई घटना की जानकारी दी तो आचार्यश्री ने कहा कि तुमको प्रधान जी से बात नही करनी चाहिये थी। शिष्य न कहा, "गुरुदेव! मुझे पता नही था।" आचार्यश्री ने कहा, "खर, जो हो गया, सो हो गया। परन्तु आज रात को उसी वृक्ष के नीचे जाकर ध्यान करो। यदि उपसग आये तो आध्यात्मिक जीवन मे मजबूत रहना।" वह शिष्य आज्ञाकारी था। अत गुरु की आज्ञानुसार समय पर वह उसी वृक्ष के नीचे जाकर ध्यान में लीन हो गया।

रात्रि में प्रधान जी अपने सैनिको के साथ उसी रास्ते से जा रहे थे। उनके हाथो में नगी तलवारें थीं। जब वे उस वृक्ष के नीचे से निकले तो उन्होने मुनि को ध्यानावस्था मे देखा और देखते ही कहा कि इसी मुनि ने मुझे परास्त किया है। सब साथियो ने मुनि के चारो तरफ घेरा डाल दिया और तलवारें ऊपर उठा ली। प्रधान ने कहा, "इसके ऊपर सब एक साथ तलवारों से वार करो।"

वार करने के लिये तलवारें उठाई गई परन्तु वे ऊपर ही उठी रह गई, नीचे न गिर सकी। सारी रात यो ही बीत

प्रात काल का समय हुआ तो लोगो ने देखा कि यह क्या मामला है ? अरे ! प्रधान जी एक मुनि के ऊपर तलवार उठाये खड़े हैं। इतने मे ही महाराजा भी अपने सैनिको सहित वहां आ गये। उन्होने देखा कि प्रधान जी आदि के हाथ तलवारो सहित ऊपर उठे हुए हैं और पैर जमीन पर चिपके हुए हैं। प्रधान जी की इस दुर्नीति को देख कर उन्होंने उनको बहुत फटकारा।

समय पर मुनि ने ध्यान खोला और ज्यों ही गुरु की तरफ चलने को पैर उठाये कि उन सब के हाथ पैर भी खुल गये। वे कुछ भी नही कर पाये। महाराजा ने प्रधान के कृत्यो की भत्सना करते हुए उन सब को देश-निकाला दे दिया।

प्रधान अपमानित होकर एक चक्रवर्ती राजा के यहां पहुँचा। उसमे बौद्धिक कला थी, चतुराई थी। अत उसने अपनी चतुराई से ऐसा काय करके दिखलाया कि चक्रवर्ती महाराजा उस पर अत्यन्त प्रसन्न हो गये और उन्होने उसे वरदान देने का प्रण कर लिया। प्रधान ने कहा "महाराज, इस वरदान को भडार मे ही रहने दीजिये। जब आवश्यकता होगी, मैं माग लूगा।"

कुछ समय बाद जब प्रधान को मालूम हुआ कि वही अकपन आचार्य यहां आ गये हैं तो उसने सोचा कि वहा मेरा तिरस्कार हुआ था, परन्तु यहां मैंने चक्रवर्ती से वरदान ले रखा है। अत चक्रवर्ती को यह ज्ञात न हो कि मुनिराज यहां आये हैं, इससे पहले ही मैं उनसे वरदान मांग लू। ऐसा सोच कर उसने चक्रवर्ती महाराजा से अपना वरदान मागा—"महाराज, सात रोज के लिये मैं चक्रवर्ती बनना चाहता हू। अत इस अवधि मे मेरी नीति में और व्यवहार मे आप किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करें।" महाराजा वचनबद्ध थे। अत उन्होंने प्रधान जी को सात दिन के लिये राज सिंहासन सौंप दिया और स्वय अन्तःपुर मे चले गये।

प्रधान ने दुर्नीति का प्रयोग करने के विचार से वहां ऐसा प्रसग उपस्थित किया, जिससे कि सातवें रोज उन मुनियो को खत्म किया जा सके। उसने छ ही खडों में आज्ञा दे दी कि इस प्रकार के साधु साध्वियो आदि को इस चक्रवर्ती राज्य मे रहने की आवश्यकता नहीं है। ये लोग सात दिन मे यहा से चले जायें। यदि चले जाते हैं तो ठीक है, नही तो उन्हें उठा कर समुद्र मे फिकवा दिया जाएगा अथवा अग्नि मे जलवा दिया जाएगा'।

इस प्रकार की राजाज्ञा से छ खडो मे तहलका मच गया। अब जायें कहा ? उसके बाहर तो समुद्र है। क्या उसमे जाकर गिरें ? इस प्रकार चतुर्विध सघ पर बहुत बडी आपत्ति और निग्रन्थो के हनन होने की स्थिति का प्रसग आ गया।

गुरुदेव रात्रि के समय स्वाध्याय कर रहे थे। उस समय उन्होने देखा कि आकाश मे श्रवण नक्षत्र कपायमान हो रहा है। उस नक्षत्र को कापते देख कर उन्होने निश्चय किया कि आज छहो खण्डा मे रहने वाला चतुर्विध सघ खतरे मे है। इसलिये उनके मुह से सहसा निकल पडा कि—"अहो कष्टम्, अहो कष्टम् !"

उस समय उनका एक शिष्य एक गुफा मे साधना मे बैठा हुआ था। उसने देखा कि गुरुदेव पर कोई आपत्ति आ गई है। अत वह बाहर आया और बोला, "गुरुदेव, क्या कष्ट है ?" आचार्यश्री ने परिस्थिति समझाते हुए कहा, "आज सूर्योदय होते ही यदि नमुचि नाम के प्रधान को नहीं समझाया गया तो बहुत बड़ा अनर्थ होने वाला है। चतुर्विध सघ खतरे मे है। उसका सरक्षण करना अत्यावश्यक है। परन्तु अब कौन सरक्षण करेगा ? राजा चक्रवर्ती तो उसको राज्य सौंप कर अन्त पुर मे चला गया है। फिर भी एक उपाय अवश्य है कि उसके छोटे भाई पहाड़ की

गुफा में ध्यान करके बैठे हुए हैं। उनका नाम विष्णु मुनि है। वे चाहें तो सबको बचा सकते हैं। परन्तु उनके पास यह समाचार पहुँचाये कौन ?"

शिष्य ने निवेदन किया—"गुरुवर ! यदि ऐसा प्रसग है तो अपनी लब्धि के जरिये वहा जा सकता हू । आपकी आज्ञा हो तो मैं वहां जाऊ ।" आचार्य ने कहा, "जाओ और उन्हे शीघ्र सूचना दो ।"

वह शिष्य लब्धि से विष्णुकुमार मुनि के पास जा पहुँचा और सब स्थिति उन्हें समझा दी । विष्णु मुनि वैक्रिय लब्धि-धारक थे । वे उसकी शक्ति से राज्य में पहुँचे और अपने चक्रवर्ती भाई से जाकर मिले । वे कहने लगे, "आपने यह क्या कर दिया ? किसके हाथ मे सत्ता सौंप दी ? आध्यात्मिक जीवन पर आघात हो रहा है । सर्वस्व त्यागियो का हनन होने का प्रसग है ।" यह सुन कर चक्रवर्ती महाराजा ने कहा, "भाई, मैं क्या कर सकता हू ? मुझे पता नही था कि यह व्यक्ति इस प्रकार की दुष्टता करेगा । मैं तो सात दिन तक इसको कुछ नहीं कह सकता । तुम जैसा चाहो, वैसा कर सकते हो ।"

विष्णु मुनि ने अपनी वैक्रिय शक्ति से शरीर का परिवर्तन किया । वे बावना शरीर बना कर नमुचि के पास गये और उससे कहने लगे, "आप चक्रवर्ती सम्राट के पद पर हैं तो अवसर पर आपको दान भी करना चाहिए ।" प्रधान ने तत्काल उत्तर दिया, "कहिए, आप क्या चाहते हैं ?" बावने ने कहा, "मुझे कुछ नहीं चाहिए । मैं तो बस साढे तीन पैंड जमीन चाहता हू ।" प्रधान ने हसते हुए कहा—"तथास्तु ।"

जमीन एकदम ही थोडी मांगी गई थी, परन्तु विष्णुकुमार ने अपना विराट रूप बना कर तीन पड मे छहों खण्डो के राज्य को

नाप लिया। फिर आधा पड बच रहा तो नमुचि ने सोचा— अब क्या करू ? वह वामन के चरणो मे गिर गया। इस प्रकार उसका हृदय बदल गया और चतुर्विध सघ की रक्षा हुई। ऐसे प्रसग से रक्षा बन्धन का प्रारम्भ माना जाता है।

लगभग इसी प्रकार का एक प्रसग पुराणो मे भी है। दैत्यो का राजा बलि जब यज्ञादिक प्रक्रियाओ से अपना प्रभाव बढा रहा था तो देवो को खतरा पैदा हो गया। देव अपनी रक्षा मे विफल हुए तो विष्णु भगवान् के पास पहुचे और कहने लगे, "भगवन् ! आप हमारी रक्षा कीजिये।"

उस समय विष्णु भगवान् ने वामन रूप बनाया और राजा बलि से जाकर बोले, "राजन् ! यज्ञ करके स्वर्ग प्राप्त करना चाहते हो तो दान भी देना चाहिये। बलि राजा ने सोचा कि एक छोटा सा व्यक्ति दान मांग रहा है तो उससे पूछा कि तुम क्या चाहते हो ? वामन ने कहा मुझे तो सिर्फ साढे तीन पैड धरती चाहिये। राजा बलि ने तत्काल 'तथास्तु' कह कर उसकी बात मान ली।

वामन ने विराट रूप धारण किया और तीन पैड मे सम्पूर्ण विश्व को नाप लिया। फिर वे कहने लगे, "अब आधा पैर कहा रखू ?" ऐसा कहते हुए उन्होंने उस पैर को राजा बलि के सिर पर रख दिया, जिससे वह पाताल लोक मे चला गया।

यहां कथा-भाग की दृष्टि से कथा को न पकडे परन्तु इससे रक्षा त्यौहार का प्रचलन कैसे हुआ, यह समझें। देवो की प्रकृति को आध्यात्मिक स्थिति में समझें और राक्षसी-प्रकृति का अभिप्राय राक्षसो से लें।

इसी प्रकार रक्षा की दृष्टि से इतिहास के पृष्ठ पढें। चितौड पर गुजरात के बादशाह ने आक्रमण किया तो परिस्थितिवस

मेवाड की महारानी ने दिल्ली के मुगल बादशाह हुमायू के पास राखी भेजी। उस समय हुमायू बगदेश की विजय के लिये जाने वाला था परन्तु महारानी की राखी पाकर वह विजय अभियान छोड कर महारानी की रक्षा हेतु चितौड की ओर चल पडा। यद्यपि वह मुसलमान था परन्तु रक्षाबधन का महत्व उसके भी दिमाग मे था।

बधुओ! इस प्रकार रक्षाबधन के कतिपय प्रसगों को आपने सुना। परन्तु आज का मनुष्य क्या कर रहा है? वह रक्षा की कैसी भावना कर रहा है? आज तो तरीका ही बदल गया है। प्राय करके कुछ ब्राह्मण लोग राखी बाधने को आ जायेंगे और आप राखी बधा लेंगे। इसी प्रकार बहनो से भी राखी बधा लेंगे और कुछ दक्षिणा दे देंगे। आप इतने मात्र से ही कतव्य की इतिश्री समझ लेते हैं। परन्तु आपने कभी रक्षा की जिम्मेवारी भी महसूस की या नहीं? यदि इस रक्षा पव की भावना से इस ऐतिहासिक प्रसग को लिया जाए तो आज समाज की जो विचित्र दशा है। वह रुक सकती है।

बधुओ! जगत् के लिये सुखकारी और देवो को भी दुर्लभ इस सुन्दर मानव-जीवन में व्यक्ति केवल धागे तक ही सीमित नहीं रहे, परन्तु अपने कतव्य को सभाले। रक्षा-बधन के दिन अपने कतव्य पर ध्यान देना है कि किस किस की जिम्मेवारी ली गई है किस तरह से उसका पालन कर रहे हैं। जो ऐसा नही कर रहे हैं, वे इस रक्षा-बधन त्योहार को मनाने के अधिकारी नहीं हैं। भाई ने बहिन की जिम्मेवारी ली है तो वह उसकी रक्षा का ख्याल रखे। रक्षा-बधन कतव्य-पालन का बोध कराता है।

ऐसा भी रिवाज है कि कई व्यक्ति कांटा (तराजू) आदि पर भी रक्षा सूत्र बांधते हैं। इन पर राखी क्यो बांधते हैं? इसका

मेवाड़ की महारानी ने दिल्ली के मुगल बादशाह हुमायू के पास राखी भेजी। उस समय हुमायू बगदेश की विजय के लिये जाने वाला था परन्तु महारानी की राखी पाकर वह विजय अभियान छोड़ कर महारानी की रक्षा हेतु चितौड़ की ओर चल पड़ा। यद्यपि वह मुसलमान था परन्तु रक्षाबधन का महत्व उसके भी दिमाग मे था।

बधुओ! इस प्रकार रक्षाबधन के कतिपय प्रसगो को आपने सुना। परन्तु आज का मनुष्य क्या कर रहा है? वह रक्षा की कसी भावना कर रहा है? आज तो तरीका ही बदल गया है। प्राय करके कुछ ब्राह्मण लोग राखी बाधने को आ जायेंगे और आप राखी बधा लेंगे। इसी प्रकार बहनो से भी राखी बधा लेंगे और कुछ दक्षिणा दे देंगे। आप इतने मात्र से ही कतव्य की इतिश्री समझ लेते हैं। परन्तु आपने कभी रक्षा की जिम्मेवारी भी महसूस की या नहीं? यदि इस रक्षा पव की भावना से इस ऐतिहासिक प्रसग को लिया जाए तो आज समाज की जो विचित्र दशा है। वह रूक सकती है।

बधुओ! जगत् के लिये सुखकारी और देवो को भी दुर्लभ इस सुन्दर मानव जीवन मे व्यक्ति केवल धागे तक ही सीमित नही रहे, परन्तु अपने कतव्य को सभाले। रक्षा-बधन के दिन अपने कतव्य पर ध्यान देना है कि किस-किस की जिम्मेवारी ली गई है किस तरह से उसका पालन कर रहे हैं। जो ऐसा नही कर रहे हैं, वे इस रक्षा बधन त्यौहार को मनाने के अधिकारी नहीं हैं। भाई ने बहिन की जिम्मेवारी ली है तो वह उसकी रक्षा का खयाल रखे। रक्षा-बधन कतव्य पालन का बोध कराता है।

ऐसा भी रिवाज है कि कई व्यक्ति कांटा (तराजू) आदि पर भी रक्षा सूत्र बांधते हैं। इन पर राखी क्यों बांधते हैं? इसका

वारी है। उनकी क्या दशा है, किस तरह उनका जीवन चल रहा है? यह सब ध्यान मे रखना बहुत जरूरी है।

मैं आध्यात्मिक जीवन की रक्षा की बात कह रहा हू। परन्तु उसकी रक्षा तभी होगी, जबकि आपका नैतिक जीवन सुरक्षित होगा। यदि वह गिरता है तो फिर आध्यात्मिक जीवन की सुरक्षा कहाँ है? अत इस प्रसग मे कहना चाहता हू कि आप यदि आध्यात्मिक जीवन की सुरक्षा चाहते हैं तो नैतिकता मे दृढ़ रहें। अपनी हमदर्दी हर एक पडौसी और हर एक व्यक्ति के साथ रखिये। इस प्रकार रक्षा बधन के स्वरूप को समझ कर सबके कल्याण की रक्षा का काय करते हुए चलेंगे तो आध्यात्मिकता से आपका जीवन मगलमय होगा और विश्व मे सुख शाति का प्रचार होगा।

●

बीकानेर—
स० २०३०, श्रावण शुक्ला १५

वारी है। उनकी क्या दशा है, किस तरह उनका जीवन चल रहा है? यह सब ध्यान मे रखना बहुत जरूरी है।

मैं आध्यात्मिक जीवन की रक्षा की बात कह रहा हू। परन्तु उसकी रक्षा तभी होगी, जबकि आपका नैतिक जीवन सुरक्षित होगा। यदि वह गिरता है तो फिर आध्यात्मिक जीवन की सुरक्षा कहा है? अत इस प्रसग से कहना चाहता हू कि आप यदि आध्यात्मिक जीवन की सुरक्षा चाहते हैं तो नतिकता मे दृढ रहे। अपनी हमदर्दी हर एक पडोसी और हर एक व्यक्ति के साथ रखिये। इस प्रकार रक्षा बधन के स्वरूप को समझ कर सबके कल्याण की रक्षा का काय करते हुए चलेंगे तो आध्यात्मिकता से आपका जीवन मगलमय होगा और विश्व म सुख शाति का प्रचार होगा।

●

बीकानेर—
स० २०३०, श्रावण शुक्ला १५

चारी है। उनकी क्या दशा है, किस तरह उनका जीवन चल रहा है ? यह सब ध्यान मे रखना बहुत जरूरी है।

मैं आध्यात्मिक जीवन की रक्षा की बात कह रहा हू। परन्तु उसकी रक्षा तभी होगी, जबकि आपका नैतिक-जीवन सुरक्षित होगा। यदि वह गिरता है तो फिर आध्यात्मिक-जीवन की सुरक्षा कहा है ? अतः इस प्रसग से कहना चाहता हू कि आप यदि आध्यात्मिक जीवन की सुरक्षा चाहते हैं तो नतिकता मे दृढ़ रहें। अपनी हमदर्दी हर एक पडोसी और हर एक व्यक्ति के साथ रखिये। इस प्रकार रक्षा बधन के स्वरूप को समझ कर सबके कल्याण की रक्षा का काय करते हुए चलेंगे तो आध्यात्मिकता से आपका जीवन मगलमय होगा और विश्व मे सुख शाति का प्रचार होगा।

●

बीकानेर—
स० २०३०, श्रावण शुक्ला १५

नैतिकता–अनैतिकता

धार तलवारनी सोहली, दोहली चोदमा जिन तणी चरणसेवा ।

परमात्मा के चरणों मे प्राथना के माध्यम से जब आत्म-निवेदन करने का प्रसग आता है, उस समय भव्य आत्मा को अपनी शक्ति का भान होता है । साधक जब तक बाहर ही बाहर भटकता रहता है, तब तक उसे अदर की शक्ति का ज्ञान नहीं होता परन्तु जब वह अदर की तरफ देखता है तब जीवन में रही हुई कमजोरियो का उसे ज्ञान हो जाता है । वह परमात्मा को सम्मुख रख कर जब उच्चतम आदर्श का चिन्तन करता है तब सोचने लगता है कि मैं प्रभु की सेवा करने को तो तत्पर हो रहा हू पर तु मैं वह सेवा जितनी आसान समझता हूँ, वैसी नहीं है । यह बडी ही कठिन है । परमात्मा के चरणो की सेवा करना तलवार की धार पर चलने से भी कठिन है ।

अदर की जागृति मनुष्य को परमात्मा की ओर आकर्षित करती है । परन्तु जब तक जीवन में अन्य तत्त्वो का प्रवेश है, तब तक वह परमात्मा की सेवा मे लग नही सकता । यह अदर की विकृत वृत्तियों को हटाने की कोशिश करता है तो अपनी आंतरिक शक्तियो को दुबल पाकर सोचता है कि मैंने काफी समय तक अदर के जीवन को रोगग्रस्त रखा, विकारों को खुला प्रवेश दिया, जिससे मेरी अतरात्मा की शक्तिया कमजोर बन गई और इस कमजोरी के कारण ही परमात्मा की सेवा मुझे कठिन प्रतीत हो रही है । मैं प्रभु के चरणो में प्राथना के माध्यम से केवल शरीर से ही नही, परन्तु अपने अदर की दिव्य-शक्ति को जगाने के लिये परमात्मा को निमित्त बना कर उपस्थित होऊ ।

जब विवेक का दीपक प्रकाशित होता है, उस समय उठ कर आगे बढने की शक्ति का सचार हुए बिना नही रहता है। यद्यपि प्रभु को इन चम-चक्षुओ से देख नही सकते परन्तु आंतरिक चिन्तन से यदि उनके स्वरूप का अवलोकन किया जाय तो उनकी शक्तियां अनुभव होने लगती हैं। इसीलिये कवि ने सकेत किया है कि—

अनन्त जिनेश्वर नित नमु ... ।

अनत जिनेश्वर की अवस्था का मैं चिन्तन करता हूँ तो उनकी अद्भुत शक्ति का पता लगता है। उस अद्भुत शक्ति का दर्शन अतश्चेतना मे होता है। यदि व्यक्ति अपने मुह से उस शक्ति का कथन करना चाहे तो कर नही सकता है। मुह तो नाशवान पदार्थों को व्यक्त करने वाला आत्मा का एक साधन है। मुह से शब्द उच्चारण किये जा सकते हैं। वचन के माध्यम से ज्योति का कथन किया जा सकता है परन्तु उस अद्भुत ज्योति का वणन नहीं हो सकता है। शब्द स्वय पौद्गलिक रचना का एक तत्त्व है और शास्त्रीय परिभाषा से भाषा-वगणा के पुद्गलो को ग्रहण करके छोडता है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण भी इसी बात का सकेत देता है। जब इन्सान बोलता है तो उसके शब्दो का सिलसिला निरन्तर श्रोता के कर्णगोचर होता है और तभी वह उसके शब्दो को ग्रहण कर पाता है। इस प्रकार मुंह के माध्यम से शब्द रचना होती है।

जब आत्मिक शक्ति जन्म ग्रहण करके शरीर का विकास करती है। तब वह मुह के माध्यम से बोलती है। जो शक्ति शब्दो से अपने वचनों का विनिमय करती है, उसको वचनो से देखा नही जा सकता है और न उसका पूण रूपेण वणन किया जा सकता है। इसलिये कवि का सकेत है कि—

ना कहिये ना देखिए, जाके रूप न रेख।

परमात्मा की शक्ति आंखो से देखी नहीं जाती, यह तक से

समझी नही जाती और मति से पूरो ग्रहण नहीं कि जा सकती, क्योकि ये प्राय पाच इन्द्रियो और मन के माध्यम के तरीके हैं और वह शक्ति इन्द्रियो और मन के माध्यम से पर है। कहा भी है—

तक्का तत्थ न विज्जइ मति तत्थ न गाहिया।

तर्क का इस अद्भुत ज्योति मे प्रवेश नही है। वह तो एक अनुभूति है। तक सही भी होता है और गलत भी हो सकता है। तर्क का कोई विशेष प्रतिष्ठान नही होता है। तक के माध्यम से व्यक्ति वाद विवाद कर सकता है परन्तु वह आतरिक अनुभूति को प्रकट नही कर सकता है।

मति का भी वहां पर प्रवेश नहीं है। मति भी उस ज्योति को ग्रहण नही कर पाती है। इसका कारण यह है कि पाच इन्द्रियो और मन के सहारे जिस ज्ञान की उपलब्धि होती है, वह ज्ञान तो मतिज्ञान है। मतिज्ञान की शक्ति परावलवो होने से इस आत्मा के साक्षात् प्रकाश-पुज को ग्रहण नहीं कर पाती है। उसको ग्रहण करने के लिये आंतरिक साधना, चरित्रनिष्ठा और सांगोपांग जीवन का स्वरूप आवश्यक है। इनके बिना इस अनुभूति की अभिव्यक्ति नहीं होती है। मति का क्षेत्र सीमित है। जो सीमा के साथ है, वह असीम को पकड नही सकता है।

जैसी मति की स्थिति है। वसी ही दृष्टि की स्थिति है। ये नेत्र जिन अवयवो से बने हुए हैं, उनके साथ ही वे अपने सजातीय तत्त्वो को देखते हैं। वे परमात्मा की परम ज्योति को देख नही पाते हैं। उसके लिये तो उसके मुकाबले की ज्योति की आवश्यकता है। इसलिये कहा है-

ना कहिये ना देखिये, जाके रूप न रेख।

जिनके रूप, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श की योग्यता है, वे भी स्थूल रूप में हैं। बड़ा रूप है। तभी वह देखा जा सकता है और उसका कथन किया जा सकता है। परन्तु अनन्त जिनेश्वर भगवान् की जो परम अद्भुत ज्योति है, वह रूप,रस, गंध आदि से रहित है। उसके दर्शन इन चमचक्षुओं से नही होगे और न जिह्वा से उसका वर्णन होगा।

वह ज्योति अनुभव-साध्य है। उस ज्योति को प्रकट किये विना इन्सान अपनी शक्ति का जैसा चाहिये, वैसा उपयोग नहीं कर सकता है। यदि वह उस ज्योति को प्रकट कर लेता है तो मानव तन में रहता हुआ दिव्य-पुरुष के रूप मे ससार के समक्ष अपनी शक्तियो को रख सकता है। उस दिव्य शक्ति के प्रकटीकरण के लिये ही कहा गया है कि—

णाणस्स सव्वस्स पगासणाए, अण्णाणमोहस्स विवज्जणाए।
रागस्स दोसस्स य सखएण, एगतसोक्ख समुवेइ मोक्ख ॥
(उत्तरा० सूत्र, अध्य ,३२, गाथा २)

मानव यदि उस शक्ति के दर्शन करना चाहता है तो ज्ञान के नाम से जिस तत्त्व का बोध होता है, जिस तत्त्व को पहिचाना जाता है उसको प्रगट करे। यदि समग्र ज्ञान हो जाये तो वह उस परम ज्योति के, अद्भुत ज्योति के दर्शन कर पायेगा। इसीलिये साधक उस परम ज्ञान को प्रगट करने के लिये और अज्ञान तथा मोह को मिटाने के लिये प्रभु की प्रार्थना करता है। उस चरण सेवा की कठिनता को देख कर वह हतोत्साह होकर अपने आप में चिन्तन करता है कि यह सेवा तो तलवार की धार से भी कठिन है। फिर भी हतोत्साहित होने की आवश्यकता नहीं है। उसको साधने के लिये यदि प्रमुख रूप से मानव अपने विकास के

सिलसिले को जारी रखे तो अवश्य ही वह उस शक्ति के निकट पहुँच सकता है।

इसके लिये शरीर ही माध्यम है। शरीर तो देवो के भी है, पशुओ के भी है और नरक के जीवो के भी है। परन्तु ये शरीर इस परम ज्योति को प्राप्त करने में समर्थ नही है। मनुष्य का शरीर ही एक ऐसा विशिष्ट शरीर है कि जिसमे आत्मा की अद्भुत ज्योति जगाई जा सकती है। शरीर की प्रक्रिया मे इन्सान रात और दिन अपना समय लगा रहा है। परन्तु वह समझ नही पा रहा है कि मेरे शरीर की ये प्रक्रियायें शुभ हैं या अशुभ हैं, ये उस परम प्रकाश की ओर चल रही हैं या अधकार की ओर जा रही हैं। मेरे द्वारा प्रकाश को पाने के लिये प्रयत्न किया जा रहा है या अधकार को एकत्रित करने के लिये चेष्टा हो रही है।

यदि चिन्तन सही हो तो जीवन की समस्त प्रक्रियायें बदल सकती हैं। फिर शरीर का निर्वाह करने के लिये भोजन भी दिया जाये तो उस भोजन को भी माध्यम मान लें कि इस भोजन को मैं शरीर मे पहुँचा कर इसके रस से शरीर की पुष्टि के साथ साथ अन्दर की ज्योति की पुष्टि करू। इस भावना का सचार यदि मानव के मस्तिष्क मे हो जाये तो वह भोजन के विपय मे भी सावधान रहेगा। वह इस दृष्टि से चलेगा कि—

"आहारमिच्छे मियमेसणिज्ज" (उत्तरा अध्य ३२ गाथा ४)

आप आहार की भी गवेपणा करें। भोजन ग्रहण करें परन्तु वह मित और एपणीय हो। मित का तात्पर्य यह है कि शरीर के लिये जितना आवश्यक है, उतना ही हो। एपणीय का मतलब है कि वह भोजन शुद्ध प्रक्रिया से बना हुआ हो। शुद्ध प्रक्रिया का तात्पर्य दो तरह से लिया जाता है—एक तो रसोई बनाते समय

बनाने वाला विधि के साथ भोजन बनाये भौर, दूसरा यह कि भोजन किस रीति-नीति से प्राप्त किया गया है। अर्थात् भोजन नीति का है या ग्रनिति का है। वह किसी के दिल को चोट पहुँचा कर, दिल को निचोड कर प्राप्त किया गया है अथवा उसके मन भौर मस्तिष्क को सात्वना देते हुए प्राप्त किया गया है। भोजन जुटाने की विधि नैतिक ग्रौर ग्रनतिक दोनो प्रकार की हो सकती है। जिसने नैतिक घरातल के साथ ग्राजीविका का उपाजन किया है ग्रौर मनुष्य के दिल को सुख पहुँचाते हुए उसे ग्रपनाया है तो उस इन्सान का भोजन लेना एषणीय है। यदि किसी ने अनीतिपूर्वक काय किया है ग्रौर ग्रनीति के माध्यम से भोजन तैयार हुग्रा है तो उसको ग्रहण करने वाले मनुष्य के विचारों मे परिवर्तन ग्राये बिना नहीं रहेगा। भले ही वह व्यक्ति गृहस्थ मे रहने वाला हो या साधु जीवन में रहने वाला हो। हा, यह अवश्य है कि साधु जीवन की भाजन ग्रहण करने की एषणीय नीति शास्त्रानुसार गृहस्थ की नाति से भिन्न है ग्रौर गृहस्थ की नीति सामाजिक नीति ग्रादि के ऊपर ग्राधारित है।

भोजन का ग्रसर विचारो की स्थिति के साथ है। विचारों के परिवतन में भोजन निमित्त बनता है। एक व्यक्ति सात्विक भोजन करके साधना मे बैठता है ग्रौर ज्योति को विकसित करने का प्रयत्न करता है तो वह उस साधना मे जल्दी सफल होता है। इसके विपरीत एक व्यक्ति ग्रशुद्ध भोजन करके, तामसी भोजन का सेवन करके साधना मे बैठेगा तो वह साधना में पूरा सफलीभूत नही होगा। राजसी भोजन करने वाला व्यक्ति भी ग्रन्तर्ज्योति की ग्रोर मुडने में कठिनाई का ग्रनुभव करेगा। सात्विक भोजन के साथ साधना का सम्बन्ध जुडा हुग्रा है। परन्तु सात्विक भोजन भी नीति के द्वारा उपार्जित किया हुग्रा होना चाहिये।

नीति और अनीति की परिभाषा अलग अलग क्षेत्रों मे अलग अलग तरीके की है । सात्विक भोजन की परिभाषा भी सिर्फ अमुक तरह का भोजन ही नही है, वनस्पति का रस ही नही है, वनस्पति का आहार ही नही है । वनस्पति के आहार मे भी विवेक की आवश्यकता है और उससे भिन्न अभक्ष्य पदार्थ तो सर्वथा त्यागने योग्य हैं । जो भक्ष्य पदार्थ खाने योग्य हैं, उनमें भी परिमितता हो । आवश्यकता के अनुसार ही उनका ग्रहण हो तो वे सात्विक हैं । यदि अनावश्यक भोजन लिया जाता है तो वह तामसिक बन सकता है । आप चाहे फलो का रस ही समझिये । यह अत्यन्त सात्विक भोजनो की श्रेणी मे माना जाता है । परन्तु वह भी यदि सीमा से अधिक ग्रहण कर लिया गया तो वह तामस मे परिणत हो सकता है । इसलिये सात्विकता की परिभाषा मित-सीमित आहार से है और सीमित आहार के पीछे भी नीति तथा अनीति का प्रश्न जुड़ा हुआ है । इन दोनो प्रश्नों की स्थिति से यदि साधक अपने शरीर की प्रक्रियाओ को चलाये तो वह इस मानव तन मे अन्तर्ज्योति की उपलब्धि कर सकता है, वह प्रभु की अनन्त सेवा की साधना साध सकता है । परन्तु जरा सी भी गफलत हुई और मानव के मन में भोजन के प्रति कुछ भी आसक्ति आ गई तो फिर उसमे गिरावट आना सभव है ।

एक साधक सात्विक, मित और एषणीय भोजन के साथ साधना में तन्मय होकर चला । उसने साधना को शक्ति से अपने जीवन में ज्योति के कुछ दर्शन भी किये । वह नियत समय पर उसकी आराधना करने लगा और उसे आंतरिक ज्योति की अनुभूति भी होने लगी । उसके लिये यह परम आनंद का विषय था । साधना मे चलने वाले साधक के मन में तुष्टि जल्दी आ जाती है, परन्तु वह लापरवाह भी जल्दी ही बन जाता है । उस साधक ने

यत्किचित् ज्योति के दर्शन करके मन मे सोच लिया कि मैं तो सब कुछ हो गया। वह लापरवाही के साथ चला और भिक्षा के लिये एक गृहस्थ के यहा पहुँचा। वहा भोजन की सामग्री पर उसकी दृष्टि गई। कुछ मिष्ठान्न भोजन था। साधक के दिल की लालसा आसक्ति के साथ बढ़ी और उसने वहां से वह भोजन ग्रहण कर लिया। भोजन वहराने वाले की भावना मे मलिनता चल रही थी और ग्रहण करने वाले साधक के मन मे लालसा और आसक्ति की भावना काम कर रही थी। एक इन्सान की भावना का असर दूसरे इन्सान की भावना पर होता है। पदार्थ तो बीच मे निमित्त बनता है। बहराने वाले के मन में अनीति का सचार था। अनीति के वायुमण्डल में रहते हुए उसने मीठे पदार्थ दिये। उन पदार्थों के निमित्त से उसकी भावना का असर साधक पर हुआ। साधक अपने स्थान पर भोजन लेकर पहुँचा और उसने आसक्ति के साथ भोजन कर लिया।

नियत समय पर वह साधक साधना के लिये बैठा और अपनी अन्य प्रक्रियाओं को करता हुआ उस परम ज्योति के दर्शन के लिये लालायित होने लगा। परन्तु अनेक प्रयत्न करने पर भी ज्योति की अनुभूति नहीं हो रही थी। पूरी चेष्टा करने पर भी उसके अनुभव मे ज्योति तो नहीं आई, परन्तु एक रोती हुई कन्या दिखलाई दी। साधक हैरान हो गया। उसने सोचा कि मेरी कमाई आज नष्ट हो गई। मैं मस्तिष्क से जो चिन्तन कर रहा हू और इन चिन्तन के क्षणो मे जिस अनुभूति मे पहुँचना चाह रहा हू, वह अनुभूति आज गायब हो गई। अरे! यह रोती हुई कन्या कौन है? साधक बडा दु खी हुआ और गुरु के समीप पहुचा। उसने गुरुदेव से निवेदन किया—भगवन्! इतने समय की साधना आज मिट्टी मे मिल गई। मैं जिस ज्योति की अनुभूति करना

चाहता था, वह तो लुप्त हो गई और उसके बदले में रोती हुई एक कन्या सामने आ गई।

गुरुदेव विचक्षण थे। उन्होंने मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अनुसधान किया और शिष्य से पूछा, "आज तुमने जो भोजन किया, उसमे कौन से पदार्थ थे?" शिष्य ने कहा, "गुरुदेव! आपके समक्ष रख कर ही तो मैंने भोजन किया था।" गुरुदेव ने पूछा, "ठीक है, परन्तु वे गोलिये लड्डू कहां से लाया?" शिष्य ने कहा, "अमुक गृहस्थ के यहां से लाया था।" गुरु ने फिर पूछा, "तुमने भोजन ग्रहण करने की विधि का ध्यान रखा या नही? साधु जीवन की नीति के अनुसार भोजन ग्रहण किया या साधु नीति को छोडकर?"

साधक ने सच्चे दिल से कहा, "गुरुदेव! मेरा मन साधु-जीवन मे आहार ग्रहण करने की नीति के विपरीत चला गया। मैं लालच में आ गया, मेरी आसक्ति बढ गई। इस दृष्टि से मैंने भोजन ग्रहण किया।" गुरु ने कहा—तुम्हारी भोजन ग्रहण करने की नीति में अन्तर आ गया इसलिये तुम्हारी इस ज्योति को विलुप्त करने का कारण वह भोजन बना और तुम्हारे जीवन में अनीति आ गई। यह भाजन अनीति से ग्रहण किया हुआ है।"

गुरुदेव का चिन्तन चला कि गृहस्थ के यहां भोजन नीति से बना था या अनीति से, इसका भी अनुसधान करना चाहिए। एतदर्थ सम्बन्धित व्यक्तियो स जानकारी की तो मालूम हुआ कि पडौस मे एक कन्या का विवाह हुआ था। वह कन्या अत्यन्त दु खी होकर ससुराल गई। महात्मा ने पूछा कि ऐसा क्या हुआ? पडौसी ने कहा कि क्या बताऊ, वह गरीव परिवार था। कन्या का जन्म उस गरीब घर में हुआ और समय पर विवाह करने योग्य हो गई तो पिता ने उसका विवाह किसी योग्य वर के साथ करने के लिये सोचा परन्तु जहां कही भी वह गया, योग्य लडके वाले तैयार नहीं

हुए। वे तो उसकी तरफ न देख कर सिर्फ यही पूछते कि तुम क्या दोगे ? परन्तु पिता के पास कन्या के अलावा देने को था ही क्या ?

कन्या के पिता ने सोचा कि पुत्री का विवाह किया जायेगा तो पडौसियों, सगे-सम्बन्धियों और गाव वालो को भी जिमाना पड़ेगा। यदि उन्हें नहीं जिमाया गया तो वे लोग जिन्दगी भर ताना मारते रहेंगे कि एक ही विवाह किया और उसमे भी हमारा तो मुंह तक मीठा नहीं कराया। इस विचार से वह गहस्थ दुखी था। आखिर उसने एक वृद्ध व्यक्ति को ढूढ़ा। वह वृद्ध दूसरी शादी करना चाहता था। कोई कन्या उसके लिये मिल नही रही थी। वृद्ध ने सोचा कि पैसा देकर इस कन्या के साथ शादी कर लू। इधर बेचारा गरीब पिता दुखी था और उधर वृद्ध को पत्नी चाहिये थी।

उस वृद्ध सेठ ने इस गरीब को अच्छी रकम दी। वह भी सोचने लगा कि इस धन से मैं सब न्यात वालों को भलीभांति जिमा दूगा। इस दृष्टि से उसने अपनी पुत्री का विवाह वृद्ध सेठ के साथ कर दिया। उस साठ वर्ष के वृद्ध के साथ उसकी पोती की उम्र की लडकी विवाहिता होकर गई। उस समय उसका कलेजा कितना टूटा हुआ था और वह कितनी दुखी हो रही थी, इसका अनुमान भी नही किया जा सकता। उसका रोना, विलाप करना आसपास रहने वाले व्यक्तियों को भी सहन नहीं हो रहा था। परन्तु सम्बन्धी जी के व्यक्ति इकट्ठे होकर लड्डू खा गये और वह रोती रही सो रोती रही।

जब पडौसी ने ऐसी स्थिति का वर्णन किया तो महात्मा को स्पष्ट हो गया कि गृहस्थ के यहां जो भोजन का प्रसग बना, वह भी अनीति से परिपूर्ण था। यह अत्यधिक अनीति का भोजन

था। इस प्रकार से समाज के ऊपर भारभूत रीति रिवाज जहा प्रचलित हैं तो उस समाज की कमर टूटे बिना नही रह सकती।

पुराने समय मे तो मृत्यु भोज की भी प्रथा थी। मृत्यु-भोज कराने वाले व्यक्ति समाज के पच होते थे, विवाह शादी के प्रसंग पर भी जबरदस्ती भोजन बनवा कर जीमने वाले ये पच ही होते थे। मैंने मेवाड मे सुना है कि कभी-कभी कुछ ऐसी तुच्छ प्रकृति के पच भी होते थे कि जिनको पिता की मृत्यु पर यदि कोई गरीब आदमी नहीं जिमा सका तो वे वाणी के ऐसे तीर छोडते थे कि कुछ मत पूछिये। वे कहते, "क्या ऊपर होकर बातें करते हो ? तुम्हारे बाप तो अभी तक 'राखोडे' मे लोट रहे हैं। ऐसा सुन कर उस गरीब के कलेजे पर वज्रपात होता और वह अपना घर बेच कर भी उन पचो एव नाते रिश्तेदारो को भोजन करवा देता था।

इसी अनीति को मिटाने के लिये सतो ने उपदेश दिया है कि कम-से कम ऐसे जीमने का तो त्याग करो। इसी प्रकार कन्या या वर का पैसा लेकर उससे जो भोजन बनाया जाता है तो वह भोजन भी अनीति का कहा जा सकता है।

नीति और अनीति किसके साथ 'फिट' बठती हैं ? समाज में कई वर्ग हैं। किसको नीति का वग कहा जाये और किसको अनीति का वग कहा जाये ? इसका चिन्तन करेंगे तो अलग अलग वग सामने आयेंगे।

समाज मे चल रही कुरीतियो के कारण गरीबो को आर्त और रौद्र ध्यान मे डाल कर जो भोजन तयार किया जाता है, वह अनीति का भोजन है। एक व्यापारी व्यापार करता है। वह व्यापार मे नीति को छोड कर अनीति का अवलबन लेता है और उस कमाई से जो भोजन बनता है तो वह भी अनीति का भोजन

कहा जा सकता है। ऐसा इसलिये है कि उसमे उसकी बुरी भावना जुड रही है। यद्यपि भोजन तो पदार्थ है, वह स्वयं नीति अथवा अनीति नही होता है। इसी प्रकार पैसा भी नीति अनीति नहीं है। यह तो नीति अनीति का निमित्त बनता है। जो व्यापारी मलिन भाव से पैसा कमाता है, उसका भोजन भी अनीति का तामसी भोजन कहा जा सकता है। दूसरे आदमियो को सता कर जो भोजन तैयार होता है, वह भी अनीति का है।

सरकार के खजाने मे जो संपत्ति आती है, वह भी नीति अनीति रूप हो सकती है। यदि जनता के कल्याण का ध्यान नहीं रख कर बेशुमार पैसा इकट्ठा किया जाता है तो सरकार का वह पैसा भी अनीति का है। जो कर्मचारी अनीति के तरीके से पैसा ग्रहण कर रहे हैं, वह पैसा भी अनीति का है। फिर वे उससे भोजन तैयार करते हैं तो अनीति के भोजन का प्रसंग बनता है। सरकार अनीति से पैसों को इकट्ठा कर के यदि किसी नौकरी करने वाले को वेतन देती है, परन्तु वह सरकारी कर्मचारी मेहनत करके पैसा ले रहा है, ईमानदारी के साथ मजदूरी कर रहा है, जितना पैसा नियत किया गया है उसके अनुरूप अपना समय लगा रहा है तो उसके ग्रहण करने के पश्चात् वह पैसा नैतिकता का हो जायेगा। एक डॉक्टर है जो किसी के यहा से फिस ले रहा है। यदि वह डॉक्टर ईमानदारी से फीस ले रहा है तो वह फीस नैतिकता की है, भले ही उसका पैसा अनीति से इकट्ठा किया हुआ हो।

इसी प्रकार अन्य व्यवसायो के लिये भी समझ लें। एक अध्यापक है और नौकरी कर रहा है। यदि वह सिर्फ पैसे के लालच से ही नौकरी नहीं करता है परन्तु समाज के निर्माण के लिये सेवा की भावना रख कर नौकरी कर रहा है और उसके अनुरूप तनख्वाह ले रहा है तो वह भी नैतिकता की हो जायेगी। इस प्रकार

अध्यापक, डॉक्टर या सरकारी कर्मचारी वगैरह का पैसा यदि उनके पास ईमानदारी से आता है तो वह नैतिकता में परिवर्तित हो जाता है।

साधु जीवन का भी ऐसा ही प्रसग है। साधु यदि अपनी नीति के साथ चलता है, वह अपने समग्र जीवन को स्व कल्याण और समाज कल्याण के लिये अर्पण करके चलता है, आवश्यकता से अधिक भोजन ग्रहण नही करता है, कल के लिये सग्रह नही करता है परन्तु जीवन-निर्वाह के लिये ही वह गृहस्थ के यहा से भोजन ग्रहण करता है और साधु के लिये बताये गये ४२ दोषो को टाल कर भोजन ग्रहण करता है वो गृहस्थ के यहा भले ही वह भोजन अनैतिकता का हो परन्तु साधु के लिये वह नैतिकता का भोजन हो जायेगा। जैसे सेठ के यहां अनैतिकता का पैसा था परन्तु डॉक्टर ने नैतिकता से फीस ली तो वह नैतिकता का पसा हो गया। उसी नियम के अनुसार चल कर यदि साधु भिक्षा ले रहा है और भिक्षा लेते हुए यदि उसकी पदार्थ के प्रति आसक्ति नहीं बधती है और लोभ मे आकर वह अधिक भोजन नहीं लेता है तो वह भोजन नैतिक हो जाता है। इसके विपरीत यदि उस साधु के भोजन में लालसा रहती है तो उसका मानस विगडे विना नही रहेगा। इस प्रकार नैतिक और अनैतिक स्थिति के लिये हर क्षेत्र में सावधानी की आवश्यकता है।

मैं कह रहा था कि साधना की ज्योति की तरफ साधु का ध्यान जा रहा था तो वह क्यो विगडा ? गोलिये लड्डू देख कर उस साधु का मन आकर्षित हो गया और उसने आसक्त होकर भोजन ग्रहण किया। उसने साधु जीवन की नीति का छोड कर भोजन लिया। अत यह अनैतिकता का भोजन हो गया। जिस समय उसने भोजन ग्रहण किया तो उसकी भावना आसक्ति के

साथ चल रही थी। इस कारण उसके मन में विकृति आई। उस कन्या की स्थिति उस परिवार से युक्त थी और परिवार के सदस्य, जो उसे आनन्द देने वाले थे, वे ही समाज की कुरीतियों के कारण अपनी ईमानदारी को न रख सके और उन्हें पैसे के लिये दीवाना बनना पड़ा तो वह भावना साधु की स्थिति के साथ भी जुड़ गई। भावना का भावना के ऊपर असर होता है। अत साधु की साधना मे वह रोती हुई कन्या आई। इसका मतलब है कि गृहस्थ के मन मे जो रोती हुई कन्या का नक्शा था, उसका असर साधु के मन पर भी पड़ गया।

आप मलिन भावना से किसी के समीप आकर खड़े रहें। सामने वाले व्यक्ति का मन पवित्र है तो मलिन मन वाले व्यक्ति पर स्वच्छ व्यक्ति की भावना का असर पड़े बिना नहीं रहेगा। काला पदार्थ दपण के सामने आये तो उसकी छाया दपण मे पड़े बिना नहीं रहेगी। उसी प्रकार स्वच्छ दिल का असर मलिन भावना वाले आदमी के ऊपर पड़े बिना नहीं रहेगा। भिक्षा ग्रहण करते समय उस साधु ने वह प्रतिबिंब अपने मन मे ले लिया था। उसने कुरीति का भोजन ग्रहण किया। फिर वह साधना करने बैठा तो रोती हुई कन्या उसके सामने आई।

इसका विश्लेषण गुरू ने किया, "भाई, यह जो तुम्हारी साधना बिगड़ी है, तुम्हारी ज्योति विलुप्त हुई है, उसमे निमित्त वह भोजन बना है। तुम्हारी भावना बिगड़ी तो तुम स्वय अनैतिकता के धरातल पर पहुँच गये। तुम सच-सच कहो, क्या लड्डू ग्रहण करते समय तुमने साधु वृत्ति का ध्यान रखा या आसक्तिपूर्वक भोजन ग्रहण करने की भावना बनाई थी ?"

शिष्य ने सरलता से निवेदन किया—"गुरुवर ! सही बात

यह है कि उन लड्डुओ पर मेरा मन चल गया और मैंने साधुओ के नियमो का ध्यान न रखते हुए भोजन ग्रहण किया । उस बाई की बात सुन कर मेरे मन मे विचार जरूर पैदा हुआ परन्तु मै लालसा से भोजन लेकर चला आया ।"

गुरुदेव ने कहा, "याद रखो, अन्दर की ज्योति को सदा-सदा कायम रखना चाहते हो तो अपने दिल मे अनैतिकता का प्रवेश मत होने दो । साधु जीवन की दिनचर्या को व्यवस्थित रखो । गृहस्थ के यहा पहुँचो तो स्थिति का अवलोकन करो । अपनी विधि के साथ भोजन लाओगे तो तुम्हारी साधना कायम रहेगी और यदि अनीति से लाओगे तो वह अवश्य ही नष्ट हो जायेगी ।

शिष्य ने उसी वक्त सकल्प किया कि आइन्दा ऐसा कभी नही करूगा और पूरी विधि के साथ रहूंगा । साथ ही उसने पूछा कि गई हुई ज्योति वापिस मिलने का क्या उपाय है ? गुरुदेव ने कहा, "इसका उपाय यही है कि तुम तीन दिन तक तप करो । तुम्हारे पेट में उस भोजन का अश है, अत जीवन को मांजने के लिये प्रायश्चित स्वरूप तुम इस प्रकार साधना मे बैठो कि तुम्हारी बुद्धि के साथ ही तुम्हारे पेट की पाचन क्रिया भी साफ हो जाये । तुम्हारे पेट मे जो तामसिक वृत्ति का आहार गया है, उसकी सफाई होगी तभी वह ज्योति पुन जागृत हो सकेगी ।

गुरुदेव की आज्ञा पाकर उस शिष्य ने ऐसा ही किया । तीन दिन के पश्चात् उसे अद्भुत ज्योति के दर्शन हुए और वह पुनः उल्लास से प्रफुल्लित हो गया ।

अन्तर्ज्योति की साधना का यह प्रसग ध्यान में रखने योग्य है । नैतिकता का विषय तलवार की धार से भी कठिन है ।

इसके लिये सोचता हू तो इसी निष्कर्ष पर पहुँचता हू कि जीवन मे समतादर्शन की नितांत आवश्यकता है। यह तथ्य बुजुर्गों, तरुणो, बच्चो और बहिनो के मस्तिष्क मे आये। सबका ध्यान इस तरफ केन्द्रित हो। सब अपने जीवन का निर्माण करने की कला सीखें। सभी अनैतिक जीवन से छुटकारा पाकर साधना में तन्मय हो यदि साधक इस प्रकार का सुधार करने में लग गये तो तलवार की धार-सा कठिन माग भी सरल हो जायेगा।

●

बीकानेर—

स० २०३०, श्रावण शुक्ला १४

आध्यात्मिक भूमिका

"श्री श्रेयांस जिन अन्तरजामी आतमरामी नामी रे ।
अध्यातम जे वस्तु विचारी, बीजा बधा लबासी रे ।
वस्तुगते जे वस्तु प्रकाशे 'आनन्दघन' मत वासी रे ।।"

श्रेयास परमात्मा की प्रार्थना की पक्तियो मे से जिन पक्तियों का विश्लेषण किया जा चुका है, उनको छोड कर यहां अतिम पक्ति का मुख्य तौर पर उच्चारण किया गया है और पूर्व की आध्यात्मिक भूमिका के साथ जीवन के लक्ष्य के विषय में किये गये सकेत को आधार मानने वालो को आत्मा के सम्बन्ध मे कुछ कहा जा रहा है ।

अध्यात्मी व्यक्ति कौन है ? विभिन्न तरीको से नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव की दृष्टि से आध्यात्मिक जीवन का विश्लेषण स्पष्ट कर दिया गया है । भावात्मक स्थिति के साथ चार निक्षेपो को जोडते हुए इस पक्ति मे कहा गया है कि अध्यात्मी वही है, जो वस्तु विचार को अर्थात् इस विराट् विश्व मे जो अनेक वस्तुयें दृष्टिगत हो रही हैं, उन अनेक पदार्थों को ज्ञेयदृष्टि से जान लेवे और उनका ज्ञान होने के बाद यह चिन्तन करे कि कौन सी वस्तुयें ग्रहण करने योग्य हैं और कौन सी छोडने योग्य । हेय और ग्रहण-वृत्ति अर्थात् कुछ छोडने और ग्रहण करने की भावना तभी पैदा होगी जब हम वस्तु-स्वरूप के ज्ञान को प्राप्त करेंगे । वस्तुयें तो बनती हैं और बिगडती हैं तथा कुछ समय तक टिक कर विलीन भी हो जाती हैं । यहां उन वस्तुओ का मुख्य विचार नहीं है । यहा तो मुख्य विचार उस वस्तु का है जो कभी

विलीन नही होती, सदा के लिए जिसका अखण्डित रूप है और जिसके लिए कहा गया है कि—

> नैन छिन्दन्ति शस्त्राणि नैन दहति पावक ।
> न चैन क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुत ॥
>
> —गीता, अ० २, श्लोक २३

अर्थात्—शस्त्र जिसका छेदन नही कर सके, अग्नि जला नही सके, पानी गला नहीं सके और हवा उडा नही सके परम पवित्र तत्त्व का आध्यात्मिक दृष्टि से यदि चिन्तन किया गया और प्रत्येक क्षेत्र मे उसी का लक्ष्य रखा गया तो ऐसा करने वाला व्यक्ति आध्यात्मिक पुरुष है।

इस लक्ष्य को सामने रख कर यदि कोई व्यक्ति व्यापार भी कर रहा है तो उसका वह व्यापार नतिकता के धरातल पर होगा। वह सोचेगा कि मेरे जीवन का लक्ष्य तो आध्यात्मिक दृष्टिकोण का है। मुझे अमर तत्त्व पाना है। उसकी उपलब्धि जिन साधनों से हो सके, वे ही साधन मुझे अपनाने हैं। मैं पूण साधना मे जुट नहीं पा रहा हू। मैं इस गृहस्थ अवस्था में रहता हुआ आध्यात्मिक लक्ष्य की साधना करना चाहता हू। गृहस्थ अवस्था का अवलम्बन अथ दृष्टि पर निभर है और अथ-दृष्टि को सपादित करने के लिए व्यापार करना पड रहा है। इस व्यापार के माध्यम से अथ-सिद्धि होती है परन्तु अथ मेरा लक्ष्य नहीं है। अथ तो मात्र साधन है। मेरा साध्य तो आध्यात्मिक जीवन है। इस साधना को जहा तक हो सके, मैं पवित्र रख पाऊ तो उत्तम है। यदि यहां मैं ईमानदारी छोडकर अनैतिक जीवन के साथ अर्थोपार्जन करूगा तो इस अनीति का दुष्परिणाम मेरी आत्मा को भोगना पडेगा और मैं अपने उस शुद्ध लक्ष्य से गिर जाऊगा। इसके साथ ही साथ यदि

मैंने अर्थ का बहुत उपार्जन कर लिया तो भी मैं इसे स्थायी रूप से पकड़ कर नहीं रख पाऊंगा। यह तो कपूर की तरह उड़ने वाला तत्त्व है। इसको इन्सान अपनी मुट्ठी मे कितना ही बंद करके रखे परन्तु वह उड़े बिना नही रहेगा। जैसा इस कपूर का स्वभाव है, वैसा ही इस द्रव्य संपत्ति का स्वरूप है। अतः मुझे आत्मशुद्धि का लक्ष्य बना कर अपने जीवन को नैतिकता के साथ बिताना चाहिए। ऐसा करने से स्पष्ट ही दुहरा फायदा होगा। एक तो मेरी आत्मा मलिन नही बनेगी और दूसरे पूर्व-संचित मलिनता भी हल्की होगी। जिस अर्थ को मैंने संचित किया, उसमे यदि मैं यथायोग्य, यथाप्रकार समवितरण की आस्था रख कर चलूंगा तो इन पदार्थो पर ममत्व भाव कम होगा। उसका कम होना आत्मशुद्धि प्राप्त करना है। इन पदार्थों मे जो कुछ भी ममत्व-भाव है, वह आत्मा की अशुद्धि कही जा सकती है। इससे आत्मा दबती चली जाती है। इस अवस्था मे आध्यात्मिक वस्तु का चिंतन नही हो पाता है। इसलिए आध्यात्मिक लक्ष्य को स्थिर करने की दृष्टि से और उसके साधन जुटाने के लिए गृहस्थ-अवस्था मे यदि मुझे व्यापार भी करना पड़े तो मैं शक्ति-भर ईमानदारी को सामने रखूंगा। कदाचित् इस अर्थ के लिए नौकरी करनी पड़े तो जिस पद पर मैं पहुचूं, उस पद पर रहता हुआ भी इस शुद्ध लक्ष्य को विस्मरण नही करूंगा। सदा उसको सामने रखकर चलूंगा तो मैं इस लोक मे ईमानदार व्यक्ति साबित होऊंगा और परलोक हेतु भी मेरी कुछ आध्यात्मिक भूमिका बन सकेगी।

इस प्रकार गृहस्थ अवस्था में रहते हुए, जितने विषय हैं, उनके अन्दर प्रवृत्त होते हुए भी जो व्यक्ति आध्यात्मिक चिन्तन करता रहगा, वह आध्यात्मिक कहला सकता है। यदि कोई व्यक्ति

आध्यात्मिक लक्ष्य को भूल कर इन नाशवान तत्त्वों पर मोह रखता हुआ प्रवृत्ति करता है तो वह आध्यात्मिक नही कहला सकता, भले ही वह मुह से रट लगाता रहे, अखबार और पुस्तकों मे विज्ञापन करता रहे कि मैं अध्यात्मी हू, मैं अध्यात्मी हू । परन्तु ज्ञानी जन कहते हैं कि वह अध्यात्मी नहीं है । कवि आनन्दघनजी की भाषा मे वह 'लबासी' है । इसका मतलब है कि वह आध्यात्मिक जीवन की बकवास करने वाला है । उसको आध्यात्मिक नही कह सकते हैं क्योंकि उसने आध्यात्मिक लक्ष्य का छोड कर ससार के पदार्थों को लक्ष्य बना लिया है । इसलिए वह आध्यात्मिक कहलाने का अधिकारी नही है ।

ऐसे व्यक्ति आध्यात्मिक जीवन की विडम्बना करने वाले हैं । वे न तो स्वय के लक्ष्य को और न दूसरो के ही लक्ष्य को स्थिर कर पाते हैं । कविता की समाप्ति के साथ सकेत दिया गया है कि—

वस्तुगते जे वस्तु प्रकाशे, आनदघन मत-वासी रे ।

जो वस्तु स्वरूप को ठीक तरह से समझ कर उसका प्रकाशन करता है और जसा प्रकट करता है वैसा यथाशक्ति जीवन मे भी निरन्तर उतारता हुआ चलता रहता है, वह 'आनदघन मत-वासी' है ।

'आनन्दघन' शब्द सज्ञावाची है और साथ ही व्युत्पत्ति अथक भी है । सज्ञावाची तो इस कारण कि आनन्दघन कवि का नाम है और व्युत्पति की दृष्टि से आनन्दघन का तात्पर्य सिद्ध परमात्मा है । आत्मा के आनन्द को उन्होंने ज्ञानरूप से आत्मा में सगृहीत कर लिया है ।

एक सज्ञा तटस्थ दृष्टि से दी जाती है—लोहे को कूटने वाले

एक पिंड को भी घन की सज्ञा प्राप्त है। कितनी ही चोटें लगाई जायें, परन्तु लोहा कूटा जाएगा और घन मजबूत रहेगा। इसी प्रकार जिन आत्माओ ने अपने आध्यात्मिक जीवन का पूर्ण आनन्द प्राप्त कर लिया है, उन पर आपत्तियो के कितने ही घन क्यो न पडे, सकट के कितने ही झझावात उनको झकझोरने के लिये क्यो न आ जायें, फिर भी उनमे तीन काल मे भी दु ख का प्रवेश नही हो पाता। इस प्रकार का आनन्द समूह जिस आत्मा को प्राप्त हो, वह चरम सीमा पर पहुचने के साथ सदा के लिये आनन्दघन में निवास करने वाली बन जाती है।

इस लक्ष्य के साथ जो साधक वस्तु-स्वरूप का चिंतन करके चल रहा है, वह अपनी शक्ति को परिपूर्ण रूप से प्राप्त कर सकता है। इसी उद्देश्य से वीतरागदेव ने जो कुछ भी स्वरूप प्रतिपादित किया है, उसमे समग्र ससार की वस्तुओ को दो रूपो मे विभक्त कर दिया है—एक जड और दूसरा चेतन। जड की उपस्थिति के साथ चेतन की जो पर्यायें बनी, वे अलग-अलग संज्ञायें जीव, अजीव आदि नव तत्त्वो के रूप मे आ गई। उन नव तत्त्वों का यदि भलीभांति विज्ञान कर लिया जाए तो यह आत्मा आनन्दघन के माग को भली-भाति ग्रहण करके वीतराग-दशा की अवस्था को पा सकती है।

कौन व्यक्ति ऐसा होगा जो परम आनन्द की अवस्था को न चाहता हो? जहां तक मै सोचता हू, हर एक आत्मा को परम आनन्द की अभिलाषा अवश्य है। परन्तु सही मार्ग के अभाव में आत्मा इस ससार के विचित्र दृश्यों मे उलझ रही है। यदि यह वीतराग-वाणी के अनुरूप आध्यात्मिक विज्ञान को ग्रहण करे तो उसमें वीतरागता आए बिना नहीं रहेगी।

सत और सती वग इस विषय का यथाशक्ति प्रतिपादन करते हैं। वे अपनी कर्तव्य दृष्टि से सबोधन भी देते हैं। परन्तु इस विषय को ग्रहण करने की जिज्ञासा जब तक श्रोताओ म जागृत नहीं होगी, तब तक वे (श्रोता) इस माग को पकड नही पायेंगे। व्या ख्यान की दृष्टि से वे व्याख्यान श्रवण कर लेंगे, कुछ समय के लिए यदि वे एकाग्र रहे और योगो की वृत्ति शुभ रही तो निजरा भी कर लेंगे परन्तु इससे आगे का लाभ वे नहीं उठा सकेंगे। वस्तुत इस विषय मे आगे प्रवेश करना है तो ससार की वस्तुओ का अध्ययन करते हुए भी उनमें उलझे न रहें और आध्यात्मिक विषय मे अपनी शक्ति लगायें।

इस प्रकार शक्ति लगाने का कार्य हर समझदार व्यक्ति कर सकता है। पढा लिखा विचारवान व्यक्ति इसमें अधिक प्रगति कर सकता है। परन्तु बाहरी पढ़ाई की दृष्टि से अक्षरीय ज्ञान भिन्न है और आध्यात्मिक दृष्टि का ज्ञान भिन्न। इसकी वर्णमाला उस अक्षरीय ज्ञान से भिन्न है। अक्षरीय ज्ञान की दृष्टि से तो बहुतेरे विद्वान मिल जायेंगे परन्तु यदि अक्षरीय ज्ञान ही आध्यात्मिक जीवन का मार्ग होता तो उससे सम्पन्न सभी व्यक्ति आध्यात्मिक-ज्ञान से ओत-प्रोत होकर आत्मा की शांति का अनुभव करते। इस सम्बन्ध में अनुभव विपरीत ही दृष्टिगत हो रहा है। लोग जितने अधिक अक्षरीय ज्ञान के साथ डिग्रियां प्राप्त करके आगे बढे हैं, अधिकाशत उनका मानस उतना ही अधिक नाशवान तत्त्वों मे आसक्त बना हुआ-सा दिखलाई देता है।

आध्यात्मिक जीवन की यत्किंचित् भावना भी कुतर्कों के माध्यम से मलिन सी बन गई है। यही कारण है कि आज अधि-काश व्यक्तियों का मस्तिष्क इस आतरिक शक्ति से शून्य है। इसका परिणाम है कि वे व्यक्ति प्राय अपने जीवन की शक्ति को

नियत्रित नही कर पा रहे हैं। वाणी पर उनका अकुश नही है। कभी-कभी तो उनकी वाणी इस प्रकार विना अकुश के बाहर निकल पडती है कि जिसको सुन कर सभ्य व्यक्ति लज्जित होते हैं। यह बडा ही चितनीय विषय है।

लोगो का कथन है कि आजकल छात्रो द्वारा अपनी मागो की दृष्टि से जो जुलूस या सभाओ का आयोजन होता है, उनमे छात्र वग तो विना नियत्रण के बोलता ही है, परन्तु अध्यापक वग की भी नियत्रण करने की शक्ति प्राय लुप्त सी हो गई है। जब अध्यापक-वग की यह दशा है तो छात्रो की वैसी दशा बने, इसमे आश्चय ही क्या है? बालक तो अनुकरणशील प्राणी है। वे अध्यापको को जैसा बर्ताव करते हुए देखेंगे, स्वय भी वैसा ही करेंगे। साथ ही जसा वे माता पिता का बर्ताव देखेंगे, उसका भी अनुकरण करेंगे। यह देख कर माता पिता सोचें कि आजकल के छात्र बिगड गये हैं तो यह दोष किसका है? बालको पर दोषारोपण तो कर दिया जाता है परन्तु वे अपने आपको नही देखते हैं कि उनका अपना जीवन भी आध्यात्मिक लक्ष्य से शून्य बन कर इन्ही नाशवान पदार्थों में लिप्त है।

अपने अधिकारो को मागना अथवा आवश्यक वस्तु की माग के लिए आदोलन करना कोई अनुचित नही कहा जा सकता परन्तु आदोलन का तरीका नियत्रित रखा जाए और उस नियत्रण के साथ आध्यात्मिक जीवन की स्थिरता भी रहे। यदि नतिक आंदोलन और अधिकारों की माग सभ्य तरीके से की जाती है तो उसका असर दुगुना होगा और हर एक व्यक्ति उसके साथ सहानुभूति प्रकट करेगा।

आज के मानव की विचित्र दशा है। यदि वास्तविक शाति

का अनुभव करना है तो आप मात्र इस अक्षरीय ज्ञान के भरोसे न रहें। आप अक्षरीय ज्ञान के माध्यम से आध्यात्मिक ज्ञान को ग्रहण करने में लगें और आध्यात्मिक ज्ञान की वर्णमाला को सीखने का अभ्यास करें। यदि उसको सीखने की जिज्ञासा रखो तो सतों से सुविधापूर्वक आध्यात्मिक ज्ञान सीख सकेंगे। यदि सतो के निमित्त से आपने आध्यात्मिक जीवन की शिक्षा ग्रहण कर ली और इस वर्णमाला को आप ठीक तरह से सीख गए तो परमात्मा के उस सत्-चित्-आनन्दघन रूप को आहिस्ता-आहिस्ता प्राप्त करने का रास्ता अपना लेंगे और जीवन में नवीन आतरिक शाति का अनुभव होगा।

इस दृष्टिकोण से यह जिज्ञासा आपमे स्वत जागृत होनी चाहिए। सत प्रेरणा दें तो आप सोचें और सत प्ररणा न दें तो आप नही सोचें, यह आपकी सुषुप्ति का परिणाम है। आप जीवन के विषय मे जागृत नहीं हैं, प्रगाढ़ निद्रा में सोए हुए हैं। यदि यन्त्रवत् खाने मे, पीने में, सोने मे, देख लेने मे ही आप अपने को धन्य समझते हैं तो ज्ञानीजन कहते हैं कि यह आपकी मूर्छित अवस्था है। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो यह बिना नियत्रण के मस्तिष्क की स्थिति है। बिना नियत्रण का मस्तिष्क कुछ भी कार्य कर जाए, उसका कोई मूल्य नही है।

आप मानव हैं तो मानव की स्थिति से चिन्तन का लक्ष्य लेकर चलें और जागृत बनें। जागृत बनने के लिए आप स्वय जागें। आपकी जागृति से समाज की, देश की और विश्व की जागृति हो सकती है। परन्तु ये सब कार्य आपकी आध्यात्मिक स्थिति से ही बन सकते हैं।

बधुओ, जिन्होंने इस मार्ग को अपनाया है, वे चाहे गृहस्थ-अवस्था मे रहने वाले हो, महिला या पुरुष पर्याय में हो, चाहे

ससार की व्यवस्था करते हो परन्तु उनमें आध्यात्मिक जीवन की झलक आए बिना नही रहती है। लोग सोचते हैं कि ससार सबधी व्यवस्था पाप का भाग है परन्तु ऐसी कल्पना न रखिए। ससार सम्बन्धी व्यवस्था मे भी यदि नैतिकता अपनाई जाये और आध्यात्मिक दृष्टि-बिंदु को लेकर चला जाये तथा वहा भी शुभ भावना है तो आप पुण्य अर्जित कर सकेंगे। इस प्रकार से आध्यात्मिक जीवन व्यवस्थित होगा तो धर्म का भी सचय होगा।

बीकानेर—
स० २०३०, श्रावण कृष्णा ७

आनन्दानुभूति

दुख, दोहग दूरे टल्या रे, सुख सपदशु भेंट,
धींग धणी माथे कियो रे, कौण गजे नर खेट ?
विमल जिन दीठां लोयण आज, मारां सिध्यां वांछित काज।

प्रार्थना की शब्दावली में आज परमात्मा के नाम का परिवर्तन आ रहा है। अलग अलग नामो से जब अलग अलग कविता की पक्तियां प्रभु की स्तुति के प्रसग से बन जाती हैं तो उन्हीं नामों के साथ उनका उच्चारण होता है।

'विमल' भी एक तीर्थंकर भगवान् का नाम है। यहां 'विमल' शब्द सज्ञावाची बन गया है और इसका उच्चारण करने से एक ही तीथकर का बोध होता है। परन्तु व्युत्पति की दृष्टि से जितने सिद्ध भगवान् हैं—उन सब का इसमें ग्रहण हो जाता है। नाम जब 'विमल' है तो व्युत्पत्ति यह बनती है कि—'विगत मल यस्य स विमल ।' जिनमे से मल निकल गया है, जिनकी अतश्चेतना में से मल का सवथा नाश हो गया है ऐसे विमल परमात्मा हैं। यह एक ही परमात्मा का नाम नही परन्तु जितनी भी आत्माओ ने अपने अन्त करण के काम, क्रोध, मद, मत्सर रूपी मल को सर्वथा समूल नष्ट कर दिया है, उन समस्त आत्माओं का ग्रहण इस 'विमल' शब्द से होता है और उनका ग्रहण होना भव्यात्मा के लिए प्रेरणा देने वाला है।

मानव यदि परमात्मा के विमल स्वरूप को समझ कर अपनी आत्मा के लिए 'विमल' को स्वामी के रूप में ग्रहण करता है तो उत्तम है। स्वामी का यहां तात्पर्य है कि आत्मा का सर्वोपरि

स्वरूप विमल ही है और सर्वोपरि स्वरूप को स्वामी की संज्ञा भी दे सकते हैं। इस सर्वोपरि विमल स्वरूप को सर्वोपरि रखते हुए प्राचीन भाषा में स्वामी को 'धणी' के रूप मे पुकारा गया है। आज भी कुछ ग्रामीण क्षेत्रों में स्वामी को धणी के नाम से कहा जाता है।

यह कविता उन्नीसवी शताब्दी के प्रारम्भ की है। इसकी पंक्तियो मे भी इसी शब्द का प्रयोग किया गया है।

कवि ने अति उल्लास के साथ अपनी अंतश्चेतना की वाणी व्यक्त की है। ये दुःख और दुर्भाग्य आदि जितने भी आत्मा को दबाने वाले मलिन तत्त्व हैं, वे सबके सब दूर भाग गये, आत्मा के समीप नहीं रहे। आत्मा के पास जब तक दुःख और दुर्भाग्य रूप तत्त्व रहेगे, तब तक आत्मा के आत्मप्रदेश उनसे भरे रहेंगे। चाहे वे मलिन हो या अच्छे हों परन्तु किसी भी स्थान पर कुछ रहने का प्रसग है तो मलिन तत्त्व से भी वह स्थान भरा रह सकता है। जब मलिन तत्त्व हटेंगे तब वहा अच्छे तत्त्व रह सकेंगे। आत्मा के स्वरूप की अवस्था मलिन तत्त्वों से दबी हुई थी। मलिन तत्त्व दुःख, दुर्भाग्य रूप से आत्मा को घेर कर खडे थे। परन्तु वे हटे तो उनके स्थान पर सुख और सपद् आए। दुर्गुण हटे तो सद्गुण आए। टकी में से मलिन पानी हटा तो स्वच्छ पानी भर गया। वैसे ही आत्मा के उस पवित्र स्वरूप में दुःख और दुर्भाग्य की कालिमा थी। जब वह हटी तो सुख और वास्तविक सपदा की पवित्र ज्योत्स्ना चमकने लगी।

जिसके जीवन में इस प्रकार का पवित्र प्रकाश आता है, वह आह्लादित हुए बिना नही रहेगा। फिर उस आह्लाद के वशीभूत होकर परमात्मा के नाम के माध्यम से वह आत्मा बोल उठती है—"धींग धणी मांये कियो रे।" मैंने 'धींग' अर्थात्

जिससे बढ़ कर और किसी मे ताकत नही हो—ऐसे धणी को अर्थात् स्वामी को अपने सिर पर कर लिया तो फिर कौन अधम नर मुझ को सता सकता है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि मैंने आत्मा के सद्गुणो को निर्मल स्वरूप के साथ सिर पर कर लिया अर्थात् उनको ही अपना लक्ष्य बना लिया। आत्मा के सहज गुण की विमलता के साथ आत्मा ही आत्मा की सर्वस्व बन गई।

इन पवित्र गुणो को ही स्वामी की उपमा दी जा सकती है, क्योंकि पवित्र गुणो से ही आत्मा परमात्मा बनती है। जिन गुणो से आत्मा परमात्मा बने, वे सर्वोपरि हैं और जो सर्वोपरि है, वही स्वामी है। उसको ही इस प्राचीन भाषा में 'धणी' कहा गया है। आत्मा के सर्वोपरि गुण विमलता के साथ जिसको प्राप्त हो जाते हैं, उस आत्मा को कोई दबा नहीं सकता है।

'नर खेट' का मतलब है कोई भी अधम नर, कोई भी दुर्गुणी पुरुष। वह उस पवित्र निर्मल आत्मा के स्वरूप वाले पुरुष को दबा नहीं सकता, पराजित नही कर सकता क्योंकि उसने निष्ठा के साथ अपने परम लक्ष्य के रूप मे उन्ही सद्गुणों को अपना लिया है। इसलिये दुर्गुणों का वहां प्रवेश ही नहीं हो सकता है।

आज का मानव भी यदि विमलनाथ के स्वरूप को, उस निर्मल परम पवित्र गुणो को स्वामी के रूप में चयन करना चाहे तो उसके लिये अवकाश देवें। परन्तु ये गुण आत्मा मे तभी प्रवेश करेंगे, जब कि आत्मा के साथ रहने वाला अति प्राचीन मलिन कचरा बाहर फेंक दिया जायेगा। दुर्गुण जब बाहर हटेंगे तो सद्गुणों का प्रकटीकरण होगा। उनका प्रकट होना ही सद्गुणों का प्रवेश है। यदि इन सद्गुणो का प्रवेश कराना है, परमात्मा के आदर्श स्वरूप को समक्ष रखना है तो हर समय, हर क्षण

अपनी चेतना मे परमात्मा के निर्मल स्वरूप को ही देखते रहना चाहिये ।

कभी कभी मनुष्य यह सोच लेता है कि हम परमात्मा को देखना चाहते हैं परन्तु परमात्मा है कहा ? परमात्मा करता क्या है ? तर्कवादी युग मे तर्क का प्रादुर्भाव होता है परन्तु जहा तर्क का प्रवेश ही नही है, वहा भी वह तर्क करने की कोशिश करता है । परमात्मा कहा है और वह क्या करता है, इस बात पर यदि कोई तर्क करे तो क्या वह परमात्मा के स्वरूप को समझ पाएगा ? तर्क तो मानसिक कल्पना का एक व्यापार है और मन की गति परमात्मा के स्थान तक पहुच नही सकती है । परमात्मा क्या करता है—यह हम देख नही पाते हैं । इसीलिये जब कभी ज्ञानी-जनो के समक्ष तर्क के प्रश्न आए अथवा शिष्य ने जब तर्क करना चालू किया तो गुरु ने उत्तर दिया—"तक्का तत्थ न विज्जइ, मति तत्थ न गाहिया ।" भाई ! तू क्यो तर्क करता है ? तर्क वहा नही चलेगा, मति का वहा प्रवेश नही होगा । मति तर्क की साथिन है । ये दोनो मन और इन्द्रियो के सहारे चलने के कारण सीमित हैं । सीमित तत्त्व असीम का पता नही लगा सकता ।

परमात्मा कहां है और क्या करता है ? इस प्रश्न का हल व्यक्ति लेना चाहता है । यदि इन प्रश्नो का उत्तर आ जाता है तो प्रत्येक तर्क प्रधान व्यक्ति का कुछ समाधान बन सकता है और वह भी इस विषय में कुछ आगे बढ सकता है । इस विषय की न्यूनाधिक रूप में सर्वत्र चर्चा चलती है । चाहे धर्मस्थान हो, व्यापारिक क्षेत्र हो, राजकीय प्लेट फाम हो, कही कम तो कही ज्यादा, किसी न किसी रूप में घूम फिर कर यह प्रश्न मानव के मस्तिष्क मे चक्कर लगाता रहता है ।

आख्यानिका के अनुसार एक समय बादशाह अकबर के मस्तिष्क में भी यह प्रश्न पैदा हुआ कि दुनिया मे परमात्मा-परमात्मा तो सभी कहते हैं परन्तु परमात्मा है कहा और वह करता क्या है ? राजकीय कार्य समाप्त होने के पश्चात् बादशाह ने अपने बुद्धिमान दरबारी बीरबल से इस प्रश्न को पूछा। तब बीरबल ने निवेदन किया—"जहाँपनाह ! इस प्रश्न का उत्तर सप्ताह भर के बाद मिलेगा।" बादशाह ने कहा 'अच्छा !"।

राजकीय कार्य करने के बाद सध्या के समय जब बीरबल अपनी हवेली पहुचा तो उस समय भी उसके मस्तिष्क में वही प्रश्न घूम रहा था। उसने सोचा कि इस प्रश्न का समाधान कैसे किया जाये ? उसने कई व्यक्तियो के सामने इस प्रश्न को दोहराया परन्तु कोई भी इसका उत्तर नहीं दे सका। इस प्रकार की स्थिति मे कुछ दिन और निकल गए।

एक दिन बीरबल बगीचे में से गुजर रहा था कि सहसा एक अनाथ बालक की ओर उसकी दृष्टि गई। उसने देखा कि यह बालक वहाँ एक एक दाने को चुग रहा है और खाता जा रहा है। उसके सामने कुछ अनाज बिखरा हुआ था। परन्तु वह उसे बटोरता नहीं था और कुछ ही दाने उठा कर अपने मुह में रख लेता था।

बीरबल ने पूछा, "अरे ! तू यह क्या कर रहा है ?" उस अनाथ लडके ने कहा, "मैं उदर की पूर्ति कर रहा हू। पिता बचपन मे ही छोड कर स्वर्ग सिधार गए और माता ने भी मेरा साथ नहीं दिया। वह भी परलोक सिधार गई समाज के व्यक्ति भी मेरी ओर देखने वाले नही मिले। कोई मानव मेरा सरक्षण करे, ऐसी स्थिति नहीं बनी। परन्तु दो हाथो के बीच जब पेट है तो उसकी पूर्ति तो करनी ही पड़ती है। मै उसी के लिये ये दाने चुग रहा हू।

बीरबल ने कहा, "बच्चे ! जब इतना अनाज बिखरा हुआ है तो तू इसको इकट्ठा करके और फिर व्यवस्थित रूप से रोटी बना कर क्यो नही खाता है ?" बालक ने कहा, "मैं इस प्रकार की गफलत में रहने वाला नही हू । देखिए ! समय की गति बडी विचित्र है । मै पहिले इसको बटोर कर सगृहीत करूँ और फिर रोटी बना कर खाने की कोशिश करु, कदाचित् इसके बीच मे ही कोई बाधा आ सकती है । इसलिये एक-एक दाना चुग रहा हू ।"

ऐसा सुन कर बीरबल ने सोचा कि यह बालक बुद्धिशाली मालूम हो रहा है इसके कथन में मानव-जीवन की शुभ प्रेरणा मिल रही है । इन्सान को मात्र सग्रह मे ही न लग कर उपभोग करते हुए चलना चाहिये । जो मात्र सग्रह में ही लगे रहते हैं और उपभोग के लिए सोचते हैं कि आज करेंगे, कल करेंगे और बीच मे ही आयुष्य समाप्त हो जाये तो उनके पाप का सचय तो हो गया परन्तु उपभोग नहीं हो पाया । इस बच्चे से बडी भारी शिक्षा मिल रही है । यह ठीक ही कह रहा है कि जितना मिले उसे खाया जाए और सग्रह में न पडा जाये । सभव है, यह बच्चा बादशाह के प्रश्न का उत्तर भी दे सकेगा ।

गरीबी मे रहने वाले व्यक्ति के मस्तिष्क मे कई तरह की बातो का अनुभव होता है । उसके मस्तिष्क में कई ऐसी बातें रहती हैं, जो सुख में रहने वालो और गादी-तकियो के सहारे बैठने वलो के मस्तिष्क में जल्दी नही बैठती ।

बीरबल ने उस बालक से कहा, "तू यहा क्यो बैठा है ? मेरे साथ चल । मैं तुझे खाना खिलाऊगा ।" यह सुन कर वह बीरबल के साथ चलने को तैयार हो गया । हवेली पर पहुँच कर बीरबल ने उसे खाना खिलाया और अच्छे कपडे भी पहिनने को दिये । इस

प्रकार उसे इज्जत के साथ बिठाया और फिर कहा, "तुम्हारे अदर बुद्धि का जो यह विकास हुआ है, इस विकास मे तुम्हें सहायक कौन मिला ? क्या तुमने किसी अनुभवी पुरुष के साथ रह कर यह अनुभव प्राप्त किया है ?"

लड़के ने उत्तर दिया, "नही ! नहीं ! मुझे अनुभवी पुरुष का सहयोग कहा मिला ? मुझ तो अपन जीवन से ही कुछ अनुभव मिला है और मैं जीवन की ही वात सोचता हू।" इस पर बीरवल ने कहा, "लड़के ! क्या तू बादशाह के एक प्रश्न का उत्तर दे सकता है ?" लड़के ने कहा, "कहिये, वह प्रश्न क्या है ?" बीरवल ने कहा, "प्रश्न यह है कि परमात्मा कहां है और वह क्या करता है ?"

उस अनाथ बालक ने प्रश्न सुन कर कहा—'मैं इसका उत्तर दे सकता हूँ। आप निश्चिन्त रहिये। जिस रोज बादशाह को उत्तर देना हो, उस रोज आप मुझे उनके पास ले चलिये।"

सातवें दिन बीरवल उस बालक को लेकर दरबार मे पहुँचा। राजकीय काय पूरा होने के पश्चात् बादशाह ने बीरवल से अपने प्रश्न का उत्तर पूछा तो बीरवल ने निवेदन किया, "जहांपनाह, आपके इस प्रश्न का उत्तर तो यह एक छोटा बालक भी दे सकता है।" तब बादशाह ने कहा, सचमुच, क्या यह बालक हमारे प्रश्न का उत्तर दे सकेगा ? बीरवल ने कहा, "हां जहांपनाह !"

इस पर बादशाह ने बालक से पूछा, "क्या तू हमारे प्रश्न का उत्तर दे सकता है ? बालक ने अदब से सलाम कर के कहा, 'हां जहांपनाह !" बादशाह ने कहा, "अच्छा ! बतलाओ, परमात्मा कहां है और वह क्या करता है ?" बालक ने निवेदन किया, "जहांपनाह एक कटोरे में दूध मगवाइये।" बादशाह के इशारे

पर दूध का कटोरा आ गया और अनुचर ने उसे बालक के सामने रख दिया। बालक कुछ चिन्तन करता हुआ दूध मे उगली डाल कर चखता है और बादशाह के सामने देखता है।

बादशाह ने कहा, "अरे, तू यह क्या कर रहा है? हमारे प्रश्न का उत्तर दे कि भगवान् कहा है?" इस पर लडके ने कहा, हुजूर! आपके प्रश्न का उत्तर हो गया।" बादशाह ने उत्सुकता से पूछा "अरे! क्या हुआ? हम तो नही समझे।"

लडके ने कहा, "यदि आप नहीं समझे तो मैं खुलासा करता हूँ। जब मैं छोटा बच्चा था, तब मेरी माता ने मुझे मक्खन की एक डली दी थी। मैं उस मक्खन को खाने लगा। उस समय मेरे मन मे प्रश्न उठा कि यह मक्खन किस वृक्ष का फल है? और माँ इसे कहा से तोड कर लाई है? इस प्रकार मेरे मन मे जिज्ञासा हुई और मैंने माँ से पूछ ही लिया कि यह मक्खन किस वृक्ष का फल है?" माँ ने कहा, "बेटा, यह वृक्ष का फल नही, यह तो दूध में से निकलता है।"

बालक की यह बात सुन कर बादशाह ने सोचा कि यह प्रश्न का क्या उत्तर देगा? इसको तो यह भी पता नही कि मक्खन भी कही वृक्ष पर लगता है?

लडके ने आगे कहा—"जहापनाह, मेरी माता ने कहा था कि मक्खन दूध में से निकलता है। आपने दूध तो मगवाया परन्तु यह मुझे इसमे मिल नहीं रहा है।" बादशाह ने कहा, "मक्खन दूध में से निकलता है, तेरी माता का यह कथन सच है। परन्तु तेरे अन्दर दिमाग की कमी है। दूध मे मक्खन भरा हुआ है परन्तु यह उगली से नहीं निकल सकता है। दूध को सस्कार देकर जमाना होता है और फिर बिलौना करके मक्खन निकाला जाता है।"

लडके ने नम्रतापूवक निवेदन किया, "जहांपनाह ! क्या दूध में मक्खन नही है ?" बादशाह ने कहा, "इसमे तो है ही।" तब लडका बोल उठा, "परन्तु वह सामने नजर नहीं आ रहा है।" बादशाह ने कहा, "हा ! वह नजर नही आ रहा है।"

इस पर बालक ने साहसपूर्वक कहा, 'जहापनाह ! आपके प्रथम प्रश्न का उत्तर इसमें हो गया। आप पूछते हैं कि भगवान कहा है ? तो सुनिये कि भगवान आपकी आत्मा में है। दूध मे मक्खन है, यह आप स्वय फरमा रहे हैं, वसे ही आपकी आत्मा में भगवान है और आप फरमाते हैं कि दूध को सस्कार करने से, जमाने से और विलोना करने से फिर मक्खन बाहर आता है, वैसे ही इस आत्मा मे सस्कार करके मथन किया जाये तो आत्मा में परमात्मा की अनुभूति हो सकती है।

ऐसा उचित उत्तर सुनते ही बादशाह को निश्चय हो गया कि बात सच है। बालक ने ठीक ही कहा है कि जसे दूध के कण कण मे मक्खन है, तिल मे तेल है, लकडी मे अग्नि है और फूल में इत्र है, वैसे ही आत्मा मे परमात्मा का स्वरूप समाया हुआ है।

बादशाह के समाधान की तरह मे समझता हू कि आपका भी समाधान हुआ होगा। आपके मस्तिष्क मे ऐसा प्रश्न उठा या नही, यह आप स्वय जानें।

बधुओ, बादशाह की एक जिज्ञासा का तो समाधान हुआ परन्तु दुसरी जिज्ञासा शेष रह गई थी। बादशाह ने कहा, "लडके, भगवान कहां रहते हैं, यह तो पता लग गया। परन्तु भगवान करते क्या हैं, इसका क्या उत्तर है ? तुमने आत्मा को भगवान बतलाया। परन्तु आत्मा पाप कर रही है तो क्या भगवान पाप करता है, अनीति करता है ? क्या भगवान किसी को सता रहा

है ? लोग तो एक-दुसरे को सता रहे हैं, वे लडते हैं, मर-कट रहे है। क्या यह कर्म भी भगवान करता है ?"

बालक ने नम्रता से निवेदन किया, "जहांपनाह, आप अपनी पोशाक और शृङ्गार सजाते हुए किसका अवलम्बन लेते हैं ? हमारी पोशाक ठीक है या नही, हमारी आकृति साफ है या नही, इसकी साक्षी आप किससे करते हैं ?" बादशाह ने प्रत्युत्तर मे कहा, "दपण से। दर्पण को सामने रख कर हम अपनी आकृति देख लेते हैं।" बालक ने फिर पूछा, "जहापनाह ! दर्पण आपके लिए क्या करता है ?" बादशाह ने कहा, "अरे ! दपण क्या करेगा। दपण मे देख कर हम स्वय कर लेते हैं।"

बालक ने कहा, "जहांपनाह ! आपके दूसरे प्रश्न का उत्तर भी हो गया। दपण स्वच्छ है। वह एक स्थान पर रखा है और कुछ भी नही कर रहा है। आप अपनी आकृति उसमे देख कर अपने को सुन्दर बनाने का प्रयास करते हैं। किन्तु वह दर्पण कुछ नही करता है, सब कुछ हम ही करते हैं। आप भगवान् को दपण के समान स्वच्छ मान लें। प्रभु तो दपण की तरह तटस्थ हैं। आप परमात्मा के शुद्ध स्वरूप को देख कर अपने आपकी तुलना करें। आप अपने अन्दर की कालिमा को दूर हटायेंगे तो परमात्मा का काय दिखलाई पडेगा। परमात्मा को आदश रखे बिना आप कालिमा नही मिटा सकते हैं, आत्मा को पवित्र बनाने मे समथ नही बन सकते हैं। और ऐसे कार्य के द्वारा परमात्मा को अकन कर सकते हैं।" बादशाह के प्रश्न का समाधान ठीक ढग से हो गया।

बंधुओ, यह शक्ति हर एक आत्मा मे है। परन्तु ऐसी शक्ति आप तभी प्राप्त कर सकेंगे, जब आप सत्पुरुषार्थपूर्वक भगवान के निर्मल स्वरूप का ध्यान करते हुए अपनी आत्मा को उन गुणो से

विभूषित करने का प्रयास करेंगे। यदि आप ऐसा प्रयत्न करेंगे तो आपके जीवन में दुःख और दुर्भाग्य नही रह सकेंगे। आप भी सत् चित् आनन्दघन रूप परमात्मा बन जायेंगे।

मैं वर्तमान जीवन की थोडी सी बात बता दूं। जैसे कोई व्यक्ति शारीरिक अथवा मानसिक या बौद्धिक श्रम करता हुआ थक जाता है, तब उसे आराम करने की इच्छा होती है और वह गाढी निद्रा मे सो जाता है। उस प्रगाढ निद्रा में न इन्द्रियां जाग रही हैं और न मन स्वप्न देख रहा है। सब शारीरिक अवयव शिथिल पडे रहते हैं। उस अवस्था से जब मनुष्य जागता है, तब उससे पूछते हैं, "कहो भाई! कैसी नींद आई?" वह कहता है कि बडा आनद रहा। फिर पूछते हैं "अरे भाई! कैसा आनन्द रहा?" वह कहता है, "कुछ मत पूछिये। आज तो ऐसी निद्रा आई कि सारी थकावट दूर हो गई और मुझे बहुत ही आनन्द का अनुभव हुआ।" उस आनन्द का वर्णन वह नहीं कर सकता।

उस आनन्द के अनुभव की पूरी अभिव्यक्ति वह नहीं कर पा रहा है। तब प्रश्नकर्ता पूछता है कि क्या तुमने मीठा भोजन किया? वह कहता है कि मीठा भोजन कुछ नहीं किया।

"क्या सुन्दर रूप देखा?"

"नहीं, वह भी नही देखा।"

"क्या कोई सुगध सूघी?" "वह भी नही सूघी।"

"क्या मधुर गाना सुना?" "वह भी नहीं सुना।"

"क्या किसी का स्पर्श किया?" "वह भी नहीं किया।"

"तो क्या तुमने स्वप्न देख कर आनन्द लिया?"

"नही, स्वप्न भी नहीं देखा। फिर भी मुझे बडा आनन्द आया"

बतलाइये! वह आनन्द क्या है? न उसमे खाना-पीना है, न सुनना है, न स्पर्श है और न स्वप्न की ही सृष्टि है। किन्तु आनन्द का अनुभव करने वाली जो आत्मा है, वह उस आनन्द के अनुभव की अभिव्यक्ति नही कर सकती है, मात्र उसका अनुभव ही करती है।

आप भी यदि इसी आनन्द की अनुभूति करना चाहते हैं तो काम, क्रोध, मान, माया और राग द्वेष से हट कर आत्मवत् सर्व-भूतेषु की भावना के साथ समतामय जीवन को ढालने की कोशिश करे, तभी आप इस आनन्द की अनुभूति को प्राप्त करने मे समर्थ बन सकते हैं और मोक्ष के आनन्द के अनुभव को भी प्राप्त कर सकते हैं।

मोक्ष मे क्या आनन्द है? इसका लेखा-जोखा आप इन्द्रियो से नही ले सकते हैं। आपकी इन्द्रिया कुठित हैं। इस सम्बन्ध मे जिह्वा बोल नही सकती है। वह आनन्द तो आत्मा की अनुभूति से ही लिया जा सकता है। उस आनन्द की तुलना उस थोडी-सी गाढी निद्रा की स्थिति से करें। यदि आपने उसे साधना के क्षेत्र मे प्राप्त किया तो आपका जीवन आनन्द और सुख सपदा से पूर्ण हो सकता है। इस विषय मे आप चिंतन करें।

●

बीकानेर—

स० २०३०, श्रावण शुक्ला २

आत्मा की विमलता

दु:ख दोहग्ग दूरे टल्या रे, सुख सपदशु भेंट,
धींग धणी माथे कियो रे, कौण गजे नर खेट ?
विमल जिन दीठां लोयण आज, मारां सिध्यां वांछित काज।

विमल प्रभु के विमल स्वरूप को पाने के लिये अन्तरात्मा का स्वर मुखरित हो उठता है। विमल शब्द इस आत्मा को अत्यन्त प्रिय है। जिसका स्वभाव मूलत जैसा होता है, उसका वह अच्छा लगता ही है, चाहे वह किसी पर्दे की आड मे हो या किसी स्थल पर छिपा हुआ हो। वह स्वय उसको दीख नही पाता हो, फिर भी उस शब्द को सुनता है तो सहसा उसे प्रमुदित भावना आए बिना नही रहती है।

आत्मा का मूलत स्वभाव विमल अर्थात् मल रहित रहता है। परन्तु वर्तमान में वह काम मल से युक्त होने के कारण अपने शुद्ध स्वभाव को प्रगट नहीं कर पा रहो है। काम क्रोध की तुच्छ भावनायें, मद-मत्सर की विषम चिनगारियां इस आत्मा के समक्ष प्रतिक्षण आती रहती हैं। इस स्थिति में अपने स्वरूप का ध्यान नही हो पा रहा है। परन्तु फिर भी जब विमल शब्द सुनने को मिलता है तो अपने आपको विमल बनाने के लिये आत्मा उस तरफ आकर्षित होती है।

मन के चारों तरफ विकारो ने घेरा डाल रखा है। मानसिक कल्पनायें अधाधु ध रूप में चल रही हैं। इन मानसिक उलझनों के बीच मे रग-बिरगी मानसिक दुनिया ही दृष्टिगत होती है। आत्मा के निमल स्वरूप के दशन वर्तमान मानसिक दशा में नहीं

हो पाते हैं। फिर भी विमल शब्द का अर्थ इस आंधी और तूफान के मानस को चीर कर आत्मा की आतरिक दशा को छूता है। इसीलिये आत्मा इन सब झंझावातो के बीच मे रहती हुई भी अपने मूल स्वभाव की विमलता को ही पसन्द करती है और विमल स्वरूप की ओर आकर्षित होती है। यदि इस आकर्षण में स्थायित्व आ जाए तो आत्मा अपने वाछित लक्ष्य को पा सकती है।

प्रार्थना की कोई सी भी पक्तिया उच्चारण की जायें परन्तु मानसिक उलझनो को हटा कर अपने स्वरूप को परमात्मा के विमल स्वरूप के तुल्य देख लिया जाए तो वह परमात्मा के दर्शन का रूपक होगा। पक्तियो के बीच मे भी वही झाकी आ रही है—
'विमल जिन दीठां लोयण आज, मारा " " "।'

इस वक्त 'लोचन' देखने का प्रसग क्या है ? ज्ञानियो का कथन है कि वतमान मे इसान की ज्ञान शक्ति चल रही है, वह सिफ इन निस्सार स्थूल तत्त्वों तक सोमित है। वे नेत्रो से सिर्फ चर्म चक्षुओं को समझते हैं और व्यवहार दृष्टि मे वे ही लिये जाते हैं। परन्तु आध्यात्मिक दृष्टि से जो लोचन हैं, वे केवलज्ञान, केवलदशन हैं। जब आत्मा को केवलज्ञान और केवलदर्शन उपलब्ध होता है, परिपूण ज्ञान और परिपूण दर्शन की अवस्था बनती है, उस वक्त ही वह दिव्य नेत्र—"जिन" के नेत्र देख पाती है।

"जिन" के नेत्र श्रुतधर्म और चारित्रधम की परिपूर्णता के रूप में हैं अथवा केवलज्ञान और कवलदशन की परिपूणता के रूप में हैं। इन नेत्रों को देखने के लिये प्रारम्भ से प्रयास किया जाये और विमलनाथ के समान विमल बनने का प्रयत्न किया जाये तो एक दिन व्यक्ति परिपूण 'विमल' बन सकता है। कहा भी है—"देवो भूत्वा देव पश्यति।" व्यक्ति देव बन कर देव को देख

सकता है। इस रूपक से आत्मा उस विमल रूप को भी देख सकती है। जिस रोज आत्मा विमलनाथ के इस विमल रूप को देख पाएगी, उस रोज उसके मनोवाछित कार्य सिद्ध होंगे अर्थात् भव्यात्मा जितना भी प्रयास आत्मिक शुद्धि की दृष्टि से कर रही है, उसका वह प्रयास उस रोज परिपूर्ण मनोरथ मे बदल जाएगा और वह अपने आपका पूर्ण विकास करके परमात्मा के परिपूर्ण विकास को देख पाएगी। यह लक्ष्य की वस्तु है। परन्तु हर व्यक्ति तत्क्षण इस वस्तु को नहीं देख पाता है।

प्रभु महावीर ने गौतम से कहा कि—

न हु जिणे अज्ज दिस्सइ, बहुमए दिस्सइ मग्गदेसिए।

(उत्तराध्ययन १०/३१)

हे गौतम! आज तुझे 'जिन' नहीं दिख रहे हैं परन्तु 'जिन' का दिखाया हुआ मार्ग दिख रहा है।

यह कितनी आश्चर्यकारी बात है! जिन भगवान केवलज्ञान से युक्त अलौकिक प्रकाश को लेकर अतिशय-सम्पन्न शरीर से विराजे हुए हैं। गौतम गणधर 'जिन' के चरणो की उपासना कर रहे हैं, प्रश्न के साथ ही चरणों को छूते हुए उनके नेत्रो का अवलोकन कर रहे हैं, परन्तु उस वक्त भी वीतरागदेव कह रहे हैं कि तुझे 'जिन' नही दिख रहे हैं। यह परस्पर विरोध दिखाने वाली बात कैसे? परन्तु पैनी दृष्टि से आध्यात्मिक चिन्तन किया जाये तो बात बिल्कुल सही है। गौतम स्वामी [illegible] केवलज्ञान के प्रकाश से युक्त नही थे और केवलज्ञा[illegible] 'जिन' अवस्था राग द्वेष से रहित थी।

उनके दर्शन नहीं कर पाते हैं। उन्हे जो दशन होते हैं, वे अनुमानित 'जिन' के होते हैं। वे उनके दिव्य अतिशय के साथ दिव्य वाणी को श्रवण करके दिव्य नय पथ को अगीकार करके चलते हैं।

एम ए की कक्षा का लक्ष्य निर्धारित करते हुए भी यद्यपि प्रथम कक्षा मे रहने वाला विद्यार्थी एम ए की कक्षा की योग्यता नही देख पाता है परन्तु एम ए की योग्यता का दृढ सकल्प जब मन मे रहेगा तो वह सबसे पहिले प्रथम कक्षा मे ही प्रवेश करेगा, वर्णमाला ही सीखेगा। फिर वणमाला के साथ अक्षरो की सयुक्त वाक्यावली सीखेगा और उसके माध्यम से प्रथम, द्वितीय, तृतीय आदि कक्षाओ को पार करता हुआ क्रमिक रूप से आगे बढ़ेगा। यदि वह एम ए की कक्षा मे प्रवेश करना चाहता है परन्तु प्राथमिक वणमाला का ज्ञान प्राप्त नही करता है तो वह अ`य कक्षाओ को लाघ नही सकेगा और प्राथमिक योग्यता प्राप्त किए बिना कोई एम ए की योग्यता प्राप्त नही कर सकता। परन्तु जिसका लक्ष्य स्थिर होता है, वह क्रमिक विकास करते हुए एक दिन अवश्य ही एम ए की कक्षा का पूरा अनुभव कर लेता है। वैसे ही यदि आत्मा एम ए के तुल्य अपना लक्ष्य विमलता को प्राप्त करने का बनाती है तो वह विमलनाथ प्रभु के माग पर गमन करेगी। वह अपने विमल स्वरूप पर आने वाले बाह्य आवरणो को हटाती रहेगी।

हर एक बुद्धिमान व्यक्ति अपने बहुमूल्य रत्न की रक्षा इसी ढग से करता है। जिसका 'विमल' लक्ष्य बन गया है, वह मनुष्य अपनी आत्मा को निमल बनाने का प्रयास करेगा। उसका प्रथम चरण यह होगा कि वह चिन्तन करे कि आत्मा मे मलिन भावनायें किन्-किन कारणो से आ रही हैं, आत्मा किन किन तरीको

से मलिन बन रही है ? मेरा लक्ष्य यह होना चाहिये कि आत्मा के ऊपर आने वाली मलिनता को हटा कर उसे विमल बना लू। परन्तु यह काय तभी कर सकूगा जबकि मलिनता का बढ़ाने वाले कारणो को पहिले से ही रोक दू।

यदि मनुष्य अपनी आत्मा के दिव्य विमल स्वरूप को देखना चाहे तो सबसे पहिले व्यथ की मलिनता को रोकना जरूरी है। व्यथ की मलिनता का तात्पय समझ लेना चाहिये। मनुष्य गृहस्थ अवस्था मे रहता हुआ अपनी घरेलू समस्याओं को हल करना चाहता है क्योकि उस पर परिवार की जिम्मेदारी है और समाज तथा राष्ट्र का उत्तरदायित्व भी है। यदि वह इन सब जिम्मेदारियो को निभाता हुआ अपने लक्ष्य की ओर बढ़ना चाहता है तो परिवार के सरक्षण के लिये, समाज की सुव्यवस्था के लिये और राष्ट्रीय जीवन की पवित्रता के लिये उसे कुछ काय करना पड़ता है। आवश्यकतानुसार अर्थोपाजन के लिये भी व्यवसाय करना पड़ता है तो उसमें भी कुछ ऐसी क्रियायें हो जाती हैं कि जिनके माध्यम से मलिनता आत्मा के साथ सयुक्त हो जाती है। गृहस्थ कितना ही प्रयत्न करे परन्तु वह अपने विमल स्वरूप को सवथा कायम नहीं रख पाता है। फिर भी इन कारणो से आत्मा में जो मलिनता आ रही है, वह अर्थ दड माना जायेगा। परन्तु परिवार आदि की जिम्मदारिया के निर्वाह करने मे जिन क्रियाओं का कोई प्रयोजन नही है तथा राष्ट्र, समाज और परिवार के धरातल पर जिनकी जरा भी आवश्यकता नही है, उन प्रवृत्तियों को तो सबसे पहिले त्याग देना चाहिये।

मनुष्य रास्ते मे चलता है और रास्ते में कीचड है तो वह यह नही चाहेगा कि मेरे पैर कीचड में भरें। यदि कीचड उछलेगा तो कपडो मे भी लगेगा। वह इसकी सावधानी रखता हुआ काय

करेगा तो कीचड से बचता रहेगा। परन्तु सावधानी रखते हुए भी कदाचित् उसके परो मे कीचड लग जाये और कपडो के भी छींटे लग जायें तो नही चाहते हुए भी वह लाचारी से उन्हे बर्दाश्त करेगा। वह सोचेगा कि इसके बिना मेरा आगे का काय नही हो सकता और ऐसी स्थिति मे उसका यह काय नाजायज नही कहा जा सकता है। परन्तु इसके विपरीत जिस व्यक्ति को कीचड मे पैर देने की क्रिया करने का प्रयोजन ही नहीं है और फिर भी यदि वह इरादतन कीचड में पैर रखता है, अपने धुले हुए कपडो को खराब करता है और शरीर को भी कीचड मे भरता है तो उस पुरुष को आप क्या कहेंगे? आपकी दृष्टि मे यह पुरुष कैसा होगा? उसे आप बुद्धिमान कहेगे या इसके विपरीत?

आप भले ही मेरे सामने बोलें या न बोलें परन्तु मन मे अवश्य सोचेंगे कि इस तरह काय करने वाला व्यक्ति समझदार नही कहा जा सकता है। यह जीवन के महत्त्व को जरा भी न समझते हुए व्यर्थ ही अपने पैर और कपडे कीचड से भर रहा है।

मनुष्य इस बाहरी कीचड से तो बच सकता है और बचने का प्रयत्न भी कर सकता है परन्तु आतरिक जीवन की ओर लक्ष्य नही होने से वह अपनी आत्मा को निरर्थक पापो के कीचड से लिप्त कर रहा है। वह व्यर्थ के पापो को रोक नही रहा है। इसलिए आज क इन्सान की जिन्दगी इन पापो से ज्यादा मलिन बन रही है। इस तथ्य को समझें। वर्तमान जीवन को व्यथ के झझटों से बचाना चाहते हैं तो व्यय के पापो से बचने का प्रयत्न करें। अत गृहस्थ अवस्था मे रहते हुए आपका कतव्य है कि आप अपनी आंखो आदि इन्द्रियो और मन का प्रयोग सदुपयोगपूर्वक उसी स्थान पर करने की कोशिश करें, जहा आवश्यकतावश गृहस्थ-जीवन मे रहते हुए करना पडता हो।

समाज या राष्ट्र पर से दूर करने के लिये तैयार होता है। जो ऐसा रोग दूर करने के लिये तैयार होता है तो वह इस काय को करते हुए हिंसा के कार्य मे भी प्रवृत्त हो सकता है। परन्तु ऐसी स्थिति मे उसका यह हिंसा का काय अति मद माना जायेगा।

श्रावक के लिये यह व्रत कठिन नहीं है परन्तु इसको लेकर ही यह सोच ले कि हम बहुत बड़े धर्मात्मा बन गए तो इतनी बड़ा कल्पना करने की भी आवश्यकता नही है। आपने व्यर्थ के पाप को छोडा है तो निरपराध और निरपेक्ष जीवो को मारने की कोशिश नहीं करना चाहिये। इसका मतलब है कि परिवार या समाज की रक्षा के लिये या जीवन निर्वाह के लिये यदि खेती करनी पड रही है और उसमे हिंसा हो रही है तो उसकी भी आपको छूट इसलिये है कि वह अपेक्षा से है किन्तु सकल्प के साथ नही है। उसमें यदि आपका मानसिक संकेत इसी ढग का है तो उसका उतना पाप लगेगा ही।

आपका एक बच्चा है और वह कहना नहीं मान रहा है। शिक्षा देने की दृष्टि से आपने उसको एक थप्पड लगा दिया। यह मारना तो हुआ परन्तु व्रत का भग करने वाला नही है। यह अपेक्षा से है। यदि इरादतन मारने की दृष्टि से मारते या पीटते हैं तो व्रतभग हो जाता है।

रास्ते मे चींटी चल रही है। उसने आपका अपराध नहीं किया है और न वह आपका कुछ बिगाड ही रही है। फिर भी यदि चलती हुई चींटी को आप मारने की भावना से मार देते हैं तो आपका प्रथम अहिंसा अणुव्रत है, वह टूट जाता है।

इसी प्रकार आप खेती कर रहे हैं और उसमें हजारो जीव मर रहे हैं किन्तु उनको मारने का आपका इरादा नहीं है। खेती

करना है श्रौर वह भी इसलिए कि परिवार का निर्वाह हो सके तो उसमे सापेक्ष हिंसा है, वह सकल्पी हिंसा नहीं है। इसमें प्रथम ग्रणुव्रत ग्रहिंसा नही टूटता है। हा ! उनको ग्राप इरादे से मारेंगे तो उसमे वह हिंसा लगेगी।

इन्सान इस दृष्टिकोण को खयाल मे रखता हुग्रा व्रत धारण करे तो दुनिया भर के पाप रुक सकते हैं। जन्म जन्मान्तरो से ग्राते हुए पाप पर रोक लगा दी जाये तो जो व्यर्थ का कचरा (मलिनता) ग्रापकी ग्रात्मा के ऊपर लग रहा है, वह रुक जाये ग्रौर जो मलिनता ग्रय के साथ ग्रा रही है, उसको भी रोकने का प्रयास करना चाहिये।

बधुग्रो ! यह ऐसा व्रत है कि हर एक व्यक्ति इसे ग्रपने जीवन में धारण करके कम से कम व्यथ के पापो से तो बच ही सकता है। उसके पाच ग्रतिचार हैं। उनका ध्यान रखें तो ग्रच्छा रहेगा। इसमें कोई कठिनाई नही ग्राती है। इससे व्यर्थ के पाप रुक जाते हैं। इस व्रत का प्रसग जिसके जीवन मे रहता है, वह व्यक्ति गृहस्थ मे भी कार्य करता हुग्रा ग्रपनी ग्रात्मिक निमलता को बढा सकता है।

●

बीकानेर—
स० २०३०, श्रावण शुक्ला ३

समाज या राष्ट्र पर मे दूर करने के लिये तयार होता है । जो ऐसा रोग दूर करने के लिये तैयार होता है तो वह इस काय को करते हुए हिंसा के काय मे भी प्रवृत्त हो सकता है । परन्तु ऐसी स्थिति में उसका यह हिंसा का काय अति मद माना जायेगा ।

श्रावक के लिये यह व्रत कठिन नहीं है परन्तु इसको लेकर ही यह सोच ले कि हम बहुत बडे धर्मात्मा बन गए तो इतनी बडी कल्पना करने की भी आवश्यकता नही है । आपने व्यर्थ के पाप को छोडा है तो निरपराध और निरपेक्ष जीवो को मारने की कोशिश नहीं करना चाहिये । इसका मतलब है कि परिवार या समाज की रक्षा के लिये या जीवन-निर्वाह के लिये यदि खेती करनी पड रही है और उसमे हिंसा हो रही है तो उसकी भी आपको छूट इसलिये है कि वह अपेक्षा से है किन्तु सकल्प के साथ नही है । उसमे यदि आपका मानसिक सकेत इसी ढग का है तो उसका उतना पाप लगेगा ही ।

आपका एक बच्चा है और वह कहना नही मान रहा है । शिक्षा देने की दृष्टि से आपने उसको एक थप्पड लगा दिया । यह मारना तो हुआ परन्तु व्रत का भग करने वाला नहीं है । यह अपेक्षा से है । यदि इरादतन मारने की दृष्टि से मारते या पीटते हैं तो व्रतभग हो जाता है ।

रास्ते मे चीटी चल रही है । उसने आपका अपराध नही किया है और न वह आपका कुछ बिगाड ही रही है । फिर भी यदि चलती हुई चीटी को आप मारने की भावना से मार देते हैं तो आपका प्रथम अहिंसा अणुव्रत है, वह टूट जाता है ।

इसी प्रकार आप खेती कर रहे हैं और उसमे हजारों जीव मर रहे हैं किन्तु उनको मारने का आपका इरादा नहीं है । खेती

करना है और वह भी इसलिए कि परिवार का निर्वाह हो सके तो उसमे सापेक्ष हिसा है, वह सकल्पी हिसा नही है। इसमें प्रथम अणुव्रत अहिसा नही टूटता है। हा ! उनको आप इरादे से मारेंगे तो उसमे वह हिसा लगेगी।

इन्सान इस दृष्टिकोण को खयाल मे रखता हुआ व्रत धारण करे तो दुनिया भर के पाप रुक सकते हैं। जन्म-जन्मान्तरो से आते हुए पाप पर रोक लगा दी जाये तो जो व्यर्थ का कचरा (मलिनता) आपकी आत्मा के ऊपर लग रहा है, वह रुक जाये और जो मलिनता अर्थ के साथ आ रही है, उसको भी रोकने का प्रयास करना चाहिये।

बधुओ ! यह ऐसा व्रत है कि हर एक व्यक्ति इसे अपने जीवन मे धारण करके कम से कम व्यर्थ के पापो से तो बच ही सकता है। उसके पाच अतिचार हैं। उनका ध्यान रखें तो अच्छा रहेगा। इसमे कोई कठिनाई नही आती है। इससे व्यर्थ के पाप रुक जाते हैं। इस व्रत का प्रसग जिसके जीवन मे रहता है, वह व्यक्ति गृहस्थ मे भी कार्य करता हुआ अपनी आत्मिक निमलता को बढा सकता है।

●

बीकानेर—
स० २०३०, श्रावण शुक्ला ३

आध्यात्मिक लक्ष्मी

दु ख दोहग्ग दूरे टल्या रे, सुख सपदशु भेंट,
धींग धणी माथे कियो रे कौण गजे नर खेट ?
विमल जिन दीठा लोयण आज, मारां सिध्यां वांछित काज।

विमलनाथ प्रभु का स्मृति-पटल पर लेते हुए कवि का अन्त स्वर आत्मा के स्वरूप का चितन करता रहता है। आध्यात्मिक रस मे रमण करने वाली आत्मा जिस पवित्र सुख का सकल्प अपन समक्ष रखती है उस सकल्प की अवस्था का चिंतन भी निरतर होता रहता है। परमात्मा के चरणों की ओर कवि का ध्यान गया और उसनें अपने ज्ञान के आलोक मे देखा कि इस ससार मे वास्तविक सुख को स्थिति प्रभु के चरणो म ही है।

दुनिया के कई अज्ञानी प्राणी ससार के अन्दर सुख प्राप्त करने की कोशिश करते हैं। वे यही सोचते रहते हैं कि यदि पांचो इन्द्रियो के विषयो का सयोग मिल जाये तो हम अपने जीवन में ससार के सुख अच्छी तरह से भोग सकेंगे। ऐसे प्राणियो की तुच्छ बुद्धि इन क्षणिक सुखो से तृप्त होने कि स्थिति मे ही रहती है। जब तक व्यक्ति इन तुच्छ सुखों मे आसक्त बना रहता है, तब तक उसकी विचारधारा सामने दिखने वाले विषयो की तरफ ही लगी रहती है और वह इनको ही सब कुछ समझ लेता है। उसकी दृष्टि आतरिक सुखो की ओर बहुत कम जाती है। यदि कोई जबरदस्ती उसकी दृष्टि को उधर खींच ले और एक बार भी उसको वास्तविक आनद का अनुभव करा दे तो फिर वह ससार के विषयो को, इन नाशवान सुखो को तृणवत् समझ कर आतरिक दिव्य सुख का आनद लेने लगगा।

जिन प्राणियो का यह ध्यान है कि इस ससार मे इन्द्रियजनित सुख प्राप्त करने के लिए लक्ष्मी की आवश्यकता है और जितनी सपत्ति एकत्रित कर ली जाएगी, उतनी ही सुख की अभिवृद्धि होगी, वे इसी भावना को लेकर लक्ष्मी के पीछे बुरी तरह भागते हैं परन्तु वे समझ नही पाते हैं कि लक्ष्मी कहा है और वह किसके चरणो मे रहती है ?

लक्ष्मी का एक नाम चचला भी है। जिसका नाम ही चचला है, वह स्थिर व्यक्ति के साथ तो स्थायी रूप से रह सकती है परन्तु अस्थिर व्यक्ति के साथ टिक नही सकती। स्तम्भ यदि मजबूत है तो झडा कितना ही चचल हो वह उसके सहारे टिका रह सकता है परन्तु यदि स्तम्भ डोलायमान है तो फिर झडा तो उडने वाला है ही, उसका कोई ठिकाना ही नही रहेगा। लक्ष्मी रूपी झडा, जिसको कमला भी कहा गया है, यदि स्थिर चरणो के साथ है तो उसकी चचलता भी समाप्त हो सकती है और वह स्थायी रूप से उन स्थिर चरणो मे सदा के लिये बनी रह सकती है। यदि उसके चरण ही स्थिर नही हैं तो फिर वह कमला स्थिर कैसे रह सकती है ? कवि ने रूपक दिया है कि—

चरण कमल कमला बसे रे, निर्मल स्थिर पद देख।
समल अस्थिर पद परिहरे रे, पकज पामर पेख ॥

दुनिया के लोग समझते हैं कि पकज यानि कमल पर लक्ष्मी का निवास है और वह कमल का सहारा लेकर चलती है। परन्तु ज्ञानीजनो का कथन है कि कमल के सहारे लक्ष्मी टिक नही सकती, क्योकि कमल स्वय चचल है। कमल कीचड से पैदा होने वाला है और जो कीचड से पैदा होने वाला है, उसके साथ लक्ष्मी कब टिक सकती है ? लक्ष्मी तो निर्मल बुद्धि को देख कर ही स्थायी रह सकती है। परमात्मा के चरणो का सहारा लक्ष्मी ने

लिया; कमला ने लिया तो क्या समझ कर लिया ? इसीलिए कि प्रभु के चरण निमल हैं। उनमे मल नही है और वे स्थिर है, कभी भी विचलित होने वाले नहीं हैं। ऐसे प्रभु के चरणों मे कमला बसने लगी और उसने पकज को छोड दिया क्योंकि वह मलयुक्त था।

चचला कमजोर कमल को छोड कर प्रभु के चरणो मे पहुची, यह एक अलकार है। इस अलकार के माध्यम से आप वास्तविक सुख की सिद्धि को, लक्ष्मी को समझिए। आत्मा को वास्तविक सुख दिलाने वाली वह कमला आध्यात्मिक लक्ष्मी है। उस लक्ष्मी को निमल चरण ही पसद हैं। वह प्रभु के चरणो को निमल समझ कर ही उनमे स्थिर है।

हाड, मास, रक्त आदि से बने मनुष्य के चरण तो नाशवान हैं। ये चरण स्थिर रहने वाले नहीं हैं। परन्तु उन सिद्ध परमात्मा के चरण तो श्रुत और चारित्र रूप हैं॥ श्रुत और चारित्र रूप चरण परमात्मा की विराट् शक्ति के अटल स्तम्भ हैं। जिस व्यक्ति को परमात्मा का स्वरूप पसन्द है, जिसको स्थायी शाति चाहिए और जो सदा के लिए आध्यात्मिक लक्ष्मी को पाना चाहता है, वह प्रभु के श्रुतधम और चारित्रधम रूप इन दोनो परम पवित्र चरणो का ही ग्रहण करेगा।

श्रुत का तात्पय है—आत्मा और परमात्मा का सही विज्ञान। इस ससार मे कौन से पदार्थ ग्रहण करने योग्य हैं, कौन-से छोडने योग्य हैं और कौन से जानने योग्य हैं, इस प्रकार के सही आध्यात्मिक विज्ञान के साथ जो निमल ज्ञान है और उस निर्मल ज्ञान के साथ वसा ही विश्वास भी है तो वह श्रुत रूपी चरण है। आध्यात्मिक दृष्टिकोण से ससार के पदार्थों का ज्ञान किया, फिर

उनमे से त्यागने योग्य-पदाथ का त्याग करके और ग्रहण करने योग्य पदार्थ का ग्रहण करके समग्र जीवन को उस आध्यात्मिक सुख के लिए लगा लिया तो वह चारित्र रूपी चरण है।

ये दोनो मूल आध्यात्मिक शक्तियां हैं। इन दोनो शक्तियो के सहारे ही आत्मा चरम सीमा की अवस्था मे परमात्मा बन सकती है। उसकी आराधना के लिए ही यह मनुष्य तन है। इस मनुष्य जन्म मे जिसने प्रभु के चरणो की आराधना को समझ लिया, वह स्थायी रूप से लक्ष्मी को पा लेगा। वह स्थायी सुख दिलाने वाली लक्ष्मी के साथ सदा के लिए सम्बन्धित हो जाएगा। फिर कभी सुख उससे अलग नही होगा। आध्यात्मिक लक्ष्मी उससे दूर नही होगी। वह सदा के लिए प्रतिक्षण अनन्त सुख का आनन्द लेता रहेगा। इसी भावना के साथ जिन आत्माओ का विज्ञान प्रबुद्ध हो गया, वे आत्माए चाहे प्रारम्भ मे सत्सगति का योग न बैठने के कारण अन्य तरीको से ससार के नाशवान सुख को पकड कर चलती रही हो, परन्तु जसे ही भीतर की जागृति हुई कि वे उसी समय ससार के इन नाशवान सुखो को नाक के श्लेष्म की तरह त्याग कर अपने दिव्य सुख की खोज मे लग गई।

हम प्राचीन काल की कथाओ मे पढते हैं और ऐतिहासिक पृष्ठो को उलटने का प्रसग आता है तो उनमे ऐसे दिव्य पुरुषो का स्वरूप चमकता हुआ दृष्टिगत होता है कि प्रारभ मे नाशवान गदी वासना मे निमग्न प्राणी कालान्तर मे निमित्त पाकर किस प्रकार प्रबुद्ध हो गये। इस विषय मे अनेक रूपक हैं। उनमे से महात्मा तुलसीदास जी का रूपक आपके सामने रखता हू।

महात्मा तुलसीदास जो के प्रारभिक जीवन की घटना को आप सुनेंगे तो आपको पता लगगा कि वे किस प्रकार इन पांचो इन्द्रियो के विषयो से लिप्त थे। जैसे कि अन्य साधारण व्यक्ति

इस गदी वासना के प्रति आपका जितना भी ध्यान है, उतना ही यदि प्रभु की ओर हो तो आपको किसी प्रकार भव-बाधा नहीं रहेगी । तुलसीदास जी ने पत्नी के इतने से वाक्य सुने और उनकी आत्मा में जागृति आ गई ।

उसी समय तुलसीदास जी ने कहा, "प्रिये, तुमने बहुत सुन्दर बात कही है । आज से तुम मेरा गुरु हो और मैं तुम्हारा शिष्य हू । तुमने अच्छा बोध दिया । और वे उसी समय चल पड़े ।

जब तक आध्यात्मिक ज्ञान का सही भान नही हुआ, तब तक ही उनकी यह दशा रही । आगे चल कर वे महात्मा तुलसी दास जी के नाम से विख्यात हुए ।

एक अन्य रूपक भी ध्यान देने योग्य है । महर्षि वेदव्यास जी के एक ही पुत्र थे—शुकदेव जी । व्यास जी शुकदेव जी को अत्यन्त प्यार करते थे । एक दिन शुकदेव जी व्यास जी के आश्रम मे जा पहुचे । व्यास जी कहने लगे, "शुकदेव ! तू ससार से उदास क्यों रहता है ? तू विवाह कर ले और पुत्रों को जन्म देकर फिर धार्मिक भावना मे लग जाना । मेरे दादा जी के लिए मेरे पिता आधारभूत हुए और मेरे पिताजी के लिए मैं हुआ । अब मेरे लिए तू आधार रूप बन । विवाह के बाद ससार के सुख भोग कर फिर घर से निकल जाना । यदि सतान परम्परा नही चली तो ससार की व्यवस्था कसे चलेगी ?

शुकदेव जी ने कहा, "पिताजी ! ससार की व्यवस्था चले या न चले, इसकी मुझे चिन्ता नही है । परन्तु मुझे मनुष्य-तन मिला है । तो मैं इस प्रकार से गृहस्थी के चक्कर मे पड कर जीवन को खराब नहीं करना चाहता । मैं तो स्थायी सुख सम्पत्ति के लिए, आध्यात्मिक लक्ष्मी की उपलब्धि के लिए वन में जाऊगा

ओर वहा साधना करूगा । मैं आपके कहने के अनुसार विवाह करके ससार मे रहने वाला नही हू ।"

शुकदेव जी इस प्रकार अपने पिताजी को उत्तर देकर चल पड़े । वे वन मे चले तो रास्ते मे नदी आ गई । उसमे कई स्त्रिया स्नान कर रही थी । राजा को रानी और राजकन्यायें भी उनमे थी । अनेक महिलायें वस्त्रों को इधर-उधर करके स्नान कर रही थी । तरुण शुकदेव जी उनके बीच मे से होकर निकले । इन बहिनो ने उनका कुछ भी ध्यान नही किया । वे उसी तरह से नहाती रही ।

शुकदेव जी के चले जाने के पश्चात् वेदव्यास जी भी उसी मार्ग से निकले । वे उसी नदी के किनारे पहुँचे जहा वे स्त्रियां स्नान कर रही थी । जसे ही उन्होने व्यास जी को देखा तो वे शीघ्रता से अपने शरीर पर वस्त्रो को व्यवस्थित करके एक तरफ बठ गई ।

यह देख कर व्यास जी के मन मे आश्चर्य पैदा हुआ कि जब मेरा तरुण पुत्र इधर से निकला तो इन्होने कोई खयाल नहीं किया और मैं एक वृद्ध आ रहा हू तो इन्होंने अपने तन ढांक लिए !

व्यासजी की पुत्र सम्बन्धी चिन्ता कुछ कम पडी और उन्होंने इसका रहस्य समझना चाहा । पूछने पर उन महिलाओ ने कहा, "हम आपको जानती हैं । आप पडित हैं, वेद-पारगत हैं और वृद्ध भी हैं । परन्तु आपके जीवन में और आपके पुत्र के जीवन मे बडा अतर है । आपके तरुण पुत्र शुकदेव जी इधर से निकले तो हमको कोई विचार नही आया क्योकि उनका जीवन बच्चे सरीखा है । बच्चा पास से निकले और माता कैसे भी बैठी हो तो वह किसी बात का विचार नही करती है । इसी प्रकार यद्यपि शुकदव जी तरुणाई मे पहुँच गये हैं परन्तु उनमें कोई विकार भावना नहीं है ।

की अभिलाषा है, वह अपने अमूल्य समय को नष्ट न करके आध्यात्मिक साधना मे लगेगा। जो त्याग करता है, वह पूर्ण रूप से साधक बन कर चलता है और कदाचित् कोई पूर्ण त्याग के मार्ग को नही अपनाता है तो भी आशिक रूप से त्याग के मार्ग पर चल कर अपने नीतिमय जीवन से भी ससार मे अपूर्व आदर्श उपस्थित करता है।

मैं इस विषय मे अभी विशेष न कह कर यही कहता हू कि आज आध्यात्मिक लक्ष्मी की आवश्यकता है, ससार की लक्ष्मी की आवश्यकता नहीं। उसे तो अज्ञानवश लक्ष्मी माना है।

इस श्रद्धा के साथ जिनका जीवन होगा, वे ही सच्ची सुख-सपदा प्राप्त करेंगे। पहिले आपत्तियां आती हैं, जो जीवन को झकझोर डालती हैं, परन्तु जो दृढ़ता के साथ आध्यात्मिकता के मार्ग पर चल पड़ता है, वह एक दिन स्थायी लक्ष्मी को प्राप्त कर लेता है।

●

बीकानेर—
स० २०३०, श्रावण शुक्ला ४

गुण मकरन्द

दुख दोहग्ग दूरे टल्या रे, सुख सपदशु भेंट,
धींग धणी माथे कियो रे, कौण गजे नर खेट ?
विमल जिन दीठां लोयण आज, मारां सिध्या वांछित काज।

विमलनाथ परमात्मा की प्राथना कुछ समय से आपके समक्ष आ रही है। प्राथना का समग्र रूप तो नही रख रहा हूँ परन्तु जिन पक्तियो का मुख्य तौर पर अर्थ करना है, उनका उच्चारण ही कर लिया करता हूँ। एक दृष्टि से देखा जाये तो प्रार्थना एक निमित्त मात्र है। वस्तुत प्रार्थना वह है, जो जीवन से सम्बधित है। बाह्य कडियो का उच्चारण कठ तात्वादि के व्यापार का प्रयत्न है परन्तु इनके माध्यम से अपनी आत्मा के विमल स्वरूप को हम पहिचान सकें तो मनुष्य जीवन की साथकता हाथ मे आ जाए।

आज विमलता की नितान्त आवश्यकता है। विमलता के अभाव मे ही विषमता की ज्वालायें सुलग रही हैं। यदि मनुष्य का मन विमल बन जाता है, इसमें पवित्र सस्कारो का सचार हो जाता है तो तमाम कुटिलतायें और मलिनतायें समाप्त हो जाती हैं।

परन्तु मुख्य प्रश्न यहां अटका हुआ है। शरीर का आकार बडा है। हम शरीर को चलते हुए, खाते हुए, बैठते हुए, सुनते हुए देखते हैं। शरीर सम्बन्धी तमाम क्रियायें हर किसी की दृष्टि मे आ सकती हैं परन्तु मन की क्रियायें सीधे रूप मे मनुष्य के समक्ष नही आती हैं। उनका अनुमान नही किया जा सकता है। परन्तु यह अनुमान सहज है कि आत्मा इतने बडे शरीर का सचा-

मन जिस माध्यम से कर रही है, वह माध्यम ही इसका मुख्य यत्र है ।

द्रव्य मन से प्रभावित होता है और जब वह इन्द्रियो के साथ सयुक्त होकर व्यापार मे लगता है तो सारे शरीर की क्रियायें विचित्र रूप मे दीख पडती हैं। मनुष्य का व्यवहार जैसा भी परिलक्षित हो रहा है, इसी से आप मन को पहिचान सकते हैं। मन यदि विमलता के साथ चल रहा है तो शरीर की क्रियायें भी विमल काय की ओर ही जायेंगी और वह मलिन काय नहीं करेगा। यदि मन मे मलिनता है तो नेत्रो मे भी मलिनता आए बिना नही रहेगी। मन में यदि कुटिलता है तो मनुष्य के व्यवहार में भी कुटिलता रहेगी। मन में यदि छल है तो मानव के व्यव-हार मे भी छल प्रदर्शित होगा। मन गदा है तो गदी प्रवृत्ति अवश्य होगी।

आप मन को इन नेत्रों से तो नहीं देख सकते परन्तु मन की क्रियाओ के माध्यम से उसकी प्रवत्ति को जान सकते हैं। मन को वृत्ति से ही मनुष्य कर्मों का बध करता है और उससे ही वह कर्मों को तोडता भी है। कहा है कि—

मन एव मनुष्याणाम् कारण बधमोक्षयो ।

मन की प्रवृत्ति ही वध और मोक्ष का कारण बनती है। यदि कर्मो से मुक्ति पाना है तो मन को पवित्र करना जरूरी है। मन के माध्यम से आत्मा शुभ तथा अशुभ कम करती है और इसी से शारीरिक क्रियायें शुभ और अशुभ प्रवृत्तियो मे लगती हैं। इस प्रकार देखा जाए तो सब पापों की जड मन में है और सब पवित्र सस्कारो की भूमि भी मन ही है।

मन के सस्कार विचारों से बनते हैं। यदि विचारो की शुद्धि मे प्रभु की विमलता का आदश रूप आ जाए एक बार भी मन

उन विमलनाथ भगवान् के चरणो का आस्वादन सही तरीके से कर ले तो फिर ससार की लालसायें उसमे से निकलती हुई दृष्टिगत होगी, वे टिक नही सकेंगी । वे लालसायें तभी तक हैं, जब तक कि मनुष्य उन प्रभु के चरणो का मकरद नही ले रहा है । इसीलिए सकेत आया है कि—

'मुज मन तुज पद—पकजे रे, लीनो गुण-मकरन्द'

तुम्हारे चरणो को मैं पकज की उपमा दे दू । पकज का तात्पय कमल है । कमल मे मकरद (पराग) होता है । इस मकरन्द को लेने के लिए भवरे कमल के इदगिद घूमते हैं । कमल तो सचित जीवयुक्त है और उसका मकरन्द लेने वाला भवरा भी अल्प विकसित चतुरिन्द्रिय आत्मा है । परन्तु वह इस मकरन्द के पीछे अपनी समग्र आत्मा को भूल जाता है । जब कभी वह कमल के मकरद की सुगध में कमल की खुशबू मे, दत्त चित हो जाता है तो वह सारे ससार को भूल जाता है । फिर उसके सामने चाहे स्वग की दिव्य सुवास भी क्यो न हो परन्तु वह उसको भी बिल्कुल तुच्छ गिनता है क्योंकि उसको कमल के मकरद की सुगध अत्यन्त प्रिय है । उसमे लीन होकर भवरा ससार को तो भूलता ही है । परन्तु अपने आपकी शक्ति को भी वह विस्मृत कर देता है । वह कमल की सुगध लेने के लिए उसमें बैठ जाता है । परन्तु सूर्यास्त होने पर सूय विकासी कमल मुकुलित हो जाता है, बद हो जाता है तो कमल के बद होने के साथ ही साथ भवरा भी उसमे बद हो जाता है ।

भवरे का मुख सख्त होता है । उसमे ऐसी ताकत है कि वह चाहे तो लकडी को भी छेद सकता है । फिर कोमल कमल की पखुडियो को छेद कर बाहर निकलने में उसे कौन सी कठिनाई है ? परन्तु वह अपनी कठोर शक्ति कोमल कमल की पखुडियो

को कुतरने मे नही लगाता है, यद्यपि कमल मे उसके जीवन को खतरा है। यदि वह उसमे रह गया तो सम्भव है कि वह मारा जाए। परन्तु वह अपने आपको भूल जाता है और सोचता है कि मैं मर भले ही जाऊ फिर भी मुझे तो यह मकरद चाहिये।

किसी कवि ने कहा, "भवरे! तू अपने जीवन की आहुति इस कमल मे क्यो दे रहा है? अपनी शक्ति से इसे काट कर बाहर निकल जा।" परन्तु जबाब में भवरा कहता है, "नही, मैं इसे नहीं काटूगा।" कवि का कथन है—

> रात्रिर्गमिष्यति भविष्यति सुप्रभातम्,
> भास्वानुदेष्यति हसिष्यति पकजश्री।
> इत्थ विचिन्तयति कोशगते द्विरेफे,
> हा हन्त हन्त नलिनीं गज उज्जहार॥

कमल अभी मुकुलित हो गया है परन्तु प्रात काल होते ही सूर्य उदित होगा और कमल की पखुड़ियां खिलेंगी। रात्रि बीत जाएगी, सुप्रभात होगा और कमल हसेगा–खिल जाएगा। ऐसा चितन भवरा कर ही रहा था कि कवि के अनुसार वह कमल हाथी की सूड का शिकार बन गया। एक मदोन्मत्त हाथी उस सरोवर में पानी पीने को आता है और उस कमलिनी को उखाड कर फक देता है। कमलिनी के टूटने के साथ ही भवरा भी नष्ट हो जाता है।

भाई! वह भवरा तो चतुरिन्द्रिय प्राणी है। उसमे चार इन्द्रियो का ही विकास है। उसमें द्रव्य मन की अवस्था नहीं है। इस भाव-मन के अध्यवसाय से काम करता है। वतमान सुख को ही उसकी सज्ञा है। वह इस कमल के मकरद के पीछे अपनी जिदगी की परवाह नही करता है, सारी दुनिया को कुछ नहीं

समझता है। उस भवरे जैसी दशा—उपमा की दृष्टि से सम्यक् ज्ञानी अपने मन भवरे की बतलाते हैं। वे कहते हैं कि यह मन-भवरा परमात्मा के चरण कमल मे सदा ही लीन रहे।

जैसे मानव शरीर के दो पैर हैं, वैसे ही परमात्मा के भी आध्यात्मिक दृष्टि से दो पैर हैं—श्रुतधर्म और चारित्रधर्म। श्रीमद् ठाणाग सूत्र (२।१।१६) मे दो प्रकार के धम बतलाए हैं। प्रभु महावीर ने चतुर्विध सघ को कहा है—

दुविहे धम्मे पन्नते, त जहा—सुयधम्मे चेव, चरित्तधम्मे चेव।

श्रुतधम और चारित्रधम ये दोनो आत्मा के विमल गुण हैं। यह निमल अवस्था है। इससे आत्मा का विमल स्वरूप विकसित होता है। जब ये दोनो गुण परिपूण अवस्था मे पहुच जाते हैं—चरम सीमा को छू लेते हैं तो वहा विमलनाथ भगवान् का रूप बन जाता है।

कवि ने इन दो गुणो को चरणो की उपमा दी है। कवि कह रहा है कि—

मुज मन तुज पद-पकजे रे, लीनो गुण-मकरद।

मेरा मन तुम्हारे श्रुत और चारित्ररूपी चरण कमलो मे लीन है। जब आत्मा इस मकरद का थोडा सा भी आस्वादन कर लेती है तो वह इस ससार की नाशवान सम्पत्ति को तुच्छ समझने लगती है। व्यक्ति सोचता है कि इन आध्यात्मिक गुणो के मकरद मे, श्रुत और चारित्र रूप वास्तविक गुणो मे, जब मेरी आत्मा दो क्षण के लिये भी लीन हो जाती है और वास्तविक रूप मे मन, वचन और काया की एकरूपता आती है, उस समय जिस आनन्द का अनुभव होता है, उसके समान ससार का कोई भी पांच-इन्द्रिय जनित आनन्द नहीं है।

संसार की जो ये विभिन्न स्थितियाँ दीख रही हैं, उनको व्यक्ति तब तक ही महत्व देता है, जब तक कि उनसे बढ कर दिव्य अनुभव उसे नही होता है। जब उसे आतरिक शक्ति का दिव्य अनुभव होने लगता है तो फिर चाहे हजारो प्रयत्न किये जायें, ये सब वस्तुयें उसको फीकी ही मालूम होती हैं। यदि सोने की लका ही हो, चक्रवर्ती का साम्राज्य हो, छह खण्डो का आधिपत्य मिल जाये तो भी वह उसको तुच्छ मालूम पड़ने लगता है। इतना ही नहीं, मेरु पवत जो शास्त्रीय दृष्टि से स्वर्णप्रधान है और अनेक बहुमूल्य धातुओं से युक्त है, वह भी उसकी निगाह मे तुच्छ हो जाता है। वह सोचता है कि यह तो मिट्टी का ढेर है। इससे क्या मिलने वाला है? इसमे कोई सार नही है। यदि मैं इसमे आसक्त रहा तो आध्यात्मिक जीवन का हनन होगा। मेरी आत्मा मलिन बनेगी और मैं विमल नहीं बन सकूगा।

इन्द्र स्वग की समृद्धि का उपभोग करता है। उसके लिये साधारण व्यक्ति लालायित रहते हैं। इसी तरह से नगेन्द्र, चन्द्र, इन्द्र ये सब स्वर्गीय सुख के प्रतीक हैं। परन्तु आध्यात्मिक जीवन का आस्वादन करने वाला इन सबको रक के समान समझता है। वह सोचता है कि ये बेचारे बहुत गरीब हैं।

जब तक इस आध्यात्मिक-जीवन के विषय मे विस्तृत गति नहीं है, तब तक ही सासरिक वस्तुओं को महत्त्व दिया जा रहा है। परन्तु जसे ही मनुष्य सही वस्तुस्थिति के साथ अन्दर के दिव्य आनद का कुछ भी अनुभव करता है, प्रकाश की झलक देख लेता है तो ये सब चीजें उसे मिट्टी के समान मालूम होती हैं। जिसके पास आध्यात्मिक शक्ति नही, दिव्य आनन्द नहीं, जिसने अपनी शक्ति का प्रादुर्भाव नही किया, उस व्यक्ति को यदि सोने का पर्वत भी दे दिया जाये तो भी उससे क्या लाभ होने वाला है।

भौतिक लालसा तो आकाश के समान अनन्त है। आकाश का अत नही है, वैसे ही इन भौतिक इच्छाओ का भी अन्त नही है। उसके लिये एक नही अनन्त स्वण पवत भी सतोष के कारण नही बन सकते। और वही व्यक्ति जब विमलनाथ भगवान् के चरणो का मकरद ले लेता है, उन चरणो को ही सब कुछ समझने लग जाता है तो फिर इसका असर देखिए।

मेरे भाई कभी कभी नवकारसी का त्याग करते हैं तो उसके फल को देखने की भी कोशिश करते हैं। वे कहते हैं, "महाराज! इसका कितना फल मिलेगा?" वे सामायिक करते हैं, पौषध करते हैं, तपस्या मे जोर लगाते हैं धम साधना मे लगते हैं, परन्तु इन सब साधनाओ मे लगते हुए भी यदि मन मे लालसा है कि इनसे कितना क्या फल मिलेगा, इससे हमारे कितने कम टूटेंगे और स्वग का सुख कितना नजदीक आएगा तो कहना होगा कि उन्होने आध्यात्मिक जीवन का गुण-मकरद नही लिया। जिसने आध्यात्मिक जीवन के गुणो का जरा-सा भी आस्वादन कर लिया, उसके मन मे स्वर्ग के दिव्य सुख की लालसा नही रहेगी, न इस लोक अथवा परलोक की ही लालसा रहेगी और न कीर्ति की लालसा रहेगी। वह तो देखेगा कि ये सारे कचरे हैं। इनके पीछे पडना अपने आपको दरिद्री बनाना है।

कहने का तात्पय यह है कि आध्यात्मिक सम्पत्ति से जिसका जीवन शून्य है और जिसमें आध्यात्मिक गुणो की सुगध और वस्तुत आनद की लहर नहीं है तो उस जीवन का विशेष मूल्याकन नही है।

इस दृष्टि से आप सोचें और फिर नवकारसी करें, पोरसी करें, तपस्या करें। परन्तु इनके साथ ही श्रुतधम और चारित्रधम पर श्रद्धा रखें और अपने मन को निमल बना कर प्रभु के चरण-

कमल के गुण-मकरद को लेने की कोशिश करें। आप ज्ञान सीखें। आप आध्यात्मिक विज्ञान की ओर बढे।

आपको इस विषय की पूर्ति करने के लिये कभी कभी कहा जाता है तो शायद आप सोचते होगे कि महाराज कह रहे हैं, अत हमको ऐसा करना चाहिय। यह तो एक तरह का आपके सिर पर भार हुआ। सम्भवत महाराज को खुश करने के लिये आप ऐसा कर रहे हैं। आपने स्वय इसका महत्त्व नही समझा है। महाराज तो अपनी आत्मीय भावना के साथ यही सोचते हैं कि गुरुदेव के चरणो मे पहुच कर जो कुछ प्राप्त किया है, उसकी जानकारी जगत् के प्राणियो को अपना बधु समझ कर दे दी जाये क्योंकि जो इस प्रकार जानकारी दे देता है, वह अपने कर्तव्य से वरी हो जाता है। अब वे भाई अपना कतव्य समझ कर उसे ग्रहण करें तो वह उनके लिये होगा, महाराज के लिये नहीं होगा। यदि महाराज यह समझते हो कि मैंने इनको त्याग करा दिया इनको सामायिक पोषध करा दिया, इस प्रकार इन पर अहसान किया तो यह भी गलत है। समझना यह है कि महाराज ने जो शुभ भावना से कहा है, उसे हम अपने जीवन मे ग्रहण करेंगे तो हमारे श्रुत चारित्र धर्म की वृद्धि होगी।

मगध सम्राट श्रेणिक प्रभु की चरणो में पहुँचा। उसको ज्ञात हुआ कि पूणिया श्रावक की एक सामायिक खरीद ली जावे तो उसका नरक का बधन समाप्त हो सकता है।

इतनी बात सुन कर श्रेणिक पूणिया श्रावक के घर पर पहुँचा और अपने आने का कारण बताते हुए कहा कि मैं आपसे एक सामायिक खरीदना चाहता हूँ। इस पर पूणिया श्रावक ने सरलता से कहा कि एक सामायिक देने से अगर आपका नरक-

बंधन समाप्त होता है तो मैं लेने को तैयार हू लेकिन सामायिक की कीमत क्या है, यह मैं नही जानता।

ऐतिहासिक मगध-सम्राट प्रभु महावीर के चरणो मे फिर पहुँचा और उसने निवेदन किया, "भगवन्! पूणिया श्रावक एक सामायिक देने को तैयार है और मैं खरीदने को तैयार हू। कीमत आप बतला दीजिए।"

प्रभु ने कहा, "राजन्, तुम्हारे पास कितनी सम्पत्ति है?" उत्तर मिला, "भगवन् मेरी सम्पत्ति आपसे क्या छिपी हुई है? आपक कुछ भी छिपा हुआ नही है। यदि मेरे मुह से ही कहलवाना चाहते हैं तो मैं प्रकट कर देता हू कि मेरे भडार में कितना धन है। मैं अपनी बहुमूल्य रत्नराशि और स्वण आदि को बाहर निकाल कर मैदान मे एकत्रित करूँ तो बावन डूगरिया लग जायें। इतना धन है मेरे पास। कितनी कीमत इस सामायिक की चुकाऊँ?

इस पर भगवान ने प्रकट किया कि इतना धनराशि तो एक सामायिक की दलाली मे चाहिये।

इससे आप एक सामायिक की कीमत का क्या चितन कर सकते हैं? आध्यात्मिक साधना, अडतालीस मिनट की साधना, यदि विधि के साथ पूणिया श्रावक की तरह से बन जाती है तो आपके मन मे गुणो का आस्वादन आए बिना नही रहेगा। फिर तो स्वर्ण रत्नो की बावन डूगरिया ही क्या, सारे ससार का वैभव भी आपको तुच्छ लगने लगेगा।

विधि के अनुसार आध्यात्मिक साधना करने को तैयारी करके आप अडतालोस मिनट के लिये भी साधना मे लगेंगे तो हो सकता है कि शुरु शुरु मे आपको कठिनाई मालूम हो परन्तु जमे मनोयोगपूवक प्रारभ में पहली कक्षा मे बैठने वाला विद्यार्थी समय

पाकर उच्च योग्यता प्राप्त कर लेता है, वैसे ही आप भी आध्यात्मिक योग्यता के चरम लक्ष्य को प्राप्त कर सकते हैं।

गजसुकुमाल जी भव्य आत्माओ मे से थे। उन्होने आध्यात्मिक गुणो के रस का आस्वादन कर लिया था। वे त्रिखण्डाधिपति श्रीकृष्ण वासुदेव के लघु भ्राता थे। उन्होने इन नाशवान पदार्थों को तुच्छ समझ लिया और आध्यात्मिक रस मे तल्लीन हो गए। उनको वैराग्य-पथ से मोडने के लिये अनेक प्रलोभन दिये गए। उनके चरणो में सारा वैभव श्रीकृष्ण महाराज ने रख दिया। उन्हें सिंहासन पर राज्याभिषेक करके बैठा दिया और स्वय श्रीकृष्ण नीचे खडे होकर कहने लगे, "महाराज, अब आप राजानपति राजा बन गए हैं। कहिये मेरे लिय क्या आज्ञा है ?"

यदि गजसुकुमाल मुनि ने आध्यात्मिक गुणो के मकरद का आस्वादन नही किया होता तो भले ही वे सतो की सगति और प्रभु के चरणा मे गए हो परन्तु इन प्रलोभनो और राज्य सिंहासन के चक्कर मे वे आ जाते। वे कह देते कि मैं राजाधिराज बन कर राज्य करूँगा। परन्तु उनके हृदय मे वह रग प्रवेश कर गया था। वे जरा भी विचलित नही हुए। आध्यात्मिक गुणो के मकरद का आस्वादन एक बार भी जिस किसी ने कर लिया है, उसका जीवन बदल ही जायेगा।

कहने का तात्पय यह है कि जब व्यक्ति भौतिक विज्ञान की ओर से आध्यात्मिक विज्ञान मे मुड जाता है तो उसका जीवन कुछ अलौकिक ढग से चलने लगता है। मैं उस आध्यात्मिक गुण मकरद की बात क्या कहू और सामायिक की कीमत क्या कहूँ ? इनकी कीमत तो सारे ससार की सम्पत्ति से भी नहीं कर सकते।

बीकानेर—
स० २०३०, श्रावण शुक्ला ५

आत्मा का विश्राम स्थल

दुख दोहग दूरे टल्या रे, सुख सपदशु भेंट,
धींग धणी माथे कियो रे, कौण गजे नर खेट ?
विमल जिन दीठा लोयण आज, मारा सिध्यां वांछित काज।

विमल स्वरूप को पाने के लिए भव्यात्मा इस विराट विश्व मे परिभ्रमण कर रही है परन्तु विमलता के दर्शन इस आत्मा को सहज ही नही होते। विमलनाथ भगवान ने जिस विमल स्वरूप को पा लिया है उस स्वरूप को पाने के लिए हर भव्य आत्मा को तडफन (अभिलाषा) रहती है। वह हर समय चिंतन करती है कि मैं विमल स्वरूप को कैसे पाऊ ? मल-रहित अवस्था मेरी जन्मसिद्ध थाती है, परन्तु उसको मैं विस्मरण-सी कर गई हू। वह मेरी निधि कहा छिपी हुई है और मैं उसे कैसे पाऊँ ? जब इस प्रकार की लगन व्यक्ति के मन मे पैदा होती है और उसके अनुरूप प्रयत्न भी चालू होता है तो आहिस्ता आहिस्ता वह उस प्रभु के आदर्श के सहारे अपने लक्ष्य को पा सकता है।

कविता के माध्यम मे शक्ति सम्पन्न भगवान को स्वामी के रूप मे माना गया है, जिसका तात्पर्य गुणो की सर्वोत्कृष्ट सोमा को जीवन मे ग्रहण करना है। वह अवस्था इस आत्मा के लिये चरम विश्राम के स्थान की है। इसके पूर्व ससार का परिभ्रमण करने वाली आत्मा के लिये प्रारम्भिक विश्राम का स्थल आता है तो उसको बडी तुष्टि मिलती है। जब जीवन में सम्यक दृष्टि प्रकट होती है, जब हित और अहित का विवेकरूपी दीपक जगता है, जब आत्मा का स्वरूप समझ कर समग्र शक्तियों को प्राप्त

करने की श्रद्धा बनती है, त्यागने योग्य तत्वों का मैं कब परित्याग करूँ—इस प्रकार का श्रद्धान जब मन मे अन्त करणपूर्वक जमता है तो आत्मा के लिये वह विश्राम स्थान है।

अनादिकाल से मिथ्यात्व के बीहड जगल मे काम, क्रोध रूपी भयावने जगली जतुओ के बीच में इस आत्मा ने सत्रास ही पाया है। इस मिथ्यात्व रूपी अरण्य मे इधर से उधर भटकते हुए जब तक सही राजमार्ग नही मिलता है, तब तक आत्मा को अत्यधिक थकान का अनुभव होता है और जैसे ही राजमार्ग सामने आ जाता है तो कितनी भी थकान हो, उसको विश्राति मिलने का प्रसग बन ही जाता है।

जिन व्यक्तियो का पैदल भ्रमण होता है (महात्माओ ने तो अपनी साधना की दृष्टि से जिंदगी भर के लिये पैदलभ्रमण का ही प्रण ले रखा है,) वे विरान जगल मे रास्ता भूल जायें और उस जगल मे मार्ग बताने वाला कोई व्यक्ति भी नहीं मिले तो भले ही वे थोडे से ही रास्ते को तय करें परन्तु उनके पैरो मे थकान अत्यधिक बढ जाती है। वे सोचने लग जाते हैं कि हम बहुत चल चुके, अब तो कोई रास्ता मिले। उस समय पैरो के उठने का प्रसग भी कम आता है। परन्तु यदि सहसा उनकी दृष्टि मे गाव का मार्ग आ जाता है तो उस रास्ते को देखते ही उनकी सारी थकावट दूर हो जाती है।

इस ससार की मोह माया मे परिभ्रमण करते हुए इस आत्मा की यही दशा बन रही है। बार-बार जन्म ग्रहण करके मृत्यु को प्राप्त करती हुई इस आत्मा का हैरानी के अतिरिक्त कुछ भी पल्ले नही पडता है। यह कितनी विकट और असह्य यातनाओं को सहन करती है! यह कितने दु खों का सामना करके चलती है! इस अवस्था मे जब आत्मा थकावट का अनुभव करने लगती

तो उसे विश्राम स्थान मिल सकता है। परन्तु जिन आत्माओ के मस्तिष्क पर पर्दा पडा हुआ है, उनको वह नही मिल पाता।

इस जीवन मे प्रथम विश्राम-स्थान सम्यक्-दृष्टि है। अनादिकाल के मिथ्यात्व का क्षपण होता है। इस मिथ्यात्व की दशा की कोटि-कोटि सागरोपम स्थिति जब अवशेष रहती है तो उस समय इस आत्मा को 'धम' शब्द प्रिय लगता है। वह सोचने लगती है कि 'धम' कोई अत्यन्त प्रिय तत्त्व है। इसका मूल्याकन आवश्यक है। इससे विश्राम का कुछ असर मालूम होता है। विश्राम नही मिलता है परन्तु आत्मा के परिणामो की धारा अत्यधिक उज्ज्वल होती हुई चलती रहती है तो आखिर मे यथाप्रवृत्तिकरण के साथ अपूर्वकरण की अवस्था बनती है। अपूवकरण आत्मा के ऐसे परिणामो का एक स्वरूप है, जिसके अन्दर इन गाढतम कर्मों का भेदन होता है। अनादिकाल की एक ग्रथि, कर्मों की एक मजबूत गाठ, इस आत्मा के साथ लगी हुई है। इसके खुले बिना, इस ग्रथि के भेदन किये बिना यह आत्मा अपने राजमाग को प्राप्त नही कर सकती। यह ग्रन्थि-भेदन परिणामो के अत्यधिक उज्ज्वलता के समुल्लास मे होता है। वह समुल्लास कभी भी स्वाभाविक बन सकता है। कभी दूसरे के उपदेश से आत्मा को यह पवित्र अवस्था आती है, जिससे कि वह इस ग्रन्थि का भेदन कर के अपूर्व आन द का अनुभव करती हुई शास्त्रीय परिभाषा से यथाप्रवृत्तिकरण के साथ अपूवकरण की अवस्था प्राप्त करके सम्यक्त्व का लाभ, उपशम समकित की प्राप्ति करती है। उस समय जो कुछ शातप्रशात अवस्था अनुभव होती है, वह आत्मा के लिये परम शाति का विश्राम-स्थल है।

कदाचित् किसी आत्मा को स्वाभाविक तौर पर ऐसा प्रसग नही आए तो सत सम्पक से भीतर से पट खुलते हैं, सत-वाणी के

आघात से अन्दर की ग्रथि टूटती है । उस वक्त भी अनादिकालीन मिथ्यात्व नष्ट होकर उस अपूर्वकरण की अवस्था से ही वह क्षयोपशम समकित भी पा सकती है । फिर आगे समकित का स्वरूप समझ कर सम्भवत वह इस स्थान पर आरूढ हो जाती है तो यह भी विश्राति का स्थान है ।

कैसे भी हो परन्तु आत्मा को विश्राम अवश्य चाहिये । शारीरिक श्रम करते हुए मनुष्य जब थक जाता है तो कुदरती तौर पर सध्या के समय वह विश्राम करने के लिए सो जाता है । इसके बिना उसको चैन नही पडता है । जब कभी उग्र रोग का आक्रमण होता है तो चिकित्सक कहते हैं, "भाई, अब विश्राम करो ।" परन्तु यह विश्राम सिर्फ शरीर सम्बधी है ।

आध्यात्मिक जीवन मे जब अत्यधिक कर्मों के रोग की अभिवृद्धि होती है, उस वक्त आध्यात्मिक-चिकित्सक अर्थात् ज्ञानीजन इस कर्म-रोग से युक्त आत्माओ को सबोधित करते हैं कि आप विश्राम कीजिये । परन्तु यह विश्राम शरीर को निश्चेष्ट करने का नही, यह विश्राम तो सुदेव, सुगुरु और सुधर्म के श्रद्धान का होता है । वास्तविक ज्ञान, सच्चा श्रद्धान और सच्चे धर्म का स्वरूप, पाच और पांच दस सरीखी अवस्था जिस वक्त आत्मा के अन्त करण में प्रवेश करती है, उस वक्त वह कितनी शाति का अनुभव करती है, यह तो ऐसा करने वाली आत्मा ही अनुभव कर सकती है ।

मगध सम्राट श्रेणिक रात और दिन सांसारिक विषयों मे उलझा हुआ रहता था । उसको विश्राम स्थान का प्रथम सोपान भी नही मिला था । वह नास्तिक प्रवृत्ति के साथ अपने जीवन का सम्बन्ध लेकर चल रहा था । परन्तु सहसा उसने अपने ही बगीचे में एक दिव्य स्वरूप महात्मा को देखा । उनके प्रथम दर्शन से ही

उस ऐतिहासिक सम्राट के मन मे जो विश्राम के क्षण उपलब्ध हुए, उसका अनुभव उसने किया।

मुनिराज के मौन था। उनकी ध्यानस्थ-मुद्रा का सम्राट ने प्रथम अवलोकन किया तो सहसा उसके मुह से निकल पडा—

अहो वण्णो अहो रूव, अहो अज्जस्स सोमया।
अहो खंति अहो मुत्ती, अहो भोगे असगया॥
(उत्तराध्ययन २०/६)

अहो, क्या ही पूण तरुणाई की अवस्था मे रूप-सम्पन्न वण-सम्पन्न ये महात्मा ध्यान-मुद्रा मे स्थित हैं! इस तरुणाई की अवस्था मे कितनी सौम्यता है! पाचो इन्द्रियो के भोगो मे अनासक्ति से इनका जीवन कितना निस्पृही बना हुआ है! ऐसा तरुण तो मैंने कभी नही देखा। तरुण होते हुए भी ये शरीर से निममत्वो और शात भाव से ध्यान मे स्थित होकर मेरे मन को आह्लादित कर रहे हैं।

मगध सम्राट का मस्तिष्क अपने वैभव की गर्मी से थका हुआ था। उसके मस्तिष्क मे अपने रूप का भी वडा गर्व था। वह अपने रूप के पीछे दूसरो को कुछ भी नही समझता था। उसकी कल्पना थी कि मेरे मुकाबले का रूपवान, वभववान और वणवान अन्य कोई व्यक्ति नहीं है। मैं ही सब कुछ हू। मैं क्यो आत्मा-परमात्मा मे विश्वास करूँ? दुनिया मुझको नमती है तो मैं किसको नमन करूँ?

प्रथम विश्राम स्थल पर प्रवेश करने के पश्चात् जब मगध-सम्राट प्रभु के समवसरण मे पहुचा तो उसके (मगध-सम्राट के) रूप को देख कर कई त्यागी पुरुष और महिला वग आश्चर्यचकित से रह गये। वस्तुत उसका रूप लावण्य वसा ही था। परन्तु

सम्राट ने जब उस तरुण तपस्वी को देखा तो उसकी सारी थकान समाप्त हो गई। व्यक्ति किसी भी विषय मे आश्चय तभी करता है, जबकि वह दूसरे व्यक्ति को अपने से अधिक पाता है। मगध-सम्राट तो अपने शरीर पर गव कर रहा था परन्तु फिर भी उसको आश्चय हुआ कि उससे बढ कर मुनि का रूप है मुनि की आकृति है। इस पर भी सोने मे सुगन्ध के तुल्य विशेष बात यह थी कि वे शात-दात थे, वे समस्त विषयो का त्याग करके परम साधना के योगों मे परम शांति के स्थान पर विराजमान थे।

ऐसे महात्मा के निमित्त से मगध सम्राट प्रथम विश्राम-स्थान मे प्रवेश करते हैं और इसके पश्चात् वे अपने जीवन मे आगे बढते हैं। इस प्रकार का विश्राम-स्थान यदि ससार के व्यक्तियों को मिल जाए तो वे भी अपने प्रारंभिक जीवन म शांति के क्षणो का अनुभव कर सकेंगे।

एक व्यक्ति जन्माध है। जन्म से ही उसको आंखो मे रोशनी नहीं है। परिवार में अन्य कोई सदस्य उसको सभालने वाला भी नही है। इधर वह वृद्धावस्था से भी जर्जरित हो गया है। वह व्यक्ति लाठी के सहारे अपनी शौचादिक क्रिया की निवृत्ति के लिए शहर से बाहर जाना चाहे तो वह दीवार के सहारे सहारे चलता है। परन्तु इधर तो शारीरिक ताकीदी और उधर आखो मे रोशनी नही। ऐसी स्थिति मे द्वार नही मिले तो उस व्यक्ति को कितनी हैरानी और थकान अनुभव होती होगी, यह तो वही जान सकता है। यदि सहसा उसके नेत्र खुल जायें तो उस व्यक्ति को कितना आनद आएगा, उसको कितना विश्राम मिलेगा, कितनी शांति मिलेगी, यह भी वही जान सकता है।

वैसे ही मिथ्यात्व के रोग के कारण यह आत्मा जन्माध व्यक्ति की तरह बनी हुई है और इस ससार की दीवार के सहारे

जजरित होकर चल रही है। इसको सहारा देने वाला वस्तुत देखें तो कोई नहीं है। यह अपने आपकी स्थिति मे भटक रही है। यदि सहसा इसके समकित नेत्र खुल जायें तो इसे चरम आनन्द का अनुभव हुए बिना नहीं रहेगा। इसीलिए प्रथम विश्राम स्थान को शांत-प्रशात की उपमा दी गई है।

दूसरा विश्रामस्थान वह होता है, जबकि व्रत ग्रहण किया जाता है। व्यथ के पापो का परित्याग करके व्यक्ति जब यथासभव बारह व्रत अथवा एक, दो, तीन या चार व्रतो को ग्रहण करता है तो वहा भी शास्त्रकारो की दृष्टि से विश्राम का स्थान है क्योंकि इस प्रकार पापो से छुटकारा मिल सकता है।

किसी व्यक्ति के ऊपर कर्ज है और वह व्याज से दवा जा रहा है। यदि सहसा उसको कर्ज से मुक्ति मिल जाये तो उसको कितने आनन्द का अनुभव होगा ? वह भी विश्राम पाता है। वसे ही व्यथ के पापो के कज से आत्मा दबती चली जा रही है और उसकी अव्रत की क्रियायें व्याज के रूप मे अनादिकाल से लगी हुई आ रही हैं, जिससे कि वह पनप नही पा रही है। जब सतो की सगति मे आकर और आत्म स्वरूप को समझ कर वह पापो का त्याग करती है तो निश्चय ही वह अपने सिर के भार को हल्का करके विश्राम का अनुभव करती है।

गृहस्थ मे रहने वाले व्यक्ति के लिए अड़तालीस मिनट की सामायिक भी विश्राम है। साथ ही साथ पौषधव्रत भी ग्रहण किया जाये-कम से कम महीने मे छ पौषधव्रत। बडे-बडे श्रावकों ने पौषध व्रत ग्रहण किए हैं—जिनकी सपत्ति और वैभव का ज्ञान किया जाए तो आज का मनुष्य आश्चर्य किए विना नही रहगा। परन्तु सपत्ति और वैभव होने पर भी वे उनमें आसक्त नही बने। उन्होने व्रत ग्रहण किए, सामायिक की और महीने के छ पौषध

की आराधना की । आनन्द एक ऊँचे दर्जे के श्रावक हो गए हैं । उनके वैभव की स्थिति की आप कल्पना तक नही कर सकते हैं । पाच सौ 'हलवा' तो उनके पास जमीन थी । एक 'हलवा' अढाई बीघे का होता है । गायो के चार गोकुल उनके पास थे । एक-एक गोकुल मे दस दस हजार गाये थी । आप कल्पना तो कीजिए कि जिनके पास इतना बाह्य-वैभव हो उन व्यक्तियो को विश्राम स्थान का क्या ध्यान भी आ सकता है ? क्या वे कभी आत्मा और परमात्मा का चिंतन करने के साथ महीने मे छ दिन साधु की तरह जीवन बिताने को तयार हो सकते हैं ? ऐसे बिरले ही व्यक्ति निकल पाते हैं । इस पचम काल मे तो और भी बडी विकट समस्याए हैं । नास्ति फिर भी नही है । जहा आत्मा की जागृति अन्त -करणपूर्वक होती है वहां व्यक्ति इन वैभवों से घृणा करने लगता है और अपनी आध्यात्मिक जागृति की तरफ विशेष ध्यान देता है ।

मेरे भाई बहिन शक्ति क अनुसार ऐसा करते हैं और उन्हें करना ही चाहिये । यदि उन्हें आत्मिक शाति का अनुभव करना है, विश्राम पाना है तो जीवन को व्यथ नही गवाना चाहिये । यदि आप इस वक्त ही ऐसा नही करेंगे तो फिर कब करेंगे ? आप अपने जीवन को देखिए । वतमान जीवन मिला है और वह चला जाने वाला है । आप आराधना की दृष्टि से जीवन में साधना करें । फिर आपको पता लगेगा कि हम किसी विश्राम के स्थान की ओर जा रहे हैं । यदि यह अमूल्य जीवन हाथ मे से निकल जायेगा तो फिर पछताने से कुछ भी बनने वाला नही है ।

एक साधक अपनी साधना करने की दृष्टि से सोचने लगा कि मुझे पूर्ण विश्राम का स्थान, साधुत्व ग्रहण करना है । परन्तु पहिले मैं साधुत्व को परिपक्व बनाने के लिये कुछ साध लू । अत वह जगल मे गया और साधना करने लगा ।

सयोगवश उसको जगल मे पारस का एक टुकडा मिल गया। उसको पता था कि इस टुकडे को यदि लाहे के साथ सम्बन्धित कर दिया जाए तो लोहा भी सोना बन सकता है। परन्तु उसने सोचा कि अब मुझ इससे करना क्या है ? मैं तो अभी साधना के क्षेत्र की तैयारी कर रहा हू। यदि मैं काफी लोहे को सोना बना कर अपने पीछे छोड गया तो भी उससे कुछ बनने वाला नही है। फिर भी उसने पारस को उठा लिया।

अब वह अपने मन का परीक्षण करने को दृष्टि से फक्कड होकर चल रहा था। अत सीधी-सादी अवस्था मे उसने एक नगर मे प्रवेश किया। उसने अपने मन मे सकल्प कर रखा था कि मेरी सादगी और साधना की स्थिति कोई स्वय अनुभव करे और मुझे भोजन के लिये स्वय कहे तो भोजन ग्रहण करना है, अन्यथा नही। अभी तो मैं गृहस्थ ही हू, पूण साधु नही बना हू। अत मै स्वतन्त्र हूँ। मैं पर-घर मे मागने की स्थिति मे नही हूँ।

वह शहर मे गया और सवत्र घूम कर निकल आया परन्तु किसी की दृष्टि उस सीधी सादी पोशाक वाले पर नही पडी।

जब वह लौट रहा था तो सहसा एक द्वार उसके सामने आया। जहा एक भडभूजा भूगडे वेच रहा था। वह अपना काय करते करते उस परदेशी को देखता है। बाहरी वैभव उसके पास नही था परन्तु उसकी दृष्टि मे अनूठी शक्ति थी। वह उस व्यक्ति को पहिचान गया। उसकी आकृति से उसके अन्दर का अनुमान लग गया। वह सोचने लगा कि यह उन्नत भावना की ओर जाने वाला कोई न कोई पवित्र साधक मालूम होता है। इसकी आकृति बडी भव्य है। इसकी दृष्टि मे चपलता नही है। यह साधना की दृष्टि से जीवन मे ऊँची कामना लेकर चल रहा है। क्या ही अच्छा हो कि इस व्यक्ति का मैं यथायोग्य सत्कार करूँ।

भडभू जा अपने छोटे से घये को छोड कर राजमाग पर खडे हुए उस अपरिचित साधक को प्रणाम करता है और कहता है—"महाशय जी, मेरी कुटिया को पावन कीजिए। मैं आपके चरणा में अपनी कुछ सेवा अर्पित करना चाहता हूँ।"

भडभू जे की विनम्र वृत्ति को देख कर वह साधक सोचने लगा, "यह स्वय मेरे जीवन को देख कर प्रभावित हुआ है। मेरा इससे कोई परिचय नही है। यह भोजन के लिए कहता है तो मुझे स्वीकार कर लेना चाहिये।"

साधक उसके घर पर पहुँच गया। उस गरीब के पास दूकान मे जो कुछ भी था, भीलनी के बेरा की तरह उसने लाकर साधक का सत्कार किया। साधक ने प्रेम और स्नेह के साथ उसके सत्कार को स्वीकार कर लिया।

साधक सोच रहा है कि मुझे साधुव्रत की पूण अवस्था पाने के पहिले अठारह वर्षों तक कुछ ऐसी झाडियों और गुफाओ में रहना है, जहा कि मैं अधिक से अधिक मन को वश मे कर सकू और आत्मा की शांति अनुभव कर सकू। मैं जगल में जा रहा हू तो यह पारस का टुकडा मेरे क्या काम आएगा? यदि इसे लेकर मैं गया भी तो रात दिन इसकी तरफ मेरा ध्यान जाएगा और मैं अपनी साधना पूरी नही कर पाऊगा। यह भडभू जा गरीब है और इसने नि स्वाथ भाव से मेरा सत्कार किया है। यह पारस इसी को सौंप दिया जाए तो यह सुखी हो जाएगा। फिर अठारह वर्षों के बाद जब मं आऊगा तो इसको लेकर कुछ लोहे का सोना बना डालूगा और उसे ऐसे ही गरीब लोगो को बांट दूगा। इस प्रकार पूण साधु की स्थिति से मं इस आत्मा के चरम विश्राम स्थान को प्राप्त कर लूगा।

इस विचार से पूरित होकर वह उस भूगडे बेचने वाले को बोला, "भाई, यह लो। मेरे पास और तो कुछ नही है। बस, यह छोटा सा पत्थर का टुकडा है। परन्तु यह बहुत कीमती है। यह पारस का टुकडा है। यदि लोहे के साथ इसका सयोग कर दिया जाये तो लोहा भी स्वण बन जाएगा। अठारह वर्षों तक तुम जितना चाहो, उतना सोना बना लेना और फिर मुझे यह वापस दे देना।"

इस प्रकार पारस को सदुपयोग मे लगाने के लिए उसने उसे भडभूजे को दे दिया। वह गरीब आदमी भी खुश हो गया। उसने पारस का टुकडा लेकर साधक को विदा कर दिया।

भडभूजे ने सोचा कि अब क्या है, अब तो मैं दुनिया भर के लोहे का सोना बना सकता हूँ। उसने पारस को सुरक्षित स्थान पर रख दिया और फिर वह बाजार मे जा पहुँचा। वहां लोहा बेचने वाले की दूकान पर जाकर उसने लोहे का भाव पूछा। पुराने जमाने की बात है। लोहा बेचने वाले ने कहा, "भाई, पन्द्रह रुपए का भाव है।" उसने सोचा कि अभी कुछ दिन बाद जब लोहा सस्ता हो जाएगा तब खरीद लूगा। अभी ऊचे भाव का लोहा क्यो खरीदू ? वह घर चला आया और अपना काय करते हुए खुशिया मनाता रहा कि वह जब चाहे लोहे को सोना बना लेगा।

कई महीने बीतने पर एक दिन फिर बाजार में पहुँचा और लोहे का भाव पूछा तो मालूम हुआ कि तेरह रुपए का भाव था। उसने सोचा कि अभी तो भाव अधिक है। पहिले पन्द्रह था और अब तेरह हो गया है। भाव और उतर जायेगा तब सोना बना लूगा।

कुछ वर्षों के बाद वह फिर बाजार मे पहुचा तो लोहे का

भाव आठ रुपए था। उसे यह भी अधिक प्रतीत हुआ। ऐसा करते-करते उसने छ रुपए तक का भाव देख लिया। फिर भी उसने सोचा कि अभी नही, जब दो-तीन रुपए का भाव हो जाएगा, तब सोना बनायेंगे।

ऐसा करते करते इरादे-ही-इरादे में अठारह वर्ष पूरे हो गए और वह एक तोला भी सोना नही बना सका। समय पर अचानक वही साधक आ गया। उसने कहा, "लाओ भाई, पारस का वह टुकडा।" भडभूजा ईमानदार था। उसने कहा, "मैं तो कुछ भी नहीं कर सका।" साधक ने कहा, "तुम कुछ भी नहीं कर सके तो अब मैं क्या करू? अरे! इतने वर्षों तक यह तुम्हारे पास पडा रहा, फिर भी तुम इसका कोई फायदा नही उठा सके!"

यह तो एक रूपक है। उस भडभूजे की गरीबी मिटाने के लिए साधक ने उसे पारस का टुकडा दिया था, परन्तु उसने प्रमाद, आलस्य और लोभ के वशीभूत होकर चक्कर ही चक्कर मे सारा समय खो दिया और सोना नही बना सका। अब कितना ही प्रयत्न करे तो भी क्या वह टुकडा उसे मिलने वाला है?

ऐसे ही आज का यह मनुष्य तन पारस के टुकडे से भी अधिक महत्त्वपूर्ण है। इसमें आत्मा को सोना बनाने का प्रसग है। सामायिक, पौषध, व्रत नियम आदि धारण करके विश्राम-स्थान पर पहुँचने की नितान्त आवश्यकता है। परन्तु मेरे भाई बालक-अवस्था मे सोचते हैं कि अभी क्या है? अभी तो खाने पीने की अवस्था है, खेलने-कूदने की अवस्था है। जवानी आएगी तब देखेंगे। और जब जवानी आ गई तब सत कहते हैं, "भाई, अब तो विश्राम स्थान पर पहुँचोगे?" इस पर वे कहते हैं, "महाराज, अभी तो जवानी है। खाने-कमाने और मौज-शौक के दिन हैं।

अभी तो शरीर में ताकत है। हा, जब वृद्धावस्था आएगी, तब वहा पहुचेगे ?"

ऐसा करते-करते जब वृद्धावस्था आ पहुचती है और सत कहते हैं कि अब तो कुछ करो। वे कहते हैं, "महाराज, अभी तो बाल-बच्चों की शादी करनी है। धर्म और आत्मा परमात्मा की बातें तो फिर करेंगे। जब साठ वर्ष के हो जाते हैं और सत कहते हैं कि अब तो कुछ करो। तब वे कहते हैं, "महाराज, कुछ तो करेंगे। परन्तु क्या करें, ही समय नही मिलता। बच्चे काम करते हैं परन्तु वे दूकान मे कुछ बिगाड न कर डालें, इस चिन्ता से वहा का काम भी देखना पडता है। मन उधर ही लगा रहता है"

जब ऐसी स्थिति हो तो क्या कहा जाए ? क्या वे मनुष्यतन रूपी पारस की कद्र कर रहे हैं ? वे विश्राम कर रहे हैं या अशाति के झूले मे झूल रहे हैं ? ऐसे व्यक्तियो को अपने जीवन की कीमत नही है। प्रभु के चरणो मे पहुँच कर इन्हें विश्राम करना चाहिये परन्तु ये तो और अधिक थकान महसूस करके ससार मे परिभ्रमण करने की ही सोच रहे हैं।

आप स्वय बुद्धिमान हैं। जीवन की लगन है तो कुछ सोचिए। जिनके जीवन मे इस प्रकार की समझ आ गई है कि यह जीवन पारस के समान मिला है तो उन्हें चाहिए कि वे इसे भगवान के रास्ते पर पहुँचा देवें।

चौथी अवस्था में भी यदि आत्मा और परमात्मा की साधना तथा कर्मों के विश्राम-स्थान की ओर बढने का मौका मिल जाए तो जिंदगी की चौथी अवस्था तो शांतिपूर्ण हो सकती है। यदि ऐसा किया जाय तो अतिम समय मे हाय-हाय करते नही जाना

पडेगा, जैसे कि वह मरुभू जा हाय हाय करते वैसा का वैसा ही रह गया।

पश्चात्ताप न करना पडे, इससे पहले ही प्रथम विश्राम स्थान पाने के लिए कोशिश करनी चाहिये। यह सबका काम है। जिन व्यक्तियो ने इस स्वरूप को समझ लिया है, वे सम्यक् दृष्टि के विश्रामस्थान को पा गए हैं।

●

बीकानेर—
स० २०३०, श्रावण शुक्ला ६

समता-जीवन-दर्शन

दु ख दोहग्ग दूरे टल्या रे, सुख सपवशु भेंट,
धींग धणी माथे कियो रे, कौण गजे नर खेट ?
विमल जिन दीठा लोयण आज, मारां सिध्यां वांछित काज।

विमल परमात्मा की प्रार्थना आत्मिक विमलता प्राप्त करने के लिए की जा रही है। जब तक आत्मा मल-रहित नहीं बनती, तब तक उसे वास्तविक आत्मिक साम्राज्य के दर्शन नही होते। जीवन मे अनेक तरह के प्रसग आया करते हैं परन्तु उन प्रसगो के बीच भी यदि व्यक्ति की शुद्धवृति बनी रहे और वह जीवन की चरम सीमा के निर्मल स्वरूप को सामने रख कर गतिशील रहे तो अवश्य ही वह परमात्मा के दर्शन कर सकता है।

जिस आत्मा मे से मल, विक्षेप और आवरण नाम के तीन दूषण हट गए हैं, वही आत्मा विमलनाथ के नाम से प्रयुक्त हुई है। जिनको शुद्ध स्वरूप मे विद्यमान अनन्त अव्याबाध सुख का अनुभव हो रहा है, उन सब आत्माओ को विमलनाथ के नाम से पुकारा जा सकता है। जिस साधक के मन मे पूर्ण विमलता का लक्ष्य स्थिर हो गया है, वह साधक भी उस निर्मलता को पाने के लिए अपने जीवन के प्रत्येक छोर को देखने की कोशिश करेगा और इस बात का ध्यान रखेगा कि मेरे वर्तमान जीवन मे कहा मलिनता है और कहा निर्मलता है ?

मलिनता का रूप तो प्राय सर्वत्र दृष्टिगत हो रहा है। इस मलिनता के विषवृक्ष के कारण ही व्यक्ति मे विषमता है और व्यक्ति की विषमता परिवार तथा समाज को प्रभावित कर रही

पडेगा, जैसे कि वह भडभू जा हाय हाय करते वैसा का वसा ही रह गया।

पश्चात्ताप न करना पडे, इससे पहले ही प्रथम विश्राम स्यान पाने के लिए कोशिश करनी चाहिये। यह सबका काम है। जिन व्यक्तियो ने इस स्वरूप को समझ लिया है, वे सम्यक् दृष्टि के विश्रामस्थान को पा गए हैं।

बीकानेर—
स० २०३०, श्रावण शुक्ला ६

समता-जीवन-दर्शन

दु ख दोहग्ग दूरे टल्या रे, सुख सपदशु भेंट,
धींग धणी माथे कियो रे, कौण गजे नर खेट ?
विमल जिन दीठां लोयण आज, मारां सिध्यां वांछित काज।

विमल परमात्मा की प्रार्थना आत्मिक विमलता प्राप्त करने के लिए की जा रही है। जब तक आत्मा मल-रहित नहीं बनती, तब तक उसे वास्तविक आत्मिक साम्राज्य के दर्शन नही होते। जीवन मे अनेक तरह के प्रसग आया करते हैं परन्तु उन प्रसगो के बीच भी यदि व्यक्ति की शुद्धवृत्ति बनी रहे और वह जीवन की चरम सीमा के निर्मल स्वरूप को सामने रख कर गतिशील रहे तो अवश्य ही वह परमात्मा के दर्शन कर सकता है।

जिस आत्मा मे से मल, विक्षेप और आवरण नाम के तीन दूषण हट गए हैं, वही आत्मा विमलनाथ के नाम से प्रयुक्त हुई है। जिनको शुद्ध स्वरूप मे विद्यमान अनन्त अव्याबाध सुख का अनुभव हो रहा है, उन सब आत्माओ को विमलनाथ के नाम से पुकारा जा सकता है। जिस साधक के मन मे पूर्ण विमलता का लक्ष्य स्थिर हो गया है, वह साधक भी उस निर्मलता को पाने के लिए अपने जीवन के प्रत्येक छोर को देखने की कोशिश करेगा और इस बात का ध्यान रखेगा कि मेरे वर्तमान जीवन में कहा मलिनता है और कहा निर्मलता है ?

मलिनता का रूप तो प्राय सर्वत्र दृष्टिगत हो रहा है। इस मलिनता के विषवृक्ष के कारण ही व्यक्ति मे विषमता है और व्यक्ति की विषमता परिवार तथा समाज को प्रभावित कर रही

है। परन्तु समाज में यदि इस विष-वृक्ष की विषमता पनपने लगी तो समूचा राष्ट्र उससे अछूता नहीं रह सकता। यदि राष्ट्र इस विषमता के विषांकुर से व्याप्त हो जाता है तो सम्पूर्ण विश्व इसकी छाया से व्याप्त हुए बिना नहीं रह सकता। इस मलयुक्त अवस्था ने ही विषमता को पनपाया है परन्तु इस विषमता को समाहित करने के लिये इस के प्रतिपक्षी तत्त्व को समक्ष रखा जाए तो विषमता का विषांकुर समता के रूप में परिणत हो सकता है।

इस जीवन के अनुसंधान में यदि सही तरीके से चिंतन किया जाए तो मानव का चरम लक्ष्य समता का ही बनता है। वह विमलता के धरातल पर समता की चरम सीमा पर पहुंचने की कोशिश करे तो अपने जीवन के अणु अणु में आत्मा की पूर्ण निर्मलता और समताप्राप्ति की साधना कर सकता है।

मस्तिष्क जीवन का महत्त्वपूर्ण क्षेत्र है। उसमें विषमता के विष वृक्ष का अंकुर भी है और समता का पौधा भी है। दोनों का स्थल एक ही है, जैसे कि एक ही भूमि में अफीम भी बोई जा सकती है और गन्ने का पौधा भी उगाया जा सकता है। परन्तु यदि गन्ना उपजाना है तो अफीम की खेती को हटाना होगा और उस जमीन को साफ-सुथरी बना कर सम अवस्था में लाना होगा। अफीम सम्बन्धी विषम तत्त्व को हटा कर यदि गन्ने का पौधा आरोपित किया जाता है तो उसी धरती से अमृत तुल्य गन्ने की मधुरता उपलब्ध हो सकती है।

मनुष्य के मस्तिष्क की इस उपजाऊ भूमि में अफीम के तुल्य मल, विक्षेप और आवरण की खेती लहलहा रही है, जिसके परिणामस्वरूप आत्मा सन्त्रास पा रही है और उसे शांति के क्षण नहीं मिल रहे हैं। जिधर देखो उधर अशांति का जाल ही दृष्टिगत

हो रहा है। ऐसी जगह पर, यदि समता रूपी इक्षु-रस की खेती उपजाना है तो उस मल, विक्षेप और आवरण रूपी अफीम को साफ करना होगा और मस्तिष्क की तमाम विचारधाराओं को समता सिद्धांत से ओतप्रोत करके उसे समतल बनाना होगा। मनुष्य का मस्तिष्क समता-सिद्धात से परिमार्जित होना चाहिए। इस समता सिद्धात-दर्शन में समस्त मानव जाति का समावेश है, संपूर्ण विश्व की समता का बीज इसमे समाया हुआ है।

यदि मनुष्य का मस्तिष्क समता-सिद्धात दर्शन से आप्लावित होकर शुद्ध बन जाय तो वह उनमे समता सिद्धांत दर्शन का बीजारोपण कर सकता है और यह बीज यदि उस शुद्ध भूमि मे बो दिया गया तो जीवन का कोई भी भाग उस समता-दर्शन से अछूता नहीं रहेगा।

यदि व्यक्ति के मस्तिष्क में समता जीवन दर्शन का बीज अंकुरित हो गया है तो उसकी वाणी मे समता का प्रवाह बहने लगेगा, उसके नेत्रो से समता का झरना बहेगा, उसके कानो मे समता का नाद गूंजेगा, उसके हाथ समता के कार्य मे अग्रसर होंगे, उसके पैरों की गति समता-जीवन की साधना मे तत्पर होगी, उसके शरीर के अणु-अणु मे से समता-जीवन दर्शन का प्रकाश फूट पडेगा और वह समता को परम पावनी गगा बहाता हुआ, जन-जन के मन को पवित्र करता हुआ चलेगा।

यद्यपि आपका अतमन अभी विषमता की ओर आकर्षित है लेकिन वह विमलनाथ भगवान के चरणो में पहुचने को तत्पर है। इस तत्परता के साथ आप समता के उस स्वरूप को, जो समता-जीवन-दर्शन के नाम से आपके सामने कुछ नियमपूर्वक आ सकता है, अपनाने की कोशिश करें, जिससे कि आप आध्यात्मिक जीवन के साथ शांत-क्रांति का ऐसा बिगुल बजा सकें, जो अनैतिकता

को पहाड़ियो को तोडता हुआ नैतिकता के साथ आध्यात्मिक जीवन की पवित्र धारा से प्रत्येक मानव के अन्दर आनन्द उत्पन्न करने वाला बन जाये।

इसके लिए कथनी की उपेक्षा आचरण की आवश्यकता विशेष है। कथनी और करनी में यदि सामजस्य आ जाता है, व्यक्ति जैसा कहता है, उसी के अनुरूप यदि उसे शक्ति के अनुसार आचरण मे लाता है तो उसका जीवन किसी भी क्षेत्र मे रहे, वह चमके विना नहीं रहेगा।

व्यक्ति के अन्दर समता-जीवन दशन आ सकता है। जव व्यक्तियो का समूह मिल जाएगा तो समता-सूचक-दर्शन की अवस्था बनेगी और यही आगे बढ कर विश्व की शांति का एक अमोघ उपाय प्रसारित कर सकेगा। समता जीवन दशन को आप सिफ वाचिका दृष्टि से नहीं सुनें परन्तु उसको जीवन के अन्त-करण के धरातल पर उतारते हुए सुनें।

समता जीवन दशन के बिना शाति होने वाली नही है। अन्य अनेक प्रयत्न चाहे किसी धरातल पर होते हों, वे किसी भी लुभावने नारे के साथ हो परन्तु जीवन में जब तक समता दर्शन नही होगा, तब तक वे सब नारे केवल नारो तक ही सीमित रहेंगे और उनके साथ विषमता की जड़े हरी होती हुई चली जायेंगी। इसलिए समता जीवन दशन को मुख्यतया अपने जीवन मे उतारने के लिए तत्पर हो जाते हैं तो मानव जीवन मे एक नए आलोक और एक नई शात-क्रांति का प्रादुर्भाव हो सकता है। समय समय पर शात क्रांति का शखनाद करने वाले ऐसे महापुरुष हो गये हैं। वे त्यागीवग मे से भी आए हैं गृहस्थो मे से भी। ऐसे व्यक्तियों ने समाज के प्रांगण में शात क्रांति को तीव्र गति दी है।

मैं प्राय आपके समक्ष त्यागीवर्ग का विषय रखता हूं और उस शात क्राति के हेतु त्यागीवग की विचारधारा मे आप लोगो का जीवन ढलता हुआ सा जा रहा है। आचार्यश्री हुकमीचदजी म० सा० ने शात क्राति का बीज वपन किया और निग्रन्थ श्रमण-सस्कृति की स्थिति को सुदृढ बनाया। उन्होने साध्वाचार मे समता के बजाय जब विषमता की जडें हरी होती देखी, नियमो की अवहेलना होती देखी, साधु-मर्यादा का पूर्णतया पालन होते हुए नही देखा तो उनकी आत्मा तिलमिला उठी। वे चले थे स्व-कल्याण की इच्छा से परन्तु उनकी क्राति की यह पावन धारा जनमानस को पवित्र करती हुई बहने लगी और उनके पीछे, एक के बाद एक, महापुरुषो की शृखला उस पवित्र क्राति की धारा के साथ जुडती ही गई।

हम ऐतिहासिक दृष्टि से अवलोकन करते हैं तो पता चलता है कि पूर्वकाल मे भी बारहवर्षीय दुष्काल मे जब समाज मे विषमता ने पैर फैलाए, अनैतिकता के कारण मानव-जीवन बिगडने लगा और अनैतिकता का बोलबाला धार्मिक क्षेत्र मे भी प्रवेश कर गया तो ऐसे मौके आए कि गृहस्थो मे से भी बुद्धिशाली व्यक्तियो ने सक्षमता के साथ उस शात क्राति की आवाज को बुलद किया।

जो बाहरी रत्नो को परखने की शक्ति रखते हैं, वे अन्दर के रत्नो को भी पहिचानने की कोशिश करें। स्वर्गीय आचार्य श्री गणेशलाल जी महाराज फरमाते थे कि जिसका दिल बहुत मजबूत होता है, वही व्यक्ति रत्नो को परख सकता है। रत्नो का व्यापारी होना सहज नही है। इस व्यापार के साथ कई व्यक्ति पत्थर सरीखे हृदय के अर्थात् आध्यात्मिक जीवन से शून्य बन जाते हैं। परन्तु जिनका जीवन इन रत्नो के साथ आसक्त नहीं है,

वे रत्नों के परीक्षण के साथ-साथ जीवनरत्नो को पहिचानने मे भी सक्षम बन जाया करते हैं।

अहमदाबाद के प्रसिद्ध सेठ जो लोंकाशाह के नाम से ऐतिहासिक पृष्ठों मे प्रख्यात हैं, एक जौहरी के पुत्र थे। उनकी भी *जीवन गाथायें गजब ढग की थी।* उनके पिताश्री ने कुछ बहुमूल्य हीरे खरीदे। उन्होने सोचा कि यह बहुत कीमती हैं, अत जितनी सम्पत्ति थी, वह सब उन हीरो के खरीदने मे लगा दी गई।

उनके परिवार मे जौहरी जी स्वयं, उनकी धमपत्नी और एक पुत्र ये तीन ही प्राणी थे। कालान्तर मे उनको ज्ञात हुआ कि *मैं ठगा गया हू। यह तो कच्चा (झूठा) माल है। ये कांच के* टुकडे हैं। मेरी दृष्टि चूक गई और मैंने सारी सम्पत्ति इसमे *लगा दी।*

इसी चिंता ने उनके जीवन को झकझोर दिया। अन्ततोगत्वा वे मरणासन्न स्थिति मे पहुँच गये। मरने से पहिले उन्होंने अपने परिवार से कहा कि मैंने बहुमूल्य नगीने खरीद रखे हैं। जब कभी आवश्यकता हो तो मेरे मित्र अमुक जौहरी के माध्यम से इनका विक्रय करवा कर अपने जीवन की स्थिति को ठीक रखना। *उन्होंने सोचा कि मैं तो ठगा गया* परन्तु पत्नी के सामने यह बात कह दी तो उसका दिल बैठ जाएगा और यदि पुत्र को कह दूगा तो उसकी क्या दशा होगी? अत उन्होंने यह बात मन मे रखी और वे काल कर गए।

उनका पुत्र अभी विद्याभ्यास कर रहा था। आर्थिक स्थिति कमजोर हो चुकी थी। खाने पीने के साधन कम होने लगे। तब माता ने नगीना देते हुए पुत्र से कहा, "अमुक जौहरी जी तेरे पिता के मित्र हैं, उनके पास इस नगोने को रख कर कुछ रुपये ले आ, *जिससे कि अपना काम चल सके।'*

बालक नगीना लेकर जौहरी जी के यहा गया और बोला कि माता ने कहा है कि आप इस नगीने को अपने पास रख कर कुछ रुपए दे दीजिये। जौहरी जी नगीने को देखते ही पहिचान गए कि यह खरा नही है। परन्तु इस वक्त यह बच्चा लाया है, अत इसे ऐसा कहूगा कि यह नगीना खोटा है तो मुझ पर इसकी माता विश्वास नही करेगी और सोचेगी कि अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए ऐसी बात कही है। अत उन्होने यही कहा कि तुम इसको अभी तिजोरी मे ही रखो। जब प्रसग आएगा, तब इसे बचेंगे। परन्तु कल से तुम यहा दूकान पर बैठो और जवाहिरात का धधा सीख कर अपनी आजीविका चलाओ। बालक ने वैसा ही किया। जौहरी का बच्चा जौहरी ही निकला और उसने जवाहिरात के धधे मे जल्दी ही प्रवीणता प्राप्त कर ली।

उस समय राजाओ का जमाना था। राजा लोग बहुमूल्य हीरे मोती खरीदा करते थे। एक बार महाराजा ने बाहरी व्यापारियो से माल खरीदने की दृष्टि से अपने नगर के जौहरियो को इकट्ठा किया। बाहर के व्यापारियो के पास कुछ मोती थे। वे खरे हैं या खोटे, इस बात की परीक्षा करने के लिए एक कमेटी बनाई गई तो जौहरी का यह लडका भी वहा पहुँचा। सब जौहरियो ने मोतियो की परख करके कहा कि प्रत्येक मोती सवा सवा लाख रुपयो का है।

यह लडका भी वही गभीर आकृति धारण किये बैठा हुआ था। महाराजा की दृष्टि इस पर गई तो उन्होने पूछा कि यह कौन है? उन्हें बतलाया गया कि वह भी जौहरी है। महाराजा ने इससे पूछा, "तू क्यो नही बोलता है?" इसने निवेदन किया, "मेरे बुजुर्ग बोल चुके हैं तो मैं अब क्या कहू?" इस पर उसे कहा गया कि तुमको भी बोलने का हक है, तुम भी कुछ कहो। इस पर

उसने कहा, "महाराज, क्षमा करें । इन मोतियों में से दो मोती तो खरे हैं और और सवा सवा लाख की कीमत के हैं परन्तु तीसरा मोती तो सवा कोडी का भी नहीं है ।

यह सुन कर सबको आश्चय हुआ और वे उसकी ओर देखने लगे । बेचने वाले व्यापारी भी मलिन भावना से कुछ का कुछ सोचने लगे, चितन करने लगे ।

उस वक्त महाराज ने सोचा कि यह लडका जो कुछ कह रहा है, उसमें तथ्य होना चाहिए । इसकी बुद्धि मे कुछ पनापन है । इससे पूछा गया कि मोतियों की परीक्षा कसे की तो इसने उत्तर दिया, "महाराज ! मैंने अपनी दृष्टि से परख की है । इस मोती को बिंधवाया जाये । यदि यह फूट जाय तो समझ लीजिये कि यह खोटा है ।

परीक्षा करवाई गई तो वैसा ही हुआ यह देख कर सब जौहरी आश्चय करने लगे कि हमने काफी गहरी दृष्टि से देखा था परन्तु इस लडके की पैनी दृष्टि कितना काम करती है ! वे जौहरी थे । उनके मन मे इस लडके की प्रवीणता को देख कर ईर्ष्या नहीं हुई । वे समता के साथ सोचने लगे कि यह बडे सौभाग्य की बात है कि हमारे बीच में छोटी उम्र का एक ऐसा बालक भी निकला, जो हम सब जौहरियों की लाज बचा सका । उन्होंने इस स्थिति को मान-अपमान का विषय न बना कर समता के साथ चिंतन किया । फलस्वरूप उस बालक का सब जौहरियों का सिरमौर बना दिया गया ।

उस बालक के पिता के मित्र ने जब यह देखा कि वह जवाहिरात की परीक्षा मे पूण प्रवीण हो चुका है तो एक दिन दूकान पर ग्राहक आने पर उसने बालक से कहा "अब तुम अपने पिता के खरीदे हुए नगीने बेच दो ।"

बालक घर पर गया और अपनी माता से बोला, "वे नगीने लाओ, उन्हें बेच देवें।" माता ने नगीने निकाल कर दिये तो उसने देखते ही कहा कि ये तो कांच के टुकडे हैं! मा ने कहा, "अरे, तुम्हारे पिताजी तो कहते थे कि यह खरे हैं।" लडके के उत्तर दिया, "पिताजी कहते थे सो ठीक है परन्तु मैं कहता हूं, वह भी ठीक है।"

माता ने उस पर विश्वास किया। जौहरी जी को मालूम हुआ कि परीक्षण ठीक किया गया है।

इस प्रकार से जवाहिरात के क्षेत्र में तीक्ष्ण बुद्धि का प्रयोग करने वाले जब धार्मिक क्षेत्र मे प्रवेश करते हैं तो वे इन भौतिक तत्त्वों मे लिप्त नही होते। वे चिन्तन करते हैं कि ससार के इन पदार्थों से तो ऊपर की जाच होती है परन्तु आध्यात्मिकता से आतरिक जीवन निमल और पवित्र बनता है।

लोकाशाह ने भी ऐसा ही सोचा और वे सतो की सेवा मे जाने लगे तथा बिना सकोच दिल खोल कर धार्मिक काय करने लगे। वे सोचते थे कि मुझ अपना जीवन निमल बनाना है। समाज का क्षेत्र बडा है। आध्यात्मिक काम किसी एक का नही है। मैं ऐसा करूगा तो मेरा जीवन निमल बनेगा। मुझे अग्रसर होकर सेवा का काय करना चाहिए।

उनकी सेवा की भावना मे अन्दर की पवित्रता के साथ समता की स्थिति थी। अत वे जनमानस मे जल्दी ही प्रतिष्ठित हो गए। सबके मस्तिष्क में उनका व्यक्तित्व समा गया। निर्ग्रन्थो की सेवा का प्रसग आया तो उन्होने दिल खोल कर सेवा की परन्तु जब वस्तुस्थिति का ज्ञान हुआ तो उसमे भी दढतापूवक आगे बढे। कथा-भाग की दृष्टि से अडतालीस बडे बडे गृहस्थो ने त्याग-माग को अपनाने का सोचा और सोचा ही नही, वे आगे भी

आये । उन्होने तत्परता के साथ शात-क्राति का प्रचार और प्रसार किया । यह सब आप ऐतिहासिक पृष्ठो से पढ सकते हैं ।

इस प्रकार समय समय पर त्यागी सतो मे त्यागवृति के शब्द उद्बोधित हुए हैं तो त्यागी गृहस्थवग मे से भी ऐसे लोग आगे आए है । मैं ता अपनी स्थिति से देखता हूँ कि जो भी व्यक्ति अपने जीवन मे गुण ग्रहण करेगा, वह वस्तुत समता-जीवन दशन के साथ ढलेगा और दूसरो के जीवन को भी इस ओर मोडने की कोशिश करेगा ।

इस प्रकार से जीवन में जागृति का प्रसग आए तो युवक क्या पीछे रहेगे ? मैं युवको से कहूगा कि वे दिल दिमाग से उत्साहित हो तथा बिना स्वार्थ भावना के साथ तत्पर होकर समझे । जो समता-जीवन दशन मे सब कुछ लगाने को तत्पर होते हैं, वे सब युवक हैं । उम्र से कोई कैसे भी हो । जहा उत्साह है, वहा तरुणाई है । जो दिल से उत्साही हैं, वे सब तरुण है ।

परन्तु आज का तरुण-वग कानो में तेल डाल कर सोया हुआ है । तरुण सोचते हैं कि धर्म करना तो वृद्धो का काम है । हम को तो राजनीति मे भाग लेना है या नौकरी अथवा व्यवसाय करना है । यह वग जीवन के लक्ष्य को भूला हुआ है । उसको सोचना है कि अपना काम करते हुए भी जीवन के प्राण समता-दर्शन को नही भूलाना है । युवको को तो नये जोश से आगे आकर इसमे अग्रसर होना ही चाहिए और एक दूसरे के दिल को जोतना चाहिए ।

हमको यह जीवन मिला है तो ऐसे ही नही चला जाए, कुछ न कुछ भला तो इस जीवन में अवश्य ही कर गुजरें । अनैतिकता की स्थिति पर चितन करके परिवार और समाज मे समता-जीवन-

दर्शन आए, राष्ट्र और विश्व मे समता जीवन दर्शन आए, ऐसी भावना यदि तरुणो मे आ जाती है और वे जाग जाते हैं तो सब कुछ करके दिखला सकते हैं। परन्तु आज की युवा पीढी जिस रूप मे चल रही है और उसकी जो दशा है, उसको देखकर कभी-कभी विचार होता है कि तरुणो मे जोश है परन्तु इनमे थोडे से होश की जरूरत है। यह आ जाए तो ये कुछ का कुछ करके दिखला सकते ।

युवको मे इस प्रकार की स्थिति हर क्षेत्र मे बननी चाहिए—चाहे वह थली प्रात हो, मालवा हो या अन्य स्थान हो। उनमे एक जागृति आ जाये, क्राति का स्वर आ जाए और वे सोचें कि हमको अपने जीवन में समता-दर्शन अगीकार करके चलना है, हमे आत्मा को जीतना है और समाज मे एक नयी लहर पैदा कर देना है तो उन्हें जीवन के दुर्गुणो को दूर फक देना चाहिए।

आज की युवा पीढी मे कई कुव्यसनो के लाछन है। आज का युवकवर्ग उनका दास बन गया है। वे शरीर से तरुण हैं परन्तु कुव्यसनो की दृष्टि से बूढे हो चुके हैं। यदि जीवन मे बीडी, सिगरेट, तम्बाकू आदि के कुव्यसन हैं तो ये तरुण जीवन को वृद्ध बनाने वाले ही हैं।

क्या यह जीवन के साथ खिलवाड नही है ? क्या जीवन को इस प्रकार से व्यर्थ में बर्बाद करना चाहिए ? जिनके मस्तिष्क मे ऐसे कुव्यसन प्रवेश कर जायें, जो नैतिकता का धरातल भूल कर गिर जायें तो ऐसे युवकों को क्या युवा-पीढी मे लेंगे ? अरे, इनसे तो वे बूढे ही अच्छे हैं, जो कुव्यसनो से दूर हैं और समता जीवन-दर्शन का लक्ष्य बना कर चल रहे हैं। निश्चय ही वे तरुण हैं।

बधुओ ! ऐसे कुव्यसनो से जीवन का कितना ह्रास हो रहा है ! आज डॉक्टर लोग कह रहे हैं कि कैंसर की बीमारी का मुख्य

कारण सिगरेट है। डॉक्टरो के पास इसका इलाज नहीं है। वज्ञानिक भी हैरान है। फिर भी लोग उसके आधीन होकर चल रहे हैं। ऐसे व्यक्ति क्या अपने जीवन में समता-दर्शन ला सकते हैं? उनमे यदि बल है तो इन कुव्यसनो को दूर फेंक देना चाहिए। जब तक नहीं समझा तब तक इनमे फसे रहे परन्तु समझ कर तो इनसे दूर हट जाना ही चाहिए। शराब, मास, अण्डे आदि सब दुर्व्यसन हैं। वे सम्पूर्ण युवा-पीढी के जीवन में से हटने ही चाहिए।

समता जीवन दर्शन की सर्वत्र आवश्यकता है। यह मानव-मात्र का जीवन है। जीवन के धरातल को ठीक करने के लिए समता सिद्धांत-दर्शन के आधार पर आप समता जीवन दर्शन को ग्रहण करेंगे तो अपने जीवन को आगे बढा सकेंगे।

यदि एक प्ररूपणा, एक फरसना, एक अनुशासन, एक इशारे पर अपने अभिमान को न रखते हुए निस्वार्थ भावना से जीवन की स्थिति को समझ लिया जाये तो फिर समता जीवन दर्शन आने मे क्या देर लगे? इससे सारे परिवार, समाज, राष्ट्र और विश्व की स्थिति सुदृढ होकर मानवमात्र के अन्दर समता दर्शन का सूत्र जुड सकेगा और प्रत्येक मानव-तन मे रही हुई आत्मा अपने जीवन के लक्ष्य को प्राप्त कर सकेगी।

卐

बीकानेर—

स० २०३०, श्रावण शुक्ला ७

अमृत का झरना

दुख दोहग दूरे टल्या रे, सुख सपदशु भेंट,
धींग धणी माथे कियो रे, कौण गजे नर खेट ?
विमल जिन दीठां लोयण आज, मारा सिघ्या वांछित काज।

विमलनाथ परमात्मा के चरणों मे प्राथना की पक्तियो के माध्यम से जिस स्वरूप का चिन्तन किया जा रहा है, वह इस आत्मा के लिए अत्यन्त हितावह है। विमलनाथ परमात्मा मोक्ष मे पधार गए और सदैव के लिए वे शुद्ध स्वरूप मे रमण कर रहे है। प्रार्थना की पक्तियों मे उस शुद्ध अवस्था से पूर्व की केवल-ज्ञानयुक्त अवस्था का वर्णन है। जिस शरीर मे रहते हुए विमल-नाथ परमात्मा ने अपने विमल स्वरूप को प्राप्त किया, उस अतिम शरीर के साथ चौतीस अतिशय से युक्त उनका वह दिव्य जीवन जिस समय उपलब्ध था, उस समय की अवस्था का कुछ सकेत दिया जा रहा है। आत्मा अन्दर से जितनी निर्मल होगी, भाव-नायें जितनी पवित्र बनेंगी, उतना ही जीवन का अणु-अणु पवित्र भावनाओं से प्रभावित होगा।

इस विश्व मे जड और चेतन दो तरह के तत्त्व दृष्टिगत होते हैं। यद्यपि दोनो का स्वभाव ध्रौव्य दृष्टि से भिन्न है परन्तु पर्याय की दृष्टि से एक दूसरे के ऊपर प्रभाव की स्थिति का प्रसग है। आत्मा कर्मयुक्त बनती है—कर्मों की अवस्था उसके साथ अनादिकालीन है। शास्त्रीय परिभाषा के अनुसार यह कर्मवर्गणा सर्वथा जड के रूप में है परन्तु जिस समय आत्मा के विचार बाहरी पदार्थों के साथ आसक्त बनते हैं, उस समय वे कर्मवगणा के

पुद्गल आत्मा के साथ सयुक्त हो जाते हैं और जसे ही आत्मा के साथ उनका सम्पक हुआ, आत्मिक प्रदेशो के साथ वे सलग्न बने, वसे ही आत्मशक्ति में शुभ और अशुभ फल देने की शक्ति पदा हो जाती है। यह आत्मा का जडतत्त्व पर प्रभाव होता है। जब कर्मवगणा के पुद्गल आत्मा के स्वभाव से प्राय उदय में आते हैं, उस समय आत्मा के ऊपर आच्छादित होकर वे आत्मा की पर्याय शक्ति को दबा देते हैं। इस तरह से आत्मा का सम्पक पाकर कर्मवगणा के पुद्गल, खुद आत्मा को ही आच्छादित कर देते हैं।

यह दशा प्राय चलती रहती है परन्तु यह तभी तक चलती है, जब तक कि आत्मा अपने विमल स्वरूप को नहीं समझती है। जिस समय उसका निमल स्वरूप की ओर ध्यान चला जाता है और वह स्वाधीन बन जाती है तो फिर कर्मों के उदय से होने वाले प्रभाव को अपने मौलिक रूप मे नही आने देती, बल्कि आत्मा के विचारो की शक्ति का प्रभाव इन पदार्थों पर पडता है, जिससे ये पदाथ आत्मा के अनुरूप चमकने लगते हैं।

सूर्य की प्रभा किरणे जब पत्थरो पर पडती है तो पत्थर भी चमकने लगते हैं। मिट्टी के ढेलो पर वे किरणे पडने लगी तो वे भी चमकने लगे। मिट्टी और पत्थर मे चमक नहीं है परन्तु सूय के प्रभाव से प्रभावित होकर उनमें भी चमक आती जाती है। वैसे ही जिन आत्माओ का शरीर निर्मल आत्मा से, निमल विचारो से युक्त रहता है, वह शरीर भी उन पवित्र आत्मिक विचारों से प्रभावित हुए विना नहीं रहता है।

यही कारण है कि विमलनाथ भगवान के केवलज्ञान-युक्त शरीर का वणन करते हुए कहा गया है कि भगवन्! आपका यह शरीर जिसमे आप केवलज्ञान और केवलदशन के साथ विराजमान

है, किन परमाणुओ से बना है और यह कैसी विलक्षण रचना है कि जिसमे से अमृत का झरना वह रहा है—

शांत सुधारस झीलती रे, निरखत तृप्ति न होय।

भव्य प्राणी आश्चर्य करते हैं कि यह जो आपका शरीर-पिण्ड है, आकार है, जिसमे आप विराजमान हैं और जिस शरीर के अणु अणु मे आपके आत्मिक प्रदेश रमण कर रहे हैं, ऐसी इस शरीर की दिव्य मूर्ति, यह शरीर रूपी आकृति मानो अमृत से भरी हुई है।

अमृत का तात्पय है—जिसका मरण नही हो, सदा के लिए अमर हो जाए। ऐसी शक्ति आत्मिक भावना मे रहती है। वह जड तत्व मे नही रहती है। जिनमे आत्मिक भावना के विचार नही हैं, आत्मिक विचारों से जो पदार्थ प्रभावित नही हैं और आत्मा से रहित हैं, उन पदार्थों से हरी-भरी रचना नही हो सकती। वह तो तभी होती है, जबकि आत्मा के विचार इस शरीर पर पडते हैं। शरीर पर विचारो का प्रभाव पडता है और उसके कारण जो शरीर के परमाणु हैं, स्कंध हैं वे भी अमृत-रस से हरे-भरे हो जाते हैं। यही कारण है कि जब कभी आध्यात्मिक रस की कवितायें तीर्थंकरो के लिए की जाती हैं तो उनमे भी इसी बात का द्योतन किया जाता है कि—

यैः शान्तरागरुचिभिः परमाणुभिस्त्वं
निर्मापितस्त्रिभुवनैकललामभूत !
तावन्त एव खलु तेऽप्यणवः पृथिव्यां
यत्ते समानमपरं न हि रूपमस्ति ॥

मानतुंग आचार्य ने प्रभु ऋषभदेव की स्तुति करते समय उनके केवलज्ञानयुक्त शरीर की विशेषता बताते हुए अतिशयो के

विषय मे कहा है कि भगवन् ! आपका यह शरीर किस प्रकार दिव्य और अमृत के तुल्य शांतरस को देने वाला बना हुआ है ! मालूम होता है कि जितने भी शांतरस के परमाणु थे, वे सबके सब आपके शरीर मे आकर समा गए। पृथ्वी में शांतरस का ऐसा कोई परमाणु बाकी नहीं रहा, जो दूसरे के लिए बचा हो। इसी लिए आपका शरीर केवलज्ञान, केवलदशन से युक्त होकर तीन लोक के अन्दर एक दिव्य स्वरूप धारण किये हुए है।

मानतु ग आचाय ने जसे ऋषभदेव भगवान् की स्तुति के प्रसग से केवलज्ञान, केवलदशन से युक्त शरीर का वणन करते हुए आत्मा की आभा को प्रकट रूप मे बतलाया है, वैसे ही विमलनाथ भगवान् के प्रसग से उनके केवलज्ञान, केवलदशनयुक्त आत्मा की मूर्ति में यही अमिय (अमृत) भरा है, जिसकी उपमा नही दी जा सकती। तीर्थंकर का शरीर जिस समय अतिशयो से युक्त है, उस भामडल और दिव्य शक्तियो की यदि उपमा देने के लिये कोई पदाथ ढू ढ़ें तो वह मिल नहीं सकता। कोई पदाथ ऐसा नही, जिसे केवलज्ञान, केवलदशन-युक्त शरीर की उपमा दी जा सके। इसीलिए कवि कहता है कि मैं उपमा नही दे सकता—

शांत सुधारस झीलती रे, निरखत तृप्ति न होय।

आपका शरीर शांत सुधारस का समुद्र बना हुआ है। जब आपके दशन करने मे मेरे नेत्र तन्मय होते हैं तो प्रभु ! उस जीवन के दशन करने में वे नेत्र अपलक रह जाते हैं।

तीर्थंकर माता की कुक्षी से जन्म लेते हैं तो उनमें अनेक विशेषतायें रहती हैं। परन्तु उस समय इतने शांतरस झरने की स्थिति उनकी नही बनती है। जब वे दीक्षा लेते हैं तो साधना में रहते हैं। परतु जब उनकी आत्मा केवलज्ञान, केवल दशन से युक्त

बन जाती है तो शरीर की आभाए पलट जाती हैं और अन्य व्यक्तियो की अपेक्षा उनका सारा शरीर विलक्षण दिखलाई देता है। उस समय जो भी भव्यात्मायें उनके दर्शन करती हैं, वे अपने आप मे शाति—सुधारस का पान करते हुए इस प्रकार की अतृप्ति का अनुभव करती हैं कि उनके सामने से हटें नही, बल्कि टकटकी लगा कर देखते ही रहें। इसीलिए कवि ने सकेत किया है कि—

शांत सुधारस झीलती रे, निरखत तृप्ति न होय।

भगवन्! आपके इस अतिशययुक्त जीवन को देखते देखते आत्मा अनुभव करती है, मानो इस शरीर के माध्यम से शात रस का झरना बह रहा हो। मेरी आत्मा अन्दर से काम, क्रोध, मद, लोभ से सतप्त है परन्तु वह इस झरने को देख देखकर अपनें आप मे शाति का अनुभव करती है। इससे मन तृप्त ही नही होता है और वह सोचती है कि इसको अधिक से अधिक ग्रहण करती रहे।

यह शक्ति हर एक आत्मा मे है। यदि आत्मा अपने विचारो को ठीक रखे, अपने जीवन की समस्त वृत्तियो को बदल दे और शुद्ध भावना में बहने लगे तो उसके शरीर के परमाणुओ पर भी इसका प्रभाव पड़े बिना नही रहेगा।

कभी-कभी ऐसा प्रसग आता है कि मनुष्य ऐसे दिव्य विचारो से सपन्न पुरुष को देखते ही अपने आपका भान भूल जाता है। कहा जाता है कि जहा तीर्थंकर भगवान् का समवशरण होता है, वहां सिह और बकरी भी वैर भाव को भूल कर एक स्थान पर बैठते हैं। उन पर भी ऐसा प्रभाव पडता है कि क्रूर सिह भी अपनी हिंसक वृत्ति को भूल जाता है, क्योकि अहिंसा की धारा शरीर से भी बाहर आती है। इसके लिए पातञ्जल योगदर्शन मे एक सूत्र मे आया है कि—

चाहिए और यदि भूल से कुछ कह दिया हो तो मुह मे ग्रास लेने के पहिले ही क्षमायाचना कर लेनी चाहिए और कदाचित् ऐसा प्रसग नही बने तो सायकाल प्रतिक्रमण के समय तो उस पवित्रता को ले ही आना चाहिए। कदाचित् वह भी नही बन सके तो पक्खी के दिन ऐसा कर ही लेना चाहिए।

जैसे सतों के लिए कहा गया है, वैसे ही गृहस्थ वर्ग को भी अमृत-रस का झरना लाना है। उसके लिए भी प्रक्रिया है। श्रावक के बारह व्रत बतलाए हैं। उनमें से बारहवा व्रत क्या है? वह व्रत आपको जानना जरूरी है। वह 'अतिथिसविभागव्रत' है। गृहस्थ भोजन करने बैठे तो उस समय उसके मन मे यह पवित्र भावना आए कि मैं तो यह भोजन रोजाना ही ग्रहण करता हू, क्या यही अच्छा हो कि मैं इसमे से दान भी दे सकू। कोई उत्तम पात्र मिल जाए—सवस्व का त्यागी, कष्ट सहिष्णु, किसी को कष्ट न देने वाला और अमृत तुल्य जीवन रखने वाला महात्मा आ जाये तो मैं अपने भोजन में से कुछ भोजन उसे दे दू। यह भावना निभाई जाती है तो इससे आपके विचारों का असर शरीर पर पड़ेगा और भोजन की प्रक्रिया से जो रस बनेगा, उससे विचारा की शुद्धि होती चली जाएगी।

यह प्रक्रिया अपने जीवन के साथ है। हर एक व्यक्ति इसस सम्बन्ध जोड सकता है। यदि आप इस प्रकार अपने जीवन मे ये बातें ग्रहण करेंगे तो आपका जीवन मगलमय बनेगा। आप अपने जीवन को मांजने के लिए, पवित्र रखने के लिए कोशिश करेंगे तो आपका जीवन भी पवित्र बनते ही एक दिन विमलनाथ भगवान के समान अमृत का झरना बन सकेगा।

बीकानेर—
स० २०३०, श्रावण शुक्ला १०

आत्मचिन्तन

दु ख दोहग्ग दूरे टल्या रे, सुख सपदशु भेंट,
धींग धणी माथे कियो रे, कौण गजे नर खेट ?
विमल जिन दीठां लोयण आज, मारां सिध्यां वाछित काज ।

विमल प्रभु को जिस आत्मा ने समझा है, वह भव्यात्मा विमलनाथ के चरणो मे अन्य वस्तु की याचना नहीं करती है। यदि वह कुछ भी याचना के स्वर मे बोलती है तो उसका स्वर भौतिक तत्त्व से रहित ही होता है। वह कहती है, "भगवन्, आप मेरे स्वामी हैं और मैं आपका सेवक हूं। स्वामी और सेवक के ये भाव औपचारिकता से हैं–उपचार से किये गये हैं क्योकि साधक के मन मे कहीं व्यर्थ मे अहकार की भावना जागृत नहीं हो जाए, इसलिए वह परमात्मा को समक्ष रख कर उसे स्वामी के रूप मे पुकारता है और अपने आपको उनका सेवक समझ कर अपने जीवन की साधना करना चाहता है।

जिसके मन मे परमात्मा का उच्चतम आदर्श है, वह परमात्मा के चरणो मे यही निवेदन करेगा, "भगवन्, मैं आपके चरणो की सेवा पा सकू। आप आनन्दघन के रूप मे हैं यानि आपका आत्मिक स्वरूप परिपूर्ण रूप से विकसित हो चुका है। आपमे आनन्द-तत्त्व पूरी तरह भर गया है। अब आनन्द से भिन्न कोई तत्त्व आपमें प्रवेश ही नही पा सकता। ऐसा अनन्त चतन्य-शक्ति के विकास का परिपूर्ण रूप आपने प्राप्त कर लिया है। मैं भी यही चाहता हू कि मेरे जीवन मे आपके जसी विमल अवस्था आए।

आत्मिक प्रदेश शास्त्रीय परिभाषा की दृष्टि से असख्य गिने जाते हैं, यद्यपि ये प्रदेश इस आत्मिक तत्त्व से कभी भी अलग नहीं हो सकते परन्तु बौद्धिक दृष्टि से प्रदेशो की सख्या बना कर निर्देश दिया गया है। ये असख्य प्रदेश अनादिकाल से इस ससार की मलिनता को लेकर चल रहे हैं, कर्म रूपी कीचड से लिप्त होकर ये अपने शुद्ध और पवित्र स्वरूप को धूमिल करके चल रहे हैं। सेवक उसी मलिनता को दूर हटाने के लिए ही भगवान की चरण-शरण चाहता है, यद्यपि वह सेवा देने लेने सरीखी नहीं है।

सेवक निवेदन करता है, "आपके आध्यात्मिक जीवन के दो चरण हैं—श्रुतधर्म रूप और चारित्रधर्म रूप। इन दोनो चरणो को मैं आपकी परम कृपादृष्टि से अपने इन असख्य आत्मप्रदेशो मे विधिवत् अपना लूं। ये चरण यदि मेरे जीवन मे उतर आयेंगे—श्रुत और चारित्ररूप गुणो का विकास होने लगेगा तो उनके सहारे मेरा कर्म-कीचड धुलता रहेगा और आत्मा की निर्मलता तथा पवित्रता बढती हुई चली जाएगी। मैं इसी मार्ग पर चलता हुआ आपके चरणो की सेवा की याचना कर रहा हूँ।"

बधुओ! जिस भव्यात्मा ने इस चरण सेवा का स्वरूप समझा है, वह अपने आत्म स्वरूप को अवश्य पहचानेगी क्योकि उसके पहिचाने बिना वह चरण सेवा रूप श्रुत और चारित्र धर्म, उसके जानने के पेट मे प्रवेश नहीं कर पाएगा। इस दिव्य स्वरूप को पाने के लिये जब आत्मा की भव्य तैयारी बनेगी तो वह विमलनाथ को अपने जीवन के अन्दर चरम सीमा के विमल गुण रूप मे ही प्रकट करेगी। फिर सदा के लिए स्वामी और सेवक का भाव मिट जाएगा। फिर तो सेवक भी सेव्य बन जाएगा, भक्त भी भगवान बन जाएगा। भक्त और भगवान में फिर अन्तर नही रहेगा। दोनो की तुल्यता, दिव्य-स्वरूप की दशा, जिस रूप

मे इस आत्मा की बनेगी, वह आनदघन रूप मे आत्मा के परम स्वरूप को पा सकेगी ।

इस साधना के लिये सत और सती वग इस ससार के बीच विषयो का परित्याग करके आध्यात्मिक साधना मे तन्मयता के साथ चलने की कोशिश करते हैं । कहा तो आज के विचित्र ससार के लुभावने दृश्य और कहा साधना की दृष्टि से ये रुक्ष चरण । परन्तु जो व्यक्ति आध्यात्मिक जीवन की साधना मे रम जाता है, उसको इस जीवन मे रुक्षता का भान ही नही होता है । वह तो जीवन की स्नेहमयी स्निग्धता ही देखता है । हर घडी, हर पल, हर समय उसके जीवन मे इस आध्यात्मिक आनन्द का सचार होता रहेगा । वह इसमे डुबकी लगाता हुआ कभी भी बाहर झाकने की कोशिश नही करेगा । उसका वह अपूर्व जीवन परम सौम्य और परम आनन्दमय आध्यात्मिक स्वरूप बनेगा ।

जिन साधको ने आध्यात्मिक जीवन मे रमण करने के लिये भौतिक पदार्थों का त्याग तो अवश्य किया है, परन्तु विधि के साथ वीतराग देव ने जिस माग का निर्देश दिया है, उस माग पर गमन करने मे जो लडखडा रहे हैं, जिनके जीवन का रास्ता डांवाडोल बन रहा है, वे इस साधना की पोशाक को लेकर तो अवश्य चलते हैं, परन्तु उन पुरुषों का इस आध्यात्मिक माग मे प्रवेश नही होने की स्थिति में वे वास्तविकता का भान नही कर पायेंगे । वे सोचते हैं कि जिस ससार के परित्याग के साथ आध्यात्मिक जीवन मे प्रवेश होता है, उसमे हमने प्रवेश तो किया परन्तु आध्यात्मिक जीवन की अनुभूति तो हमको नही हो रही है । वे इसी विषय को लेकर छटपटाने लगते है । ऐसे साधक को यह सोचने की कला आनी चाहिए कि मैंने वस्तुतः जिस माग में प्रवेश किया है, उसी

भावना के साथ में उस विधि को अपना कर अपने जीवन के प्रत्येक क्षण को बिता रहा हू या नही ।

यदि वह अन्दर प्रवेश करने का प्रयास ही नही करता और दिन-रात चौबीस घण्टे केवल ससार के विषयो का ही चिंतन करता रहता है कि अमुक व्यक्ति कसा है, अमुक परिवार मे कौन है, अमुक काम उसे करना है, अमुक धम का काय भी हाथ में लेना है या अमुक धार्मिक सस्था के लिये चदा चिट्ठा करना है तो वह साधना के सही मार्ग पर नही है । इस प्रकार की वाक्यावली के साथ जिस साधक का जीवन इन बाहरी पदार्थों मे परिभ्रमण कर रहा है और इन्ही के पीछे वह अपनी जयश्री देख रहा है, अपनी यश पताका की कामना कर रहा है और सोच रहा है कि इन कामो से समाज की ओर से मुझे धन्यवाद मिलना चाहिए तो ऐसा चिंतन हितावह नही है । वह सोचता है कि ओहो, महाराज ने इतना परोपकार का काम करा दिया, यह धन्यवाद समाज की ओर से मुझे मिल गया और जन मानस की ओर से इस प्रकार का वातावरण प्राप्त हो गया तो मेरी साधुता की साधना पूरी हो गई । इस प्रकार ऊपर-ऊपर ही तैरने वाले व्यक्ति, ऊपर ऊपर से ही बतन को मांजने वाले व्यक्ति, भले ही साधना में चलें परतु वे अन्दर की स्निग्धता को प्राप्त नही कर सकते ।

इसलिए ज्ञानीजनो का कहना है कि ये काय तो जो गृहस्थ व्यक्ति हैं, वे भी सपादित कर लेंगे । इतनी सूक्ष बुझ तो उनमे भी है । वे अपने घर, समाज और राष्ट्र का काय करते हुए भी इन कार्यों को सहज भाव से निपटा सकेंगे । और खास तौर से यह काय उन्हीं के जिम्मे का है क्योकि वे अन्य अन्य कार्यों में इतने लीन रहते हैं कि उनको आध्यात्मिक-दर्शन का प्रसग ही नही आता है । ये काय उनके लिए रसप्रद हैं । यदि तुम भी उन्हीं के

कार्यों को लेकर चलोगे तो वह सोचेंगे कि चलो हमारी जिम्मेवारी हटी। परन्तु तुम अपनी जिम्मेवारी को छोड कर उधर प्रवेश कर रहे हो और आध्यात्मिक रस का पान नही कर रहे हो तो यह बडी विडम्बना है। भले ही तुम ऐसी साधना मे चलते रहो पर-तु अपने अन्दर की अनुभूति और आनन्द का आस्वादन ठीक तरह से नही कर पाओगे।

यदि विमलनाथ के स्वरूप को पाना है तो उसको अन्तर् मे प्रवेश कराने का अभ्यास चालू रखना चाहिये। इसमे कठिनाइया बहुत आती हैं। अन त काल के विषय और कषाय इस आत्मा के चारो ओर घेरा डाल कर खडे हुए हैं और बढने नही देते हैं। परन्तु तुम निर-तर सावधान होकर चलो तो उनको पछाड कर अपने निमल स्वरूप की ओर बढ सकते हो। पूण साधक को तो, जो ससार का वैभव त्याग कर साधु की पोशाक मे चल रहा है, ऐसा करना ही चाहिए।

इसके साथ ही साथ सतो के जो छोटे भ्राता श्रावक हैं और सतियो की छोटी बहिनें श्राविकायें हैं, उ-हें भी अपने पथ से विचलित नही होना चाहिये। जितने धार्मिक कार्य हैं, उनको तन्मयता से चलाने की कोशिश करनी है। उनको कभी कहा जाए कि चौबीस घण्टो मे से एक घ-टे के लिए तुम इस आध्यात्मिक-रस को लेने का अभ्यास करो तो वे सहसा बोल उठते हैं कि महाराज क्या किया जाए-हमारी दैनिक दिनचर्या बडी विचित्र ढग की है। जब हम अपने कृत्यो को देखते हैं, सासारिक व्यवहार मे कुरीतियो को देखते हैं तो दिल रोने लगता है। किस प्रकार पाप की कालिमा हमारे ऊपर छाई हुई है! ऐसी स्थिति मे हम उन विमलनाथ परमात्मा की साधना एक घण्टे के लिए भी कैसे करें?

मैं सुझाव दिया करता हू कि ग्राप इस प्रकार के पश्चात्ताप में जल रहे हैं तो यह भी शुभ भावना है। जो विमलनाथ के स्वरूप को देखता है, उसे अपनी मलिन दशा को देख कर दु ख होता है। जो कीचड-रहित निर्मल जीवन देखने की कोशिश करता है, वह कोचड से भरा हुआ हो तो अपने आपमे ग्लानि का अनुभव करता ही है। वह यह भी सोचता है कि इस गद पानी से लिप्त होकर भी क्या मैं गदगी और कीचड से रहित पुरुष का स्मरण करूँ ? इसमें मुझे शर्म आती है।

मैं तो कहूगा कि यह शर्म सरीखी कोई बात नहीं है। इस शुभ लक्षण के बीच मे यदि आप उनका स्मरण करेंगे तो आपके अन्दर जागृति पैदा होगी। आप सोचेंगे कि जिन आत्माओ ने इस ससार की पाप वासनाओ से ऊचा उठ कर अपने आपको परमात्मा के स्वरूप मे प्राप्त किया तो उनका अनुसरण करके मैं भी वैसा ही क्यो नही बन सकता हू, म क्यो पिछड रहा हू ? वह शक्ति मुझमे भी है। मैं इन व्यवहारो और परिस्थितियो को परिवर्तित कर सकता हू। इन परिस्थितियो को मैंने स्वय अपने सिर पर लिया है, कोई दूसरा इन्हें मेरे ऊपर लादने के लिए नहीं आया है। ये स्वय मेरे द्वारा पकडी गई हैं। यदि म इस पकड को छोड देता हू तो मेरा जोवन उस पवित्र सत् स्वरूप मे पहुँच सकता है।

दुनिया के अन्दर चारा तरफ काटे बिछे हुए है, तीक्ष्ण शूलें दीख रही हैं। व्यक्ति सोचता है कि मैं कैसे चलू ? ये शूलें मेरे पैरों मे चुभ जायेंगी। परन्तु यदि वह विवेक के साथ चिंतन करे तो उन शूलों से डरने की स्थिति नहीं रहेगी। यदि वह इस कल्पना से चले कि मैं इन सब शूलो को साफ करके बिल्कुल साफ रास्ते पर चलू, तब वह न तो उन शूलो को साफ कर सकेगा और न

चल ही सकेगा कहावत है—'न नौ मन तेल होगा और न राधा नाचेगी।'

यह तो कठिन मार्ग है। यदि तुम इस पर चलना चाहते हो तो अपने पैरो मे पादत्राणिका ग्रहण कर लो। उसे आप सीधे शब्दो मे गृहस्थ अवस्था मे जूते या पगरखी बोल देते हैं। जिसने जूतिया पहिन रखी हैं तो फिर दुनिया के काटे उसका क्या बिगाड करेंगे ? वह तो बेधडक चलेगा। उसको कोई भी कष्ट होने वाला नही है।

वसे ही यदि आप अपने जीवन को निर्मल बनाना चाहते हैं तो दुनिया की मलिनता के कांटो को छू–छूकर अपने आपको दु खी क्यो बना रहे हैं ? आप क्यों नही अपने जीवन में ऐसे आवरण लगा लेते हैं, जिससे कि सारी की सारी दुनिया मलिन काटो से भरी रहे परन्तु आपका जीवन तो अबाध गति से इस प्रकार चले कि कोई आपका कुछ बिगाड ही नही कर सके। युद्ध के मैदान मे जाने वाला सेनानी अपने शरीर पर कवच पहिन लेता है तो फिर कितने ही तीक्ष्ण बाण क्यो न आयें परन्तु उसे चोट नही लगती। वैसे ही यदि आप अपने जीवन मे नैतिकता का कवच पहिन लेते हैं और सामाजिक कुरीतियो को मिटाने की दृष्टि से फिजूल खर्च को मिटा देते हैं तो इस दुनिया की मलिनता और काटे आपका कुछ भी बिगाड नहीं कर सकेंगे।

आप स्वय कमजोर बने हुए हैं और हैरानी का अनुभव कर रहे हैं तो फिर इस कमजोरी को दूर करने के लिए किसी योग्य चिकित्सक से दवा लेने की जरूरत है। जैसे किसी योग्य डॉक्टर के पास पहुँच कर आप पौष्टिक दवा लेते हैं और अपनी शारीरिक कमजोरी को दूर करते हैं, वैसे ही आध्यात्मिक कमजोरी को दूर

करने के लिए ग्राप ग्राध्यात्मिक चिकित्सक के पास पहुँच कर ग्राध्यात्मिक पुष्टि हेतु खुराक लीजिये ग्रौर ग्रपने बिगड़ हुए व्यवहारो को सुधारने की कोशिश कीजिये। परन्तु जब वह दवा ली जाती है तो उसको लेने का विधि-विधान भी सोचना पड़ेगा कि उसे किस प्रकार लिया जाये ? साथ ही दवा लेने ग्रौर पथ्य के बारे में सोचने के लिये समय की भी ग्रावश्यकता है।

यदि जीवन की मलिनता को मिटाने के लिये दवा लेना है तो एक घण्टे का समय तो निकालना ही होगा। एकात मे बैठ कर ग्राप ग्रपने ग्राध्यात्मिक जीवन की तमाम बुराइयो को देखने की कोशिश करें। यदि ग्राप उनको देख लेंगे तो एक दिन वे बुराइया ग्रापसे किनारा कर लेंगी। फिर वे ग्रापके जीवन की शक्ति को लूट नही पायेंगी। ग्राप बुराइयो को देख नही पा रहे हैं, तभी वे ग्राप पर ग्राक्रमण कर रही हैं। ग्राप बुराइया को ग्रच्छाइया समझ रहे हैं। इसीलिए वे ग्राप पर ग्रधिक से ग्रधिक ग्राक्रमण कर रही हैं। ग्रत यदि ग्राप बुराइयो को देखने की कला सीख लेंगे तो फिर वे ऐसा नहीं कर सकेंगी।

मान लीजिये कि एक गृहस्थ ग्रपने स्थान पर बैठा हुग्रा है ग्रौर उसके घर मे कोई चोर प्रवेश कर रहा है। यदि मालिक उस को चोर न समझ कर साहूकार समझ रहा है तो वह बेधड़क घर में प्रवेश करेगा। परन्तु यदि घर का मालिक उस चोर को चोर समझ लेता है ग्रौर कहता है कि तुम ग्रा तो रहे हो परन्तु मैं समझता हू कि तुम चोर हो। तुम मेरे घर मे चोरी करने को आए हो तो करो चोरी—मैं बैठा हूँ। ऐसी हालत मे क्या वह चोर ग्रापके घर मे चोरी कर सकेगा ? चोर समझेगा कि मुझे चोर मान लिया गया है तो ग्रब मैं यहा चोरी कैसे करू ? वह भाग खड़ा होगा।

जैसे उपयुक्त परिस्थिति मे घर का मालिक चोर को चोर समझ लेता है और उसे सम्बोधन करके अपने घर की सम्पत्ति सुरक्षित रख लेता है, इसी प्रकार इस घर का मालिक अर्थात् आत्मा भी यदि अपनी बुरी आदतों को लुटेरा समझ ले और उन्हें सबोधन करे कि देखो, मैं तुम्हे पहिचान गया हू, तुम मेरी अमुक-अमुक आत्मिक सम्पत्ति को चुराने आए हो। मैं बैठा हू। अब तुम चोरी कैसे कर सकते हो ? इस प्रकार की सावधानी यदि इस आत्मा मे आ जाए तो उसके पास ये बुराइया कभी नही रह सकेंगी।

कठिनाई यह है कि इन्सान इन बुराइयो को पहिचान ही नही पा रहा है और व्यर्थ ही इनसे भय खा रहा है। उसके पास इन्हे पहिचानने का समय ही नही है। न तो वह बुराइयो को देखने का अभ्यास करता है और न उनकी जानकारी ही प्राप्त करता है। इस दृष्टि से दिन-प्रतिदिन बुराइयां बढती जा रही हैं। अत मे वह रोता रहे, चिल्लाता रहे परन्तु इससे क्या होगा ? वे तो और भी अधिक आक्रमण करेंगी। वे कमजोर व्यक्ति को अधिक दबायेंगी और उसकी आध्यात्मिक सम्पत्ति को लूट कर ले जायेंगी।

आप यदि सावधान होकर चिंतन करना चाहते हैं तो आध्यात्मिक चिंतन के लिये एक घण्टे का समय निकालिये। महाराज ने कह दिया, इस रूप मे नहीं परन्तु नियमित रूप से कडिया जोडिये और सोचिये कि एक घण्टे भर का क्या कार्यक्रम रखना है ? कौनसी वृत्तियो को देखना है ? फिर चौबीस घण्टो की दिनचर्या देखना सीखें। इस प्रकार आप चौबीस घण्टो का भावी कार्यक्रम बना सकते हैं। यदि आप मन की एकाग्रता से घण्टे भर की सामायिक कर पाते हैं तो कालिमा धुल जाएगी। परन्तु इस प्रकार

आप करेंगे, तभी यह बन सकेगा। कपडो के मैल को देख देख कर रोते रहे तो ऐसा करने से क्या होगा ? मले कपडो को धोने के लिए समय तो चाहिए या नहीं ? वे कितने समय मे धुल सकते हैं ? चौबीस घण्टे का मैला कपडा एक घण्टे मे धुल सकता है। एक घण्टे की खुराक लेते हैं तो उसका रस चौबीस घण्टे चलता है। आप चौबीस घण्टो मे एक घण्टे का समय निकालिये और चिंतन कीजिए।

आप कह सकते हैं, "महाराज, यदि आज कपडा धोते हैं तो कल वह फिर मलिन हो जाता है।" परन्तु आप इससे क्यो घबराते हैं ? यदि आप धोते रहेगे तो गाढ़ा मैल नहीं लगेगा और धोना छोड देगे तो ततु-ततु मे मलिनता प्रवेश कर जाएगी। आप दूकानदार हैं और रोजाना धुले कपडे पहिनते हैं परन्तु सध्या तक वे मले हो जाते हैं। दूसरे रोज फिर धुले कपड पहिनते हैं और वे फिर मैले हो जाते हैं तो क्या आप उन्हें धोना छोड देते हैं ? आप यह सोच कर तो नही बैठते कि मैं इन्हें अभी धो रहा हू और ये फिर मैले हो जायेंगे तो इन्हें क्यों धोऊ ? जब कपडों के लिए आप ऐसा नहीं सोचते हैं और उन्हें बारम्बार धोते रहते हैं तो फिर अपनी आत्मा को धोने के लिये चिंतन क्यो नहीं करते ?

यदि आप दृढ विश्वास के साथ आध्यात्मिक साधना म लगते हैं तो अवश्य ही इस आनन्द की अनुभूति को पा सकते हैं। आप हीनता और कमजोरी कभी न लाइये। जो मजबूती लेकर चलते है, उनके ही गुण गाये जाते हैं।

卐

बीकानेर—

स० २०३०, श्रावण शुक्ला ११

क्रियाशुद्धि

धार तलवारनी सोहली, दोहली, चउदमा जिन तणी चरणसेवा।

परमात्मा की चरण सेवा का विषय चल रहा है। प्रभु की सेवा तलवार की धार से भी कठिन बतलाई गई है। इसी कारण आंतरिक ज्ञान के स्वरूप की उपलब्धि नही हो रही है। परन्तु जिस आत्मा को अपने असली स्वरूप का ज्ञान हो जाता है, उसको प्रभु की सेवा उतनी कठिन ज्ञात नही होती, जितनी कि अज्ञानी को होती है। अज्ञानी मनुष्य को सेवा का कार्य सही नही दिखलाई देता। यहा 'अज्ञान' का तात्पर्य कम ज्ञान से नही है। ज्ञान किसी को अधिक हो या कम हो, कोई अधिक या कम ज्ञान की दृष्टि से अज्ञानी नही कहला सकता। परन्तु जिसका ज्ञान अविकसित है, जो वस्तु जसी है, उसे वैसी न समझ कर उसमे जो विपरीत श्रद्धान करता है, उसको यहा अज्ञानी कहा गया है।

ससार के पदाथ नाशमान हैं। इन नाशमान पदार्थों को काम मे लिया जा सकता है परन्तु ये ही आत्मा के लिए सवस्व नही बनते हैं। आत्मा के लिए तो चरम लक्ष्य प्रभु के तुल्य बनने की प्रबल जिज्ञासा और तदनुरूप श्रद्धान है। ऐसा व्यक्ति चाहे थोडा ज्ञानी हो या अधिक परन्तु वह प्रभु की सेवा के माग को ग्रहण करने वाला बन सकता है। जिसको इससे विपरीत ज्ञान है, जो आत्मा और परमात्मा सम्बन्धी विषय को समझता ही नही है अथवा जो समझ करके झुठलाता है, अपनी कमजोरियो को छिपा कर परलोक का आलाप करता है, आत्मा की शक्ति को विस्मरण करके भौतिक तत्वों का प्रतिपादन करता है, ससार की

मोह माया ही जिसके जीवन का लक्ष्य है, इस जीवन के अन्दर कुछ खा लिया, पी लिया, पहिन लिया मौज-शौक कर लिया, यही सब कुछ है, इसके अतिरिक्त कोई तत्त्व नहीं है, जो इस प्रकार का श्रद्धान रख कर चलने वाला है तो चाहे वह व्यक्ति अधिक ज्ञानी भी क्यो न हो, चाहे वह सारी दुनिया का विज्ञान रखता हो, भौतिक विज्ञान की दृष्टि से प्रकाण्ड विद्वान भी क्यो न हो परन्तु शास्त्रकार कहते हैं कि जो इस प्रकार एकाकी ज्ञान के साथ है और अपने निज स्वरूप को भूल कर ससार के विज्ञान को ही सब कुछ मानता है, वह अज्ञानी है।

ऐसा अज्ञानी व्यक्ति प्रभु की सेवा नहीं कर सकता। उसका जीवन तो ससार की गलियो मे भटकता रहता है। यह इधर-उधर की नाशमान गदगी को ही पसद करता है। ऐसे व्यक्ति को प्रभु की सेवा का अवसर नही मिलता है और कदाचित् वह अपनी इस उपलब्धि के लिये यह समझ ले कि मैं प्रभु की भक्ति करूगा, भजन करूगा तो इससे मुझे भौतिक सुख मिलेगा परन्तु लक्ष्य तो उसका भौतिकता का है और उसकी पुष्टि के लिय यदि वह आत्मा और परमात्मा का नाम भी लेता है और उस परमात्मा की सेवा करने के बहाने से कुछ क्रियायें भी सम्पादित करता है तो वे क्रियायें उसे वास्तविक सुख दिलाने वाली नही बनती हैं। ऐसी क्रियायें बताने वाले बहुतेरे मिल जाते हैं।

एक कहे सेविये विविध किरिया करो, फल अनेकांत लोचन न देखे।

ऐसे व्यक्तियो को कोई कहता है कि तुम परमात्मा की सेवा करो, विविध क्रियाए करो। यहा विविध क्रियाओ मे वे क्रियाए भी शामिल हैं, जो धार्मिक क्रिया के नाम से की जाती हैं परन्तु लक्ष्य शून्य बन कर की जाती हैं। जो परम सोमा के आत्मिक स्वरूप को भूल कर विविध क्रियायें करता है तो यहां उसके फल

की अनेकातता है। अनेकात का तात्पर्य यह कि ये क्रियायें उसके फल को सिद्ध करने वाली नहीं बनती हैं परन्तु उस लक्ष्य के विपरीत ससार को सिद्ध करने वाली बनती हैं। उन अनेकान्त फल वाली क्रियायो से आत्मा चार गति ससार मे भटकती है और अनादिकाल से वह ऐसे ही काय करती आई है।

जीवन है तो क्रिया है। जीवन की क्रियाओ का प्रयोग यदि वास्तविक शुद्ध आत्मिक लक्ष्य की ओर है तो उनका फल अनेकान्त नहीं होता—एका त होता है अर्थात् वह अवश्यमेव आत्मा की सिद्धि को दिलाने वाला और प्रभु की सेवा के चरम सिरे पर पहुँचाने वाला होता है। पर तु जिसका लक्ष्य विपरीत है, श्रद्धान सही नही है, वह व्यक्ति कितनी भी कुछ क्रियायें करे, चाहे वह ससार के अ दर परोपकार के नाम से क्रिया करे, चाहे किसी अन्य सेवा की दृष्टि से काम करे अथवा धार्मिक क्षेत्र की पोशाक लेकर के कठिन से कठिन तप भी करे परन्तु वह तप भी सम्यक्-दृष्टि आत्मा के तप के सोलहवें हिस्से को भो नहीं छूता है। कहा भी है कि—

मासे-मासे उ जो बालो, कुसग्गेण तु भु जए।
न सो सुयक्खायधम्मस्स, फल अग्घइ सोलसि ।।
(उत्तराध्ययन ६/४४)

कोई मास-मास खमण की तपस्या करे, एक महीने भर का तप करे यानि सिर्फ गर्म पानी के आधार पर तोस दिन तक रहे और इकतीसवें दिन भोजन की दृष्टि से स्वल्प भोजन, इतना स्वल्प भोजन कि एक डाभ के तृण के ऊपर जितना अ न आए, उतना अ न वह ग्रहण करे और पुन तीस दिन की गम पानी के आधार पर तपस्या पचख ले और फिर तीस दिन समाप्त होने पर उतना ही अ न पुन ग्रहण करके तपस्या करे, ऐसे महीने-महीने

भर की तपस्या करने वाला व्यक्ति दुनिया की दृष्टि में महान् तपस्वी कहला सकता है, लोग उससे प्रभावित हो सकते हैं परन्तु प्रभावित वे ही होते हैं, जिन्हें सही मार्ग का ज्ञान नहीं है। जिसको प्रभु की सेवा का मर्म ज्ञात है, जिसका प्रभु की आज्ञा को महत्त्व देने का संकल्प है, वह व्यक्ति सबसे पहिले यही देखता है कि यह महीने महीने भर की घोर तपस्या करने वाला तपस्वी प्रभु की आराधना कर रहा है या प्रभु की आज्ञा से विपरीत चल रहा है।

प्रभु ने साधक के लिए कहा है कि तू अपनी साधना के क्षेत्र में एकाकी मत रह, एक दूसरे की साक्षी में रह और शासन के अनुकूल चतुर्विध संघ के बीच में रह करके साधना कर। अनुशासन के साथ शास्त्रीय मर्यादाओं का कल्प लेकर यदि तप किया जाता है तो वह तप प्रभु की आज्ञा रूपी सेवा का है। ऐसा व्यक्ति चाहे महीने-महीने की तपस्या न कर सके और कभी कभी उपवास करता हो परन्तु प्रभु की आज्ञा को शिरोधार्य करके अनुशासनबद्ध आध्यात्मिक साधन में आत्मसिद्धि में लगा हुआ है तो उस व्यक्ति के लिए फल की अवस्था है, प्रभु के चरण उसको मिलते हैं। जो अनुशासनहीन है, प्रभु की आज्ञा के विपरीत एकाकी रह कर अथवा सबके साथ रह कर प्रभु की आज्ञा का अनुसरण नहीं करता है और जिसका लक्ष्य इस आत्मा की चरम सिद्धि का नहीं है तो उस मास मास खमण की तपस्या करने वाले की स्थिति प्रभु के आज्ञानुवर्ती के मुकाबले में सोलहवें हिस्से के बराबर भी नहीं है। शास्त्रकारों ने ऐसे तप को 'अज्ञान तप' कहा है। यह अनेकान्त फल वाला है। इससे चार गति की वृद्धि होती है—

फल अनेकांत किरिया करी बापडा, रखडे चार गति मांहे लेखे।

चौदहवें जिन की जो सेवा है, वह कितनी कठिन है! इसे इस रूप में ले सकते हैं कि शरीर को कृश बनाना, एक ढठब की

तरह सुखा देना, इतना त्याग होने पर भी सही ज्ञान और सही श्रद्धा तथा वीतराग आज्ञा का पालन नही होने से ऐसा तप ससार की गति को बढाने वाला बन जाता है। वैसे ही चाहे कितनी भी लक्ष्यहीन विद्वत्ता क्यो न हो, आत्मशुद्धि के परम लक्ष्य की साधना के बिना चाहे दुनिया भर का ज्ञान और विज्ञान एक तरफ हो तो भी उस प्रभु की सेवा के लिये वह सहायक नहीं बन सकता। इसके विपरीत ज्ञान-विज्ञान भले ही अधिक न हो परन्तु प्रभु की आज्ञा मे अटूट श्रद्धा हो—'आणाय धम्मो' प्रभु की आज्ञा ही धर्म है, वही प्रभु के चरण हैं, वही उनकी सेवा है, इस दृढ श्रद्धान के साथ वह कुछ थोडा थोडा ज्ञान रखता हो, ज्ञान की दृष्टि से उसको स्वल्प-ज्ञानी कहेगे परन्तु वह अज्ञानी नही है, वह ज्ञानी है क्योकि वह प्रभु की आज्ञा की आराधना करने वाला है। वह प्रभु की सेवा को समझ कर पुरुषार्थ करेगा तो उसका ज्ञान बढ जाएगा। ऐसे व्यक्ति कितनी क्रियायें करते हैं और उनकी क्रियाओ मे विवेक और तन्मय स्थिति की साधना है तो वे सब उस प्रभु की परम सेवा को दिलाने वाली हैं।

कभी-कभी इस विषय की पुष्टि करने के लिये सत लोग कहा करते हैं कि किसी समय एक भयकर डाकू पकडा जाकर फासी के तख्ते पर पहुँच गया। उस वक्त उसकी मृत्यु की तैयारी थी, परन्तु उसे जोर की प्यास लगी। वह अज्ञानी था। वह अपने कुकृत्य का फल भोग रहा था। इस अवस्था में भी उसे परमात्मा और आत्मा का ध्यान नही था। उसका दिल तो पानी मे लगा हुआ था। वह यह भी नही सोच पा रहा था कि यदि पानी पी लिया तो भी इस जीवन को टिका नहीं सकूगा। इसकी अपेक्षा तो मैं परमात्मा के शुद्ध स्वरूप का ध्यान करू, चितन करू। इसका भी उसको खयाल नही था। वह दशको के सामने इशारा कर रहा था कि

कोई नजदीक आकर उसे पानी पिलाने की कोशिश करे। दर्शक दूर से सब कुछ देख रहे थे। वे खडे खड सोच रहे थे कि उसके नजदीक जाकर यदि कुछ भी खाना पीना पेश करेंगे तो सरकार हमको भी अपराधी मानेगी। फिर कहीं हमको भी सजा न भोगनी पडे। अत उससे दूर रहना ही श्रेयस्कार है।

उस समय प्रभु की आज्ञा का मम समझने वाला भक्त जिन दास सोचने लगा कि इस डाकू की आत्मा इस वक्त छटपटा रही है। इसने इतना भयकर जुल्म किया की छोटी अवस्था मे ही इसको फांसी के तख्ते पर जाना पड रहा है। सभव है, इसके अगले जीवन का आयुष्य नही बधा हो और इस वक्त आयुष्य बध का अवसर हो। यदि मेरे निमित्त से इसकी जिंदगी सुधर जाए तो मेरे मन वचन-काया के शुभ योग और शुभ क्रियायें मेरे लिए हितकर होंगे।

भक्त जिनदास सब भयो से मुक्त होकर मृत्यु के मुह मे पडे हुए उस व्यक्ति के समीप पहुचा और बोला—"भाई, क्या कहते हो?" उससे बोला नही जा रहा था। उसने इसारा किया कि पानी। जिनदास ने कहा, "मैं तुम्हें अभी पानी पिलाता हू।"

जिसके मन, मस्तिष्क और तन मे प्रभु की आज्ञा का श्रष्ठ-तम प्रवेश, वह कष्ट पीडित आत्मा को देख कर स्वय दु खित होता है। इसीलिये ऐसी सम्यक् दृष्टि आत्मा का लक्षण बतलाया है-सम, सवेग निर्वेद, अनुकम्पा और आस्था। अनुकम्पा करना, आत्मिक लक्ष्य के विना नही वन सकता। इस अनुकम्पा से वह उसको बचा सकेगा या नही, यह प्रश्न अलग है। वह बचे या नही परन्तु स्वय की आत्मा को प्रभु की आज्ञा में रखने का सुन्दर मौका मिल रहा है। ऐसे समय में ही उसका परीक्षण होता है।

भक्त जिनदास उस प्यासे डाकू की तिलमिलाहट को देख कर मधुर स्वर मे कहने लगा, 'भाई घबरा मत। मैं तुझको पानी पिलाता हूँ। तूने देर से इशारा किया। पानी लाने मे मुझको विलम्ब हो सकता है। परन्तु तू अपने विचारो में कालुष्य ला रहा है, यह तेरे जीवन के लिये घातक है। अत मैं पानी लेकर आऊ, तब तक तेरे विचारों मे शुभ भावनाओ का सचार रहना चाहिये।"

जब ऐसे मधुर स्वर मे सम्बोधन किया गया तो उस भयकर पापी की भावना भी उस भक्त के प्रति श्रद्धान्वित हो गई। वह मृत्यु के मुह मे जाते हुए भी सोचने लगा कि यह अत्यन्त दयालु पुरुष मुझ जैसे पापी से भी घृणा न करके मुझको शाति देने का प्रयत्न कर रहा है। वस्तुत यह ज्ञानी है। इसके एक एक वचन पर मुझको विश्वास होना चाहिये।

इस दृढ़ श्रद्धान के साथ वह डाकू मन ही मन सोचने लगा कि मैं क्या शुभ भावना लाऊ ? मैं क्या सोचू ? उस भक्त ने कहा है कि मैं आऊ, तब तक तू परमात्मा का नाम ले। मैं तुझे ऐसा नाम बतला रहा हू, जो व्यक्ति विशेष का नाम नहीं है, गुण-निष्पन्न नाम है-'णमो अरिहताणम्'। जिन्होने आतरिक शत्रु काम क्रोधादिक नष्ट कर दिये और चरम सीमा के भगवान बने, ऐसे परम तत्त्व को तेरा नमस्कार हो, उसी मे तेरा ध्यान हो। उसने इसी आदिपद की स्थिति से चार पद और बतलाये और कहा कि मैं आऊ तब तक इनका रटन जारी रहे। इस बात का पूरा ध्यान रखना।

भक्त जिनदास पानी लेने को गया। इधर मृत्यु के मुह मे जाने वाले डाकू की इतनी प्रबल भावना बन गई कि सेठ जिनदास

ने जो कुछ कहा, वह तद्‌वत् है। परन्तु वह 'णमो अरिहंताणम्' तो भूल गया और इस प्रकार रटने लगा—

आणु ताणु कुछ नहीं जाणू। सेठ वचन परमाणू ॥

"मैं कुछ नही जानता हू परन्तु सेठ के वचन मेरे लिए प्रमाण हैं।" इस प्रकार विश्वास रख कर वह भयकर डाकू अन्तिम समय मे पवित्र भावना से सद्‌प्रवृत्ति का आयुष्य बाधता है, अपनी आत्मा को परमात्मा के अन्तर्पटे मे डाल देता है और उच्च गोत्र प्राप्त करता है।

बंधुओ! ज्ञान की दृष्टि से चाहे एक मत्र का भी ज्ञान नहीं रहे। कभी-कभी लोग ऐसे व्यक्ति का अज्ञानी कह देते हैं। आज-कल के भाई तप की साधना करते हैं, सामायिक करते हैं। उन भाइयों को भी कुछ लोग कोसने लग जाते हैं कि तुम अज्ञानी हो। ऐसा नही करते हो, वैसा नही करते हो। यदि सहसा इस प्रकार के किसी के वाक्य निकलते हैं तो वह भी प्रभु की आज्ञा के विपरीत है। वे अज्ञानी नही हैं। उन्हे विशेष ज्ञान नहीं, ऐसा कह सकते हैं। परन्तु उनका श्रद्धान तो प्रभु की आज्ञा मे है। वे सुदेव, सुगुरु और सुधम पर दृढ श्रद्धान कर के चल रहे हैं तो वे तप कर कर रहे हैं, शुद्धक्रिया कर रहे हैं। वे क्रियायें उनको ससार में भटकाने वाली नहीं बन सकती क्योंकि वे आध्यात्मिक-साधना के साथ चल रहे हैं। यह बात दूसरी है कि किसी में विवेक कम है और किसी मे अधिक। विवेक कम है या ज्यादा है, यह ज्ञान की मात्रा पर निर्भर है। परन्तु जो सुदेव सुगुरू और सुधम पर श्रद्धा रखता है, वह सुज्ञानी है और जो क्रिया है, वह उसकी सोलहवीं कला है। जो मास-मास समण की तपस्या कर रहा है, वह भी उसको नहीं पहुँच सकता।

इससे यह सहज स्पष्ट हो सकता है कि इन्सान को अपनी ज्ञान शक्ति बढानी चाहिए। परन्तु शुद्ध लक्ष्य के साथ उस परम स्वरूप को पाने की दृष्टि से और उसके अनुरूप क्रियाओ का ध्यान रखता हुआ यदि कोई सेवा का काय अपनाता है तो वह प्रभु की सेवा के अन्तर्पटे में है।

जहाँ परस्पर की सेवा का विचार है, उसकी दृष्टि से भोजन लेना-देना भी एक सेवा है। उसमे भी यदि शास्त्रीय दृष्टि की स्थिति है, उसकी स्थिति से यदि भोजन का आदान प्रदान है तो वह भी उस आज्ञा के अ तर्पटे मे आ सकता है।

इधर गहस्थ वर्ग की आहार की प्रक्रिया है। वह भी आहार करता है, भोजन करता है और भोजन करता हुआ वह अपनी शक्ति के अनुसार परमात्मा की साधना में बैठ कर चि तन करता है। पर तु उसके चिंतन में उसके आहार की एषणीय स्थिति क्या है? आहार की गवेषणा और एषणा, ये शब्द तो साधु के लिए मुख्य रूप से प्रचलित है, गृहस्थ के लिए नही हैं। परन्तु इसके ही पर्यायवाची शब्द हैं—नैतिकता का ग्रहण। जो गृहस्थ नैतिकता को साथ रखता है और नैतिकता के साथ उपाजन करके अपने लिये आजीविका ग्राह्य समझता है, गृहस्थ दृष्टि से उसके लिए वह एषणीय है। परन्तु जो अनैतिकता की भावना से ओत प्रोत होकर, एक दूसरे की अपेक्षा को छोड़ कर और कुछ खाने का प्रकरण लूट खसोट की दृष्टि से जीवन मे रख कर चलता है, उस व्यक्ति द्वारा प्राप्त किया हुआ जो अन्न है, वह एषणीय नही कहा जा सकता। उस अन्न का परिणाम उसके जीवन पर पडता है। वह साधना को पूरी तरह नही साध सकता है।

पूणिया श्रावक का जो कुछ महत्त्व प्रकट हुआ, उसका मूल्याकन भगवान महावीर ने किया। उसके पास करोडो की सम्पत्ति

थी। कथा-भाग की दृष्टि से कथाओं में भिन्नता हो सकती है। कथाओं के कलेवर को पकड़ने की आवश्यकता नहीं है परन्तु उनकी भावना मे क्या सार है, उसको ग्रहण करने की आवश्यकता है। करोड़ो की सपत्ति होने पर भी उसने उस सम्पत्ति को अभाव वाले व्यक्तियो के लिये सुरक्षित रखा। वह उस सम्पति का 'ट्रस्टी' बन कर रहने लगा, न कि उसका मालिक। अपने जीवन का निर्वाह करने के लिये, इस कथा भाग की दृष्टि से, वह सवा रुपये की पूणियो को बेच कर व्यापार करता था और अपना तथा अपनी पत्नी का जीवन निर्वाह करता था। निर्वाह की यह स्थिति जिस सादगी के साथ बनती है, नैतिकता की दृष्टि से वह जीवन कितना पवित्र होता है!

पूणिया आध्यात्मिक जीवन की साधना मे बैठता था तो उसकी साधना एकाग्र होकर चल पड़ती थी। परन्तु एक रोज अकस्मात् उसकी एकाग्रता भग हुई। उसने चिंतन किया कि आज मुझसे क्या पाप बना, जिसके कारण मेरी साधना मे बाधा उत्पन्न हो रही है? उसने अपने जीवन को देखा। कुछ भी त्रुटि दृष्टिगत नहीं हुई। फिर उसने सोचा कि मेरी धमपत्नी मेरे साथ रहती है। उसके जीवन से यदि कोई त्रुटि हो तो उस त्रुटि का भाग मेरे साथ जुड़ता है क्योंकि मैं उससे सम्बन्ध रख कर चलता हू। अत उसने अपनी धर्मपत्नी से कहा, "प्रिये, आज तुमसे तो कोई गलती नहीं बनी? तुम अपने चौबीस घण्टा का चिंतन करो।"

उसकी पत्नी ने पति की आज्ञा शिरोधार्य करके चिंतन किया तो ज्ञात हुआ कि उस दिन प्रात काल रसोई बनाने के लिये वह पड़ौसी के यहां से आग लाई तो उसके पास कुछ साधन नहीं था। इसलिये उसने पड़ौसी के यहा से थाथा छाना उसकी आज्ञा प्राप्त किये बिना ही उठा लिया और आग लाकर अपने चूल्हे में रख

दी। सभव है उस छाने का असर भोजन पर पडा हो और इसी कारण से उसके पतिदेव के परिणाम चलायमान हुए हो।

आत्मावलोकन की इस स्थिति को उसने अपने पतिदेव के सामने रखा। पूणिया श्रावक ने कहा, "ठीक है। तुमने यह अपराध किया कि बिना आज्ञा के आघा छाना वहा से उठाया। परन्तु अब इसकी सफाई करो। पडौसी के यहां जाकर स्पष्ट कहो कि मैंने बिना पूछे आपका छाना उठाया, मुझसे यह गलती हुई। आप क्षमा करें और उस आधे छाने की जो कीमत हो, वह मुझसे लेवें। यदि बदले मे छाना चाहे तो छाना लेवें।'

वह पडौसिन के यहां गई और उसे सारी बात कह दी। यह सुन कर पडौसिन हैरान हो गई। वह बोली, "आप सरीखे धर्मनिष्ठ मेरे पडौस मे रह और मेरे यहा से आग ले जायें, इससे मेरा घर पवित्र हो गया। मुझे कीमत नही चाहिये। आप जो चाहें, यहा से ले जा सकती हैं।" परन्तु उसने उत्तर दिया, "बहिन, आपका यह कहना ठीक है परन्तु मुझे तो अपने पति की आज्ञा का पालन करना है।"

सुना जाता है कि औरगजेब के जमाने मे एक रुपये का तीस सेर घी था। फिर भगवान महावीर के समय में तो घी कितना सस्ता होगा? अनाज भी सस्ता होगा। उस समय एक छाने की क्या कीमत होगी? आज तो छाने की भी कीमत है। और घी क्या खरा है, यह तो आप जान ही रहे हैं। छाने की क्या कीमत है, यह भी आपको ज्ञात है। यह इस जमाने की बात है। परन्तु उस समय यदि आधा छाना भी मालिक की आज्ञा के विना ले लिया तो चित-भग हो गया और वापिस दे दिया तो चित समाधि मे लगा।

की सिद्धि की जाती है। परन्तु धर्मनाथ प्रभु के स्वरूप को यदि दिव्य शक्ति से समझ लिया जाय तो ऐसे प्रसग सहसा नही आ सकते।

आज अष्टमी है और मुख्य रूप से श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी होने से आज इस विषय को कुछ समझने का प्रसग आया है। अष्टमी तो अनेक आई हैं और आती रहेंगी, परन्तु जब यह जन्माष्टमी आती है, उस समय सहज ही भारत के उन दिव्य महापुरुष का स्मरण हो आता है।

श्रीकृष्ण का जन्म आज की रात को हुआ। वे अनेक नामो से इस भारत भूमि पर विख्यात हुए। उन्ही नामों में से उनका एक नाम 'हरि' भी है। हरि नाम का तात्पर्य यदि इस शब्द की व्युत्पत्ति से समझ लिया जाय तो मैं सोचता हूं कि इन महापुरुष का सही मूल्याकन हो सकेगा। सस्कृत व्याकरण की दृष्टि से हरि शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार की जाती है—'हरति दुर्नीति इति हरि' अर्थात् जो दुर्नीति का हरण करता है, वह हरि है। अथवा 'हरति जनाना दुखानि इति हरि।' अर्थात् जो जनता के दुखो का हरण करे, वह हरि है। यदि ऐसे हरि का गुणगान किया जाये, उनके महत्त्व को समझा जाए, उनके जन्म समय के पूर्व की भूमिका का ज्ञान किया जाए तो उनकी दिनचर्या का रहस्य स्वत स्पष्ट हो जायेगा। आज के प्रसग से, हरि के गुणगान की दृष्टि से, एक पुरानी कविता का उच्चारण भी मैं कर लिया करता हू—

हरि के गुण गाऊ हरि लीला कहि रे सुनाऊ हो-हरि जी।

बधुओ! यह कविता कुछ पुरानी समय की है। कविता नई या पुरानी कैसी भी हो, इस बात का उतना महत्त्व नहीं है परन्तु कविता के भावो का महत्त्व है। हरि के गुण गाने के प्रसग से हरि

की लीला का गान करते हुए यदि आप उनके स्वरूप का ज्ञान करेंगे तो आपको यह बात भलीभाति समझ मे आ जाएगी कि उन्होने किस नीति का प्रचार किया था ?

उस समय भारत भूमि में बहुत बडा विप्लव मचा हुआ था। जरासध को राजसत्ता और सम्पत्ति का मद हो गया था। वह उनके नशे मे मदोन्मत्त हाथी की तरह झूम रहा था। उसने सोच लिया था कि जनता का सारा वैभव, सत्ता और सम्पत्ति सगृहीत कर ली जाए और उसका व्यय केवल अपनी मौज शौक के लिए हो। हम बनायें सो कायदा। उसमें कोई बोल ही न सके। जैसी नीति का हम प्रचलन करें, उसको ही दुनिया नीचा सिर करके सहन कर ले। इस दुर्नीति के साथ उसने अपने कई साथी भी तैयार कर लिये। कस की नीति भी उसका समर्थन करने वाली बनी। शिशुपाल भी उसका ही अनुकरण करने वाला रहा। रुक्मकवर, दुर्योधन, काली नाग और कालीकुमार ये सब उस समय की दुर्नीति के मुख्य पात्र कहे जा सकते हैं। इनकी दुर्नीति के ताडव नृत्य से भारतीय जनता सत्रस्त हो रही थी। उसको कोई शरण नही मिल रही थी। जनता के मुह से एक ही स्वर निकल रहा था कि इस विचित्र दशा में कोई उद्धार करने वाला आये।

यह स्वाभाविक भी है कि साधारण जनता मे सहज ही उतना सत्त्व नही आता है। उसमें शक्ति रहती है परन्तु उस शक्ति को जगाने वाला तो कोई होना ही चाहिये और शक्ति को जगाने वाला कुछ विशिष्ट होता है। जो अद्वितीय रूप में आता है, वही जनता की शक्ति को उभार कर उसका सदुपयोग कर सकता है। जनता की आवाज खाली नही जाती है। यदि सामूहिक रूप मे अन्तश्चिन्तन का नाद वायुमण्डल में फैले तो उस वायुमण्डल के

चलते हैं तो उनके लिये वढ़िया से वढिया 'कार' चाहिये, बढ़िया से वढिया पोशाक चाहिये भौर बढिया से वढिया 'एयर कन्डीशन्ड' (वातानुकूलित) वगला चाहिये। उन्हें ऊचा पद भी चाहिय। वे सिंहासन पर बैठें और सारी साधन सामग्री उन्हें उपलब्ध हो तो वे जन-सेवा कर सकते हैं, वर्ना उनसे सेवा नही हो सकती है। कलियुग के पचम काल के सेवको का तो यह हाल है। श्रीकृष्ण वचपन से ही गायो की सेवा की दृष्टि से, जन-सेवा की दृष्टि से कसे तत्पर हुए! उनके जीवन की घटनायें कैसी-कैसी लीला से सयुक्त हैं! उनका हम मूल्याकन नही कर सकते। आज के फैसनेविल व्यक्ति फैशन मे पड कर उनका मूल्याकन नहीं कर सकते। उनका जीवन कुछ भौर था और इनका जीवन कुछ भौर है। उन्होंने कालिया नाग के विप का शमन किया। जरासघ, रुक्मकवर, शिशुपाल और दुर्योधन भादि को किस प्रकार कसी कुशलता से शिक्षा दी? कौन किसके योग्य था और किसके साथ कैसा व्यवहार करना चाहिये, यह उनके जीवन-चरित्र से स्पष्ट समझ सकते हैं

उस महापुरुप ने जन्म लेकर हर तरह से जनता के दु खों का निवारण किया, दुर्नीति का अन्त किया, सद्नीति के साथ जनमानस के स्तर को उन्नत बनाया और फिर शांति का आदर्श उपस्थित किया।

यद्यपि आज भी उस हरि के जन्म की जयती मनाते हैं परन्तु उनके आदर्शों को सामने रख कर जयन्ती मना रहे हैं क्या? कृष्ण का जन्म कराना है क्या? आप क्या सोचते होंगे और किस प्रकार उनका जन्म कराते होंगे? कुछ भक्त लोग आज की रात्रि के अन्दर अपने विचारो के अनुरूप कुछ टीम टाम कर लेंगे अथवा यत्र तत्र उनके जीवन की कुछ झांकियो का उद्घाटन कर

देंगे। इस प्रकार हरि का जन्म करवा कर अपने मानस की तृप्ति कर लेंगे कि हमने कृष्ण का जन्म करा दिया।

बन्धुओ! हरि का जन्म ऐसे नही होगा। हरि का जन्म तो आपके दिल मे होना चाहिये। यदि आज की रात्रि मे आपके जीवन मे उनका जन्म हो जाए तो सभी ज्वलत समस्याओ का हल सहज में ही निकल सकता है।

आज भारतभूमि पर पूर्वकाल के मुकुटधारी जरासंघ आदि तो नहीं हैं, पोशाक के जरासंघ तो नही हैं परन्तु उनका प्रतिनिधित्व करने वाले जरासंघ तो आज भी मौजूद हैं। जरासंघ की भावना क्या थी? सत्ता और सम्पत्ति मेरी रहे। इस सत्ता और सम्पत्ति को कोई आंच पहुचाने वाला हो तो हम उसका दमन कर डालें, उसे नष्ट कर दें। यह नीति जरासंघ की थी। ऐसी नीति क्या आज के युग मे नही है? क्या जरासंघ के भाई फिर प्रगट नही हो गये हैं?

कंस की नीति भी ऐसी ही थी। कंस चाहता था कि मैं बनाऊ सो कानून। मेरे कानून मे कोई दखल नहीं दे। मैं शक्तिबल से ही सबको समझू। देवकी नारी है—वह क्या कर सकती है? वसुदेव महाराज भद्र प्रकृति के धार्मिक मानस वाले पुरुष है। मेरे सामने वे क्या कर सकते हैं? उनको कैद मे डालना उसके बायें हाथ का खेल था। क्या आज भी वह कंस इस मुकुटबध स्थिति और बल के साथ नही है? संभव है, कंस की नीति भी आज के युग में चल रही होगी।

काली नाग उस वक्त गायो के ऊपर विष छोड़ता था और वे विषमय बन जाती थी। आज काली नाग तो नही है लेकिन

मानव अपनी विषमता के रूप से अपनी पाचो इन्द्रियों मे जहर चढ़ा रहा है और आज ये पांचों इन्द्रियां विषयासक्त बनी हुई हैं। आज भी उस समय की नीति का समर्थन करने वाले, सत्ता और सम्पत्ति के साथ आसक्ति रखने वाले न मालूम कितने कालिया नाग पदा हो रहे हैं, जिन्होने वर्तमान समाज मे विषमता की खाई पैदा कर दी है और वे चारो तरफ विषमता का जहर बरसा रहे हैं।

'गो' शब्द का अर्थ गाय होता है और इसे पांचो इन्द्रियो के लिये भी प्रयुक्त किया जाता है। पाचो इन्द्रियो का विषयासक्त बनाने वाला मानव अपने इस जन्म मे तो दुःख पाता ही है लेकिन भविष्य में भी वह दुखी ही बनता है। उस जमाने में, इन्द्रियो मे आसक्ति रखने वाले कितने क्या थे और उनको श्रीकृष्ण ने इस विषयासक्ति से हटाने के लिये क्या कुछ किया, उसी का वर्णन आपके सामने है।

शिशुपाल को भोग विलास का मुख्य केन्द्र समझा जा सकता है। वह रूप का पतगा बन कर राजकन्या रुक्मिणी का हक छीनने को तैयार हुआ। वैसे ही आज भी शिशुपाल की तरह जीवन रखने वाले न मालूम कितने व्यक्ति कन्याओ के हक का छीन रहे हैं और रूप के लोलुपी बन रहे हैं। उन व्यक्तियो के लिए यदि आप चितन करेंगे तो ज्ञात होगा कि शिशुपाल का रूपक भी आज मौजूद है।

सहन करके अज्ञात-वास के बाद प्रकट हुए और अपने हक की वस्तु मागने लगे तो दुर्योधन ने यही कहा कि मैं विना युद्ध किए उन्हें सूई की नोक जितनी जमीन भी नही देना चाहता। यह दुर्योधन की नीति थी। आज दुर्योधन के नाम का व्यक्ति तो नही रहा, परन्तु वतमान मे क्या ऐसा नीति मौजूद नहीं है ? क्या आज अपने भाइयो के हक को छीन कर लोग सर्वेसर्वा बनने की कोशिश नही कर रहे हैं ?

एक दृष्टि से देखा जाए तो आज जिधर भी नजर डालिये उधर इस भावना का ही प्रदशन मिलेगा। यदि ऐसे विकट समय मे आपको हरि का जन्म कराना हो तो आप अपने जीवन मे कुछ तैयारी कीजिये। हरि का जन्म उस कोठरी में हुआ, जो जेल की कोठरी कहलाती है। अत आप इस वक्त भी इन दुर्नीतियो को मिटाने वाले हरि का जन्म कराना चाहें तो अपने दिल की कोठरी मे उनका जन्म कराइए।

आत्मिक शक्ति हरि का प्रतिनिधित्व करने वाली है। इस आत्मिक शक्ति को प्रबल बनाने की आवश्यकता है। जन्माष्टमी केवल जयनाद से या बाहरी दृश्य उपस्थित करने से नहीं होगी। महापुरुषो का स्मरण केवल मनोरजन के लिए या इन्द्रिय-पोषरण के लिये नही परन्तु जनता के दु ख-निवारण के लिए होना चाहिए।

मैं सोचता हूं कि आज के युग मे हरि का जन्म समता दशन के रूप मे होना चाहिये। हरि के मन मे समता की भावना थी। समय समय पर उन्होंने समता की भावना को अभिव्यक्त करते हुए उसे आचरण का रूप दिया।

गीता में एक प्रश्न आया कि दुनिया मे बहुतेरे व्यक्ति पण्डित

कहलाते हैं परन्तु पण्डित किसको कहना चाहिये ? कौन पण्डित कहला सकता है ? इसका उत्तर देते हुए श्रीकृष्ण ने कहा है कि—

विद्या-विनय-सपन्ने, ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।
शुनि चैव श्वपाके च, पडिता समदर्शिन ।।
(गीता अध्याय ५ श्लोक १८)

इसका अर्थ है कि चाहे विद्या, विनय से सम्पन्न ब्राह्मण हो, गाय हो, हाथी हो, श्वान हो या चांडाल हो, इन सबमें जो समदर्शी है, वह पण्डित है।

मैं समझता हूँ कि इस श्लोक का अथ कई व्यक्ति शब्द उच्चारण के साथ कर जाते होंगे । परन्तु इसका तात्पय क्या है ? इसमे कौन-सा मर्म भरा हुआ है ? कौन-सा सकेत ? कौन-सा दशन है ? आदि बातें सोचने की फुरसत नहीं है । सोचें भी तो कैसे सोचें ? मस्तिष्क और आचरण मे तो जरासध, कस और शिशुपाल आदि बैठे हैं । वे सोचने ही नहीं देते हैं ।

यदि भारतवासी इस श्लोक पर चिंतन कर लेते तो आज यह दयनीय स्थिति नहीं होती और न इतनी खून खराबी और यह हिंसा का तांडव-नृत्य ही देखने को मिलता—परन्तु जो कुछ हुआ सो हुआ, अब भी विषमता के बीच समता दशन लाने की तयारी मे लगें ।

हरि को हृदय मे याद करना है और उनमे नाम की व्युत्पत्ति को समझना है । हरएक व्यक्ति को इसके लिए तत्पर होना चाहिए । उनका जन्म समता दशन के रूप में हो सकता है । मैं समदृष्टि के अभिप्राय को समता दर्शन के साथ जोड रहा हूँ । समता-दर्शन का प्रवेश यदि मनुष्य के मस्तिष्क मे हो जाये तो

सत्ता और सम्पत्ति पर करारी चोट पडेगी । आज जो सत्ता और सम्पत्ति का लोलुप बन रहा है और जरासघ का रूप लेकर चल रहा है, उस पर समता दशन का प्रहार होगा और विषमता हटेगी ।

आज कालिय नाग का जहर ससार के प्रत्येक कोने मे बरस रहा है । मनुष्य इस जहर से इतना जजरित है कि उसकी दयनीय दशा बन रही है । आज जो अनैतिकता का ताडव नृत्य देखने को मिल रहा है, ससार मे अधाधुन्धी दृष्टिगत हो रही है, इन विषयो की जड विषमता मे ही जमी हुई है । अत यदि समता-दशन को अपने मस्तिष्क मे स्थान देंगे तो जीवन समता के धरातल पर बनेगा और आचार को सुधारने मे कष्ट नही होगा ।

इसलिए यदि आज सच्चे दिल से'हरि का जन्म कराना चाहते हैं और दिल में कराना चाहते हैं तो समता-दर्शन को अपने जीवन का स्वरूप बनावें । यह नही कि मुह से उच्चारण करें समता दशन का और जीवन मे उसे नही लें ।

हरि को जन्म दीजिए—दिल मे । जो दु ख को दूर करता है, वह हरि है । यदि समता-दशन को मस्तिष्क मे जन्म दिया और समता-दशन की भावना दिल मे रखी तो विषमता दूर भाग जाएगी । ये विषमता रूपी काली नाग, कस जरासघ सब समता से बिंध जायेंगे । हरि ने क्या किया ? काली नाग को बींधा था । उसके हजार फण थे । वे एक को नाथते तो दूसरा और दूसरे को नाथते तो तीसरा मुह खुलता था । उन्होंने सबको काबू में किया और विषहीन बनाया । वैसे ही इस विषमता रूपी काली नाग के हजार फण ही नही, लाख फण हैं । उन लाख फणो को यदि हरि की शक्ति से बींधना है तो आप समता दशन को अपनाइये ।

मैं ऊपर कथा भाग के सार को रख गया हूँ और इसलिये रख गया हूँ कि आज मैं भारतीयों की दयनीय दशा को देख कर सोच रहा हू कि कहा वे महापुरुष और कहा आज की जनता। आज उनके जन्म दिवस को मनाते हैं परन्तु उनके उद्देश्य को भूल कर चलते हैं। गीता का प्रथम श्लोक है—"धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे।' यहां 'कुरुक्षेत्र' कहा गया है तो मैं इसकी यह व्याख्या कर रहा हूँ कि 'कुरु' अर्थात् 'करो' और क्षेत्र अर्थात् स्थान। इसमे कर्तव्य की ओर सकेत है। परन्तु मनुष्य कतव्य को भूल गया है और कौन सा धर्मक्षेत्र है तथा कुरुक्षेत्र क्या है, इसका विज्ञान आज की जनता को नहीं है। आज लोग अपनी लम्बी चौडी बातें रख देते हैं परन्तु कतव्य कर्म से पीछे हटते हैं। वे काम करना नही चाहते हैं परन्तु पदवी लेना चाहते हैं। यह तो स्वार्थकारी कम है। जो स्वार्थ भावना से चलने वाले हैं, वे 'कुरुक्षेत्र' की व्याख्या नही समझ सकते।

एक बार गांधीजी साबरमती आश्रम का निर्माण करा रहे थे तो गुजरात के एक बडे विद्वान उनके पास आए और कहने लगे, "महात्मन्! मैं आपके पास रह कर गीता का गूढ रहस्य समझना चाहता हूँ।" महात्माजी ने उनकी बात सुन ली और उन्होंने रावजी भाई को बुलाया। वे आश्रम की जिम्मेवारी लेकर चल रहे थे। रावजी भाई आए तो महात्मा जी ने कहा, "ये गुजरात के प्रख्यात व्यक्ति हैं और मेरे पास गीता का गूढ़ रहस्य समझने के लिए आए हैं। आपके पास कोई काम हो तो इन्हे उस पर लगा दें।"

रावजी भाई के पास आश्रम निर्माण का बहुतेरा काम था। उन्होने उनसे कहा कि आप गांधीजी के पास रहना चाहते हैं तो ईटें उठा कर रखते जाइये। वे कुछ बोल नही सके। परन्तु दो-

चार रोज तो उन्होने इटें उठाई, फिर तग आ गए और रावजी भाई से कहने लगे–"मेरी तो आपने दुदशा कर दी । मैं तो गीता का गूढ रहस्य समझने के लिए आया था और आपने मजदूर का काम मेरे सुपुद कर दिया । यह मेरा काम नही है । यह तो मज-दूरो का काम है ।"

यह बात जब गाधीजी के पास गई तो उन्होने कहा कि यही तो गीता का गूढ रहस्य है । आप केवल गादी तकिए के सहारे बैठ कर गीता का गूढ़ रहस्य समझना चाहते हैं तो क्या वह ऐसे समझ मे आ सकता है ? आप अपने कर्तव्य को सभालें और जिस क्षेत्र मे चल रहे हैं, उसकी जिम्मेवारी लें तो वह गूढ रहस्य समझ मे आ सकता है ।

मैं अपनी स्थिति से सबोधन कर रहा हू । आप गीता का गूढ रहस्य समझना चाहें तो सारी गीता को टटोलने की आवश्य-कता नही, इस एक ही श्लोक को देख लीजिये । यदि इस श्लोक को आप जीवन में साकार रूप दे देते हैं तो आपको जीवन की सभी समस्याओ का ज्ञान हो जायेगा ।

आज अपनी शक्ति के अनुसार अपने अपने अदर हरि का जन्म कराइये । वह जन्म आपके लिए हितावह होगा । इस अवसर पर यदि जीवन मे समता-दशन आ गया तो आप सब तरह से जीवन मे आनद का अनुभव करेंगे, समाज को आनद देंगे और सवत्र शांति की स्थापना करेंगे ।

●

बीकानेर—
स० २०३०, श्रीकृष्णजन्माष्टमी